बृहत्कथाकोश

[२]



भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ

भा. दि. जैन संघ पुस्तक माला का छठा पुष्प

श्री हरिषेणाचार्य-रचित

बृहत्कथाकोश

भाग २

अनुवादकर्ता—

श्री पं० राजकुमार शास्त्री साहित्याचार्य

प्रोफेसर दि० जैन कालेज बड़ौत (मेरठ)

प्रकाशक

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ

प्रकाशक

मंत्री साहित्य विभाग

भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

प्रथम वार

मार्ग शीर्ष, २४७७

मूल्य ढ़ाई रूपया

मुद्रक

शान्तिलाल जैन

नव भारत प्रेस, भदैनी,

बनारस

प्रकाशकीय

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ अपने जन्म कालसे ही एक कार्यशील संस्था है। प्रारम्भमें इसका कार्य जैनधर्मपर किये जानेवाले आक्षेपोंका निराकरण करके जनतामें फैले हुए अज्ञानको दूर करना मात्र था। इसके बाद इसी उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर एक प्रचार विभागकी स्थापना की गई। आज भी इसके प्रचारक भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशोंमें पहुँचकर जनतामें फैले हुए अज्ञानको दूर करनेमें यथाशक्ति प्रयत्नशील हैं। तथा संघका मुख पत्र 'जैन सन्देश' प्रति सप्ताह सर्वत्र पहुँचकर इस कर्तव्यमें योगदान देनेमें सहायक होता है। मथुराके पास चौरासी नामक तीर्थक्षेत्रपर संघ भवनमें संस्थाका प्रधान कार्यालय तथा एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमें प्रकाशित पुस्तकों और ग्रन्थोंका अच्छा संग्रह है।

यतः इस संस्थाका प्रधान लक्ष जैनधर्मका प्रचार कार्य रहा है, अतः इसके अन्तर्गत एक ट्रैक्ट विभाग प्रारम्भसे ही चालू था, जिसमें समयोपयोगी आवश्यक ट्रैक्टोंका प्रकाशन होता था। सन् १९४१ में प्रकाशन विभागको बढ़ानेका विचार हुआ और 'संघ ग्रन्थमाला' तथा 'संघ पुस्तकमाला' के नामसे दो मालाएँ चालू की गईं। संघ ग्रन्थमालाका प्रारम्भ सिद्धान्त ग्रन्थ श्री जयधवलजीके प्रकाशनसे हुआ। इसके दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक मालामें अब तक ६ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें 'जैनधर्म' नामकी पुस्तक उल्लेखनीय है। एक वर्षमें ही इसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और दूसरा संस्करण भी समाप्त प्राय है।

इसी वर्षसे क्षुल्लक श्री निजानन्दजीके पूर्वनाम स्वामी कर्मानन्दके आधार पर एक 'स्वामी ग्रन्थमाला' प्रारम्भ की गई

है। इस ग्रन्थ मालामें स्वामीजीकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करेंगी। इसकी प्रथम बृहत् पुस्तक 'ईश्वर मीमांसा' प्रकाशित हो गई है। अस्तु,

प्रस्तुत पुस्तक आचार्य हरिषेण रचित बृहत्कथाकोश-का दूसरा भाग है। इस भागमें कुल १८ कथाएं हैं। जिनमेंसे कुछ कथाएं तो एक एक स्वतंत्र चरित हैं। यथा, ५६ वीं कथाम करकण्डु चरित आगया है, ६० वीं कथामें सुदर्शन चरित आ गया है, ६३ वीं कथासे पूरी सम्यक्त्व कौमुदीकी कथाएं आगई हैं और ७३ वीं कथामें यशोधर चरित आगया ह। सभी कथानक वहुत रोचक और उपदेशप्रद हैं। अतः मनोरजंनके साथ ही साथ इनसे सत्शिक्षा भी मिलती है। आशा है पाठक इस दूसरे भागको विशेष पसन्द करेंगे।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, बनारस

मंत्री
कैलाशचन्द्र शास्त्री,

कथा-सूची

बृहत्कथाकोश

द्वितीय भाग



५६. कर्कण्डु महाराजकी कथा

लङ्कानगरीमे रावणके वंशमें सूर्यप्रभ नामका समृद्धि संपन्न राजा रहता था। सूर्यप्रभकी पत्नीका नाम श्रीषेणा था, जो सौन्दर्यमें लक्ष्मीके समान सुन्दर थी।

एक समयकी बात है। सूर्यप्रभ राजा मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले मलयदेशके मलयपर्वतपर पहुँचा। वहां मलयाचलके शिखरोंपर विखरे हुए प्राकृतिक लावण्यको देखकर इसका मंन वड़ा ही संतुष्ट और विस्मित हुआ। उसने अपने मनमें विचारा कि मैं इन कूटोंपर इस प्रकारके जिनालय बनवाऊं, जो अपनी स्वच्छ कान्तिसे आकाशके प्रदेशको सफेद करें और उनमें ऋषभ आदि जिनेन्द्र भगवानोंकी प्रतिमाएँ विराजमान हों। इस प्रकार सोचकर सूर्यप्रभने मलयाचल पर्वतके शिखरोंपर भव्य जिनालयोंका निर्माण कराया और उनमें जिनभक्तिवश मणि-काञ्चन-निर्मित दिव्य प्रतिमाएँ विराजमान कीं, जैसा कि भरत चक्रवर्तीने कैलास पर्वतपर जिनायतन बनवाकर उनमें भव्य प्रतिमाएँ विराजमान की थीं। उसके बाद सूर्यप्रभने विद्याधरोंके साथ महामह पूजा की और पर्वतके चारों ओर खाई खुदवाकर अपने नगरको लौट आया।

विजयार्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें देवताओंके विमानकी तरह गगनवल्लभ नामका नगर था। उस नगरमें समस्त

विद्याधरोंके अधिपति सुवेग और अमितवेग नामके दो भाई रहते थे। ये दोनों ही भाई सम्यग्दर्शनसे भूषित थे। दोनों ही भाई समस्त पर्वोंमें प्रत्येक दिन कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयोंकी बन्दना करने जाते और पृथ्वीमें यथेच्छ विहार करते।

एक बार ये दोनों भाई विहार करते हुए मलयदेशके दक्षिण देशमें स्थित लङ्कापुरीके जिनमन्दिरोंकी बन्दना करने आये और यहांकी बन्दनाके पश्चात् दक्षिण पथके मलयदेशमें चंदनके वृक्षोंकी पंक्तिसे अलंकृत भूति पर्वतपर जिनविम्बोंकी वन्दना करनेके लिये गये। उस समय दोनों भाइयोंके मनमें भक्तिका सागर उमड़ रहा था। भक्तहृदय दोनों भाई इस पर्वतपर विराजमान जिनबिम्बोंके दर्शन करने लगे। इसी समय भगवान् पार्श्वनाथकी दिव्य और भव्य प्रतिमाको देखकर अमितवेगने अपने मनमें सोचा कि मैं भी विजयार्धपर्वतपर एक जिनमन्दिर बनवाकर भगवान् पार्श्वनाथकी ऐसी ही प्रतिमा विराजमान करूँगा।

इस प्रकार अमितवेगने वहां कलिकुण्ड पार्श्वनाथकी प्रतिमा तैयार कराई और उसे लेकर अपने नगरकी ओर चल दिया। रास्तेमें वह एक स्थान पर ठहरा और वहाँ उसने एक गुफ़ामे विराजमान करके प्रतिमाकी बड़ी भक्तिके साथ पूजा की। परन्तु जब वह वहाँसे चलने लगा तो वह प्रतिमा वहाँ ही अचल होकर रह गई। अमितवेगने जब यह देखा तो उसने पिटारेमें विराजमान प्रतिमाकी पूजा की और तेर नामके नगरमें आगया।

इस तेंर नगरके समुन्नत सहस्रकूट चैत्यालयमें यमधर नामके स्थिरचित्त साधु ठहरे हुए थें। दोनो भाइयोंने बड़ी विनयके साथ मुनिराजकी स्तुति की और उनसे भगवान पार्श्वनाथकी प्रतिमाका सब समाचार सुनाया। वे कहने लगे—मुनिराज, हमने पर्वतपर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीकी पूजा की, वहां पर एक इसी प्रकारकी प्रतिमा तैयार कराई, परन्तु जब हमलोग उसे

लेकर चले तो वह रास्तेके उस पर्वतपर ही अचल हो गई। सो भगवन्, आप बतलाइए यह घटना किस निमित्त और प्रयोजन से घटी है? हमें तो कुछ भी समझमें नहीं आरहा है।

योगिराजने इन दोनोंकी बात सुनी और कहने लगे—अमितवेग, तुम अगले भवमें स्वर्गमें उत्पन्न होगे और यह सुवेग विद्याधर भी पार्श्वनाथ भगवान्‌की पूजाको देखकर दूसरे भवमें निश्चितरूपसे जैनधर्म ग्रहण करेगा। इस प्रकार जब दोनों भाइयोंने अपने अन्य भवकी बात सुनी तो दोनों भाई मुनिराजके निकट दीक्षित होकर साधु होगये।

कुछ दिनोंमें सुवेग मुनि परीषहोंपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण मिथ्यात्वी होगया और अन्त समयमें आर्तध्यान पूर्वक मरण करके उसी पर्वतके निकट भगवान् पार्श्वनाथकी पूजाके स्थान पर भयंकर आकारधारी श्वेतवर्णका महान् हाथी हुआ। परन्तु महामुनि अमितवेगने घोर तपस्या की और उसके कारण वह स्वर्गमें दिव्य रूपधारी महर्द्धिक देव होगया और इसने पूर्वभवमें जो प्रतिमा (पार्श्वनाथ भगवान्‌की) विराजमान करनी चाही थी उसे लङ्कामें लाकर विराजमान कर दिया। जब निर्मल बुद्धिवाले कर्कण्डु महाराजने इस प्रतिमाके दर्शन किये तो उसने इसे नीचेकी गुफाके मध्यमें प्रतिष्ठित कर दिया।

जिनागमके पारगामी और तत्त्वोंके ज्ञाता आचार्य भव्य जीवोंके लिए रुचिकर इस सम्बन्धकी कथा इस प्रकार भी कहते हैं—

इस बीचमें पूर्वभवके अमितवेगके जीवने, जो स्वर्गमें जाकर देव हुआ था, सोचा—मेरा छोटा भाई सुवेग विद्याधर, जो अत्यन्त दिव्यदेहधारी और गंभीर बुद्धिशाली था, देखें तो मिथ्यात्वके कारण कहां उत्पन्न हुआ है? अवधि ज्ञानसे उसे मालूम हुआ कि सुवेगका वह जीव भूति पर्वतके शिखरपर हिमालयकी तरह महान् शुक्लवर्णका हाथी हुआ है। इस बातका परिज्ञान होते ही वह देव

तुरन्त इस हाथीके पास आया और अपने पूर्वभवकी स्मृति दिलाकर उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ग्रहण कराये। इसके सिवाय रात्रि भोजन, मद्य, मांस और मधुके त्यागका उपदेश देकर उस देवने इस हाथीके जीवको सम्यक्त्व ग्रहण करा दिया। हाथीका जीव विचार करने लगा—देखो, मैं कितना पापी हूँ, जिसने पूर्वजन्ममें सन्मार्गसे भ्रष्ट होकर पापोंके कारण ही तिर्यञ्च गतिमें यह हाथीकी पर्याय पाई। मैं इस पर्वतके भीषण जंगलमें विचरता हुआ कहाँ जिन-पूजा और मुनिराजके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त करता? परन्तु मेरा सत्पुण्य, जो आज मुझे इस पर्वतपर दोनोंका ही दर्शन हो रहा है।

जब पूर्वके अमितवेगके जीवने हाथीके हृदयमें वैराग्यकी धारा उमड़ती हुई देखी तो उसका मन भी स्नेहसे भर आया और वह कहने लगा—हाथीराज! देखो, इस पर्वतीय प्रदेशमें हम लोगोंने पार्श्वनाथ भगवान्‌की जिस प्रतिमाको खोदा था वह अब भी वहीं पर विराजमान है। तुम निकटके सरोवरसे कमल लाकर बड़ी भक्तिके साथ त्रिकाल इस प्रतिमाकी पूजा वन्दना किया करो। जब कोई इस प्रतिमाको यहाँसे उठाकर अन्यत्र ले जायगा, तब तुम उस समय सब प्रकारके आहारको छोड़कर सल्लेखना स्वीकार कर लेना। अमितवेगके भूतपूर्व जीवने अपने पूर्वभवके बड़े भाई हाथीके जीवको इस प्रकार उपदेश दिया और आप स्वर्गमें चला गया।

इधर यह हाथी प्रति दिन सरोवर जाता, वहांसे अपनी सूंडके द्वारा कमल और एक विस्तृत कमलिनीके पत्रमें स्वच्छ मोती सा जल लाता और प्रतिदिन उस जलसे भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमाका अभिषेक करता तथा कमलोंसे उसकी पूजा किया करता। तथा अन्तमें तीन प्रदक्षिणा देकर और नमस्कार करके प्रसन्नताके साथ वनमें चला जाता।

भरतक्षेत्रके दक्षिण प्रदेशमें विजयार्ध नामका महान् पर्वत

है। इस पर्वतपर एक रथनुपुर नामका नगर है जो अपनी समृद्धि-से कुबेरकी अलका नगरीको भी जीतनेकी इच्छा करता है।

इस नगरमें नील और महानील नामके दो विद्याधर भाई रहतें थे। एक बार इन दोनों भाइयोंका कुछ अन्य महान् पराक्रमी और विद्या-बलमें बढ़े-चढ़े विद्याधर कुमारोंके साथ युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें उन विद्याधर कुमारोंने इन दोनों भाइयों-को हरा दिया और इनकी विद्याओंको छीनकर इन्हें अपने नगर-से निकाल दिया।

दोनों भाइयोंने सोचा कि हमलोग धाराशिव नामके पर्वत पर चलें। वहाँ स्थापित जिन-प्रतिमाके दर्शन करनेसे हमारी सभी विद्याय फिरसे सिद्ध होजावेंगी और तब हमलोग अपने शत्रुओंको परास्त कर सकेंगे। यह सोचकर वे दोनों भाई आभीर देशके तेर नगरकी ओर चल दिये। और इस देशके समस्त राजाओंको अपने वशमें करते हुए इस तेर नगरसे भी विदा होगये। तेर नगरसे विदा होकर दोनों भाइ-योंने इस नगरके दक्षिणकी ओर तीन कोस रास्ता पार किया और फिर भीषण जंगलमें प्रवेश कर गये।

इस भीषण वनमें धार और शिव नामके महान् बलवान् समस्त भीलोंके अधिपति निवास करते थे। जब इन भिल्ल राजाओंने नील और महानीलको अपने यहां आये हुए देखा तो ये दोनों ही राजा इन भाइयोंके प्रति बड़े नम्र हुए और खूब धन सम्पत्ति देकर इनका बड़ा आदर किया।

एक समयकी वात है। सभा लगी हुई थी और उसमें सब लोग उपस्थित थे। उस समय नीलने इन भिल्ल राजाओंसे प्रश्न किया कि आप लोग यह बतलाइए कि शूरवीरोंके मनमें भी भय उत्पन्न करने वाले इस वनमें विहार करते हुए आप लोगोंने विद्वानोंको भी विस्मयमें डाल देने वाला कोई आश्चर्य तो नहीं देखा है? नीलकुमारका यह प्रश्न सुनकर धार राजा प्रस-

म्रता और उल्लासके साथ नीलसे बोला—कुमार, हमलोगोंने इस वनमें एक अतिशय अवश्य देखा है। वह यह कि इस जंगलमें एक महान् शुक्लवर्णका हाथी रहता है। यह हाथी प्रतिदिन निकटके सरोवरसे कमल और जल लाकर जलसे तो अपने आराध्यका अभिषेक करता है और फूलोंसे उसकी पूजा करता है। इसके पश्चात् तीन प्रदक्षिणा करके और उसे नमस्कार करके वह मन्द मन्द गतिसे वनमें चला जाता है। इस हाथी को हमलोगोंने अनक बार देखा है।

धारकी यह बात सुनकर नील और महानीलने इन दोनों भील राजाओंको अपने साथ लेलिया और वनमें एक वामीके पास उस महान् हाथीको देखा। उन लोगोंने देखा कि वह हाथी उस समय भी जलसे वामीका अभिषेक कर रहा है और सूण्डमें लिए हुए कमलोंसे बड़ी भक्तिके साथ उसकी पूजन कर रहा है। इसके सिवाय तीन प्रदक्षिणा देकर और पृथिवीपर अपना मस्तक टेककर वह नमस्कार भी कर रहा है। इस प्रकार वामीके सामने बैठे हुए और अपनी सफेदीसे आकाशको शुक्ल करने वाले हाथीको देखकर नील और महानील नामके दोनों भाई वहीं ठहर गये।

इस प्रकार उस वामीके निकट ठहरे हुए और उपवास करते हुए इन लोगोंको ६ दिन व्यतीत हो गये। जब उस स्थानमें रहने वाले देवताने इन भाइयोंकी यह भक्ति देखी तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और वह अपना रूप दिखाकर इन लोगोंसे कहने लगा—"अरे मनस्वी वत्स, आप लोग इस वामी-के सामने इतने दिनसे किस प्रयोजन-वश उपवास पूर्वक बैठे हुए हैं? आप लोग अपने मनकी बात बतलाइये।"

देवताकी बात सुनकर दोनों भाई कहने लगे—"भद्र! हम लोग अपने पूर्वपदकी प्राप्तिकी आशामें ही यहां जमे हुए हैं।" देवताने इन लोगोंकी बात सुनी तो वह स्पष्ट

वाणीमें कहने लगा—"भद्रों, आप लोग हमारी सत्य और और सुखकर बातको सुनिए। यहां पर भगवान पार्श्वनाथकी एक खोदी हुई प्रतिमा विद्यमान है। यह बिलकुल सत्य बात है। अब आप लोग जो चाहें सो करें।"

देवताकी बातके अनुसार नील और महानीलने भगवान् की वह प्रतिमा उखाड़ी और उसे सहस्र स्तम्भ वाली गुफामें विराजमान कर दिया। इसके पश्चात् दोनों भाइयोंने फाल्गुनकी अष्टाह्निकाके महापर्वके सुअवसरपर महामह पूजा की। उनकी विद्याएँ सिद्ध हो गईं और दोनों अपने नगरमें आ गये।

किन्हीं आचार्योंका यह मत है कि महाराज कर्कण्डुने वामीसे इस प्रतिमाको निकाला और उन्होने हीं इसे सहस्र स्तम्भ वाली गुफामें विराजमान किया। यह मत भी एक आचार्य-परम्परासे चला आ रहा है इसलिए इसे भी मिथ्या नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

जब उस हाथीने देखा कि यहांकी प्रतिमा उखाड़ ली गई है तो उसने हस्तिकूट गिरिपर बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ सल्लेखना लेली और आयुके अन्तमे वह अनेक प्रकारके वादित्रोंकी ध्वनिसे मुखरित माहेन्द्र नामके स्वर्गमें हार और कुण्डल आदि आभूषणोंसे भूषित महर्द्धिक देव हो गया।

एक समयकी बात है। तेरपुरमें धनमित्र नामका सेठ रहता था। धनमित्रकी पत्नीका नाम धनमति था, जो बड़ी ही रूपवती थी। इस सेठके यहां गोधनका पालन-पोषण करने वाला एक धनदत्त नामका ग्वाला रहता था।

एक दिनकी बात है। धनदत्त गायोंको लेकर मधुर मधुर गाता हुआ नदी और सरोवरोंसे सम्पन्न एक घासवाली तराईमें जा पहुंचा। वहां उसने जलसे लहराता हुआ और कमलोंसे खिला हुआ एक सुन्दर सरोवर देखा। उसके प्रसन्न

और सुगन्धित कमलोंको देखकर उसका जी ललचा गया और उसके मनमें आया कि एक कमल तो तोड़ ही लूं ।

इस पद्म-पूर्ण सरोवरकी एक देवता रक्षा किया करता था। फलतः अच्छा शूरवीर और बलवान् भी इस सरोवर-में प्रवेश नहीं कर पाता था। परन्तु ज्यों ही धनदत्तने इस सरो-वरमें प्रवेश करके एक कमल, जो अपनी सुगन्धसे दिशाओं-को सुवासित कर रहा था, तोड़ा, उस सरोवरके संरक्षक नाग देवताको बालकके इस भोलेपनपर रोष और संतोष दोनों हुए । वह धनदत्तसे कहने लगा—"बालक, देखो, तुमने जो यह कमल तोड़ा है, उससे तुम सम्पूर्ण संसारमें प्रधान देवोंके देवकी बड़ी तत्परताके साथ भक्ति करना । यदि तुमने मेरी इस सुख-कर बातका भी पालन नहीं किया तो याद रखना कि इस अपराधकी तुम्हें मेरे हाथसे कड़ी सजा मिलेगी।

धनदत्त इस सुगन्धित और खिले हुए कमलको साथ लेकर नगरमें आ गया और देवताकी बातके निर्वाहके लिए बड़े विस्मयके साथ इस प्रकार सोचने लगा—"हमारे सेठ धनमित्र सब लोगोंमें महान् हैं, सबके स्वामी हैं और सभी लोग प्रसन्न हृदयसे उनकी स्तुति करते हैं। इसलिए मुझे उनके पास पहुंचकर उन्हींकी पाद-पूजा करनी चाहिए।" यह सोचकर हाथमें कमल लिए हुए वह सेठ जीके सामने जा पहुँचा । जब धनमित्रने धनदत्तको हाथमें कमल लेकर बड़ी विनयके साथ अपने सामने उपस्थित देखा तो वह कहने लगा—"पुत्र, तुम यह कमल हाथमें लेकर क्या कार्य करनेको तैयार हो रहे हो ?"

सेठजीकी बात सुनकर धनदत्त कहने लगा—"सेठजी ! आप सब लोगोंमें महान् हैं और बड़े-बड़े साधु-सन्त आपका आदर करते हैं। इसलिए सबलोगोंके मनको प्रिय लगनेवाले हे सेठजी! मैं इस कमलसे आपके चरणोंकी पूजा करना चाहता हूं ।" जब धनमित्रने धनदत्तकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—"वत्स,

हमारा स्वामी नील है, जिसे सभी सज्जन पूजते हैं। इसलिए चलो हम और तुम दोनों ही जल्दीसे उनकी सेवामें पहुंचकर इस कमलसे उनकी ही पाद-पूजा करें।"

इस प्रकार दोनों नील महाराजके पास पहुंचे और धनदत्त नीलसे प्रार्थना करने लगा—"महाराज, आप सब लोगोंके गुरु हैं, श्रीमान् हैं और सब लोग आपको नमस्कार करते हैं। आपने समस्त शत्रुओंको अपने अधीन कर लिया है और आप सम्पूर्ण जनताके स्नेह भाजन हैं। इसलिए मैं इस कमलसे आपके चरण कमलकी पूजा करना चाहता हूं।"

जब जिनभक्तिपरायण नीलने धनदत्तकी विनयपूर्ण बात सुनी तो वह धनदत्तसे कहने लगा—"वत्स, मैं न तो सब लोगोंका गुरु हूं और न समस्त जनोंका पूज्य ही। इसलिये तुम इस कमलसे सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करने वाले मुनिराजकी पूजा करो।"

नील विद्याधरकी बात सुनकर धनदत्त मुनिराजके निकट पहुंचा और उनसे कहने लगा—"भगवन्! आप सबके गुरु हैं। इसलिए मैं इस कमलसे आपके चरणोंकी पूजा करना चाहता हूं।" मुनिराजनें धनदत्तकी यह भोली बात सुनी और कहने लगे—"भाई, मैं सबका महान् गुरु नहीं हूं। त्रिलोकके जीवोंके गुरु तो जिनेद्र भगवान् है, जो अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी-से सुशोभित हैं, तीन छत्रसे विराजित हैं; सिंहासनपर विरा-जमान हैं और सुर तथा असुर जिनकी पूजा करते हैं। इसलिए वत्स, तुम इन्द्रोंद्वारा पूज्य और वन्द्य इन्हीं त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्रदेवकी इस कमलसे भक्तिभावके साथ पूजा करो।"

मुनिराजकी बात सुनकर धनदत्तने इस एक कमलसे जिनेन्द्र भगवानके चरण-कमलकी बड़ी भक्तिके साथ पूजा की। और पूजाके अन्तमें बड़ी विनयके साथ जिनेन्द्र

भगवान्को नमस्कार करके वह धनमित्रके साथ सहर्ष घर चला आया।

भरत क्षेत्रमें श्रावस्ती नामकी उत्तम नगरी थी। श्रावस्ती धन धान्यसे इतनी समृद्ध थी कि कुवेरकी नगरी जैसे मालूम देती थी। इस नगरीमें नागदत्त नामका एक धनी सेठ रहता था। इसकी पत्नीका नाम नागदत्ता था। नागदत्ता नागकुमारीकी तरह मनोहर और मृदुभाषिणी थी। नागदत्तके घरपर एक ब्राह्मण रहता था, जो नागदत्ताके साथ कुकर्म किया करता था। जब नागदत्तको नागदत्ताके इस दुष्टाचरणका पता लगा तो वह विरक्त होकर सागरसेन मुनिराजके निकट दीक्षा लेकर तप करने लगा। नागदत्तने इतनी कठोर तपस्या की जो सामान्य मनुष्योंसे दुष्कर थी और अन्तमें वह इस तपस्याके प्रभावसें स्वर्गमें मनोहर देव हो गया।

पूर्वभवके नागदत्तका यह जीव स्वर्गसे चय कर चम्पा नगरीके वसुपालकी वसुमती पत्नीके पुत्र हुआ। इसका नाम दन्तिवाहन रक्खा गया। यह कला और विज्ञानमें पारंगत था तथा शरीरसे इतना सुन्दर था कि मूर्तिमान् कामदेवके समान प्रतीत होता था। उधर वह ब्राह्मण बहुत समय तक नागदत्ताके साथ सानन्द समय बिताता रहा। परन्तु, खेद कि एक दिन कालने इसे कथाशेष कर दिया। नीतिकारोंने ठीक ही कहा है कि "काल बड़ा बलवान् है।" इसके बाद संसारमें परिभ्रमण करके इस ब्राह्मणका जीव कलिङ्ग नामके महान् देशकी दन्तिपुर नामकी अटवीमें नर्मदातिलक नामका हाथी हो गया। एक बार किसी व्यक्तिने इस हाथीको देखा और अपने गौरवका ध्यान रखतें हुए दन्तिवाहन राजाके लिए यह हाथी भेंटस्वरूप समर्पित कर दिया।

इधर ताम्रलिप्त नामके नगरमें धनदत्त नामका धनी सेठ रहता था। इसकी पत्नीका नाम नागदत्ता था। नागदत्ता

बहुत ही मधुरभाषिणी थी। श्रावस्ती नगरीके नागदत्तकी पत्नी नागदत्ताका जीव चिरकाल तक संसार परिभ्रमण करके इन दोनोंके यहाँ धनमती पुत्रीके रूपमें जन्मा।

तथा नालन्दानगरमें धनदत्त नामका धनी सेठ रहता था, जो बड़ी ही भक्त प्रकृतिका था। इसकी पत्नीका नाम धनमित्रा था। धनमित्रा अत्यन्त सुन्दर और रूपवती थी। दोनोंके हृदय खूब ही पारस्परिक प्रेमसे आसक्त रहते थे। इन दोनोंके एक धनपाल नामका पुत्र था। धनपाल बड़ा ही रूपवान् और विनीत था। बाल सूर्यके समान कान्तिमान् और बुद्धिमान् इस धनपालके साथ धनदत्त और नागदत्ताने अपनी परम स्नेहभाजन पुत्री धनमतीका विवाह कर दिया।

धनमतीकी एक बहिन और थी, जिसका नाम धनश्री था। धनश्रीकी कान्ति श्रीकें समान थी, सुन्दरतामें वह रतिके सदृश थी और उसकी वाणी कोकिलाकी तरह मीठी थी।

परंच, वत्सकावती देशमें कौशाम्बी नामकी सुप्रसिद्ध नगरी थी। इस नगरीका राजा वसुपाल था और रानी वसुमती। वसुपालके नगरसेठका नाम वसुदत्त था। वसुदत्त बड़ा ही जिन-भक्त था। धनमतीकी बहिन धनश्रीका विवाह इसी राज–सेठ वसुदत्तके साथ उसके माता पिताने कर दिया और यह भी वसुदत्तके संसर्गसे जिन भगवान्‌की भक्त श्राविका बन गई।

कुछ दिनोंके पश्चात् वसुदत्तका स्वर्गवास हो गया। जब यह समाचार धनश्री की माता नागदत्ताको मिला तो वह बहुत शोकातुर हुई और पुत्रीको सान्त्वना देनेके लिए कौशाम्बीमें जा पहुँची। जब धनश्रीने अपनी माताको सामने उपस्थित देखा तो उसका मातृस्नेह उमड़ पड़ा और वह उठ कर माताके साथ बड़े जोरसे चिपट गई और खूब रोने लगी। जब रोना धोना बन्द हुआ, तो दोनोंने परस्परके सुख दुखके

समाचार पूछे और इस प्रकार नागदत्ता पुत्रीके प्रेमवश बहुत दिनों तक धनश्रीके पास ही रही आई।

एक दिन धनश्रीने देखा कि माताका मुख कमल शोकके कारण मुरझाता जा रहा है तो वह माँको मुनिराजके पास ले गई। मुनिराजने नागदत्ताको समझाया और रात्रि भोजन न करनेका उसे व्रत दिया। नागदत्ताने मुनिराजके द्वारा दिये गये व्रतको स्वीकार किया और फिर अपनी दूसरी कन्या धनमतीके पास नालन्दानगर चली गई।

जब नागदत्ता धनमती पुत्रीके यहां आगई तो पुत्रीके संसर्गके कारण यहां उसने रातमें भोजन कर लिया और फिर कौशाम्बी नगरीमें भी इसने रात्रि भोजन किया। इस प्रकार तीन बार इसने रात्रि भोजन त्याग व्रतका भङ्ग किया। फिर चौथी बार कौशाम्बी नगरीमें रहने वाली अपनी कनिष्ठा कन्या धनश्रीके पास यह पहुंची और वहाँ रहते रहते एक दिन इसकी मृत्यु होगई, और अपने शुभ–अशुभ कर्मोंके कारण कौशाम्बी नगरीके राजा वसुपालकी वसुमती नामकी पत्नीके गर्भमें कन्या रूपसे आगई। ज्यों ही नागदत्ताका जीव वसुमतीके गर्भमें आया वसुमतीको अत्यन्त दुखद श्वास, कास आदिक रोगोंने आघेरा और ज्यों ही इसका जन्म हुआ, रानीको इसके प्रति बड़ा विराग हुआ। इसलिए वसुमतीने इसके लिए एक सुन्दर अंगूठी बनवाई और उसमें यह लेख अङ्कित करा दिया कि यह कौशाम्बीके राजा वसुपालकी वसुमती पत्नीकी पुत्री है। यदि किसी बलवान् पूर्व पुण्यके कारण यह बच जावे और किसीको मिले तो वह इसे कृपापूर्वक पालित–पोषित करे। इस प्रकार इस अंगूठी और एक रत्नकम्बलके साथ इस कन्याको एक पिटारीमें बन्द कराकर रानीने इसे यमुना नदीके प्रवाहमें बहा दिया। वह पिटारी यमुनाके वेगवान प्रवाहके कारण तैरती हुई प्रयाग में जाकर गङ्गाकी धारामें मिल गई।

परंच, अङ्ग नामके महादेशमें चम्पा नामकी नगरी थी। इस नगरीका राजा दन्तिवाहन था और इसकी पत्नी का नाम वसुमित्रा।

इधर चम्पापुरीके निकट एक कुसुमपुर नामका नगर था। इस नगरमें कुन्ददन्त नामका कच्छिक (मालाकार) रहता था और इसकी पत्नीका नाम कुमुददन्तिका था। कुन्ददन्त नगर से वाहर निकला ही था कि उसे प्रभातके समय गङ्गामें बहती हुई वह पिटारी दिखलाई दी। उसने पिटारी पकड़ ली और जैसे ही पिटारी खोली, उसमें एक बालिका रक्खी हुई दिखलाई दी। कुन्ददन्त यह देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह इस पिटारी तथा इसके अन्दर रक्खी हुई सुकुमार बालिकाको लेकर अपनी पत्नीके पास आया और उसे अपनी पत्नीके हाथोंमें देकर कहने लगा—"लो, आजसे तुम इसे अपनी पुत्री समझना।" कुमुददन्ताने दूध आदिसे बालिकाका पालन-पोषण करके उसे बढ़ाया और उसका नाम पद्मावती रख दिया।

पद्मावती अवस्थाके क्रमसे यौवनके द्वारपर आ पहुँची। उसका यौवन कामियोंके मनको पीड़ित करने लगा और वह अपने पुष्ट तथा उन्नत कुचयुगलसे अत्यन्त सुन्दर मालूम देने लगी।

एक बार दन्तिवाहन राजाने इसे देखा तो देखते ही यह कामके वाणोंसे आहत होकर सोचने लगा—यह किसकी पुत्री है? उस समय राजाके मनोभावको समझ कर किसीने बतलाया कि राजन् यह एक मालाकारकी कन्या है। राजाने मालाकारसे पद्मावतीकी याचना की और उसके साथ विधिवत् विवाह कर लिया। दन्तिवाहन राजाका मन पद्मावतीके रूप पर इतना आसक्त हुआ कि इसने कलावती पद्मावतीको महादेवी बना दिया।

एक बार राजाने कुन्ददन्तसे पद्मावतीके सम्बन्धमें विशेष

पूछताछ की तो उसने पिटारीके मिलनेका वह सब वृत्तान्त राजाको सुना दिया और बतलाया कि यह कौशाम्बीके राजा वसुपालकी वसुमती नामक रानीकी कन्या है। कुन्ददन्त कहने लगा—राजन्, इसके नामकी एक रत्ननिर्मित अँगूठी और रत्न-कम्बल तथा एक पिटारी है, जो सब आपकी सेवामें उपस्थित है। यह कर उसने उन वस्तुओंको भी राजाके सामने रख दिया। इन सब चीजोंको देखकर पद्मावतीके सम्बन्धमें सभी लोगोंको ठीक प्रत्यय हो गया।

इस प्रकार रूप और यौवनसे सम्पन्न दन्तिवाहन राजा पद्मावतीके साथ उत्तम भोगोंको भोगता हुआ काल यापन कर रहा था कि इतनेमें वह गोपालकका जीव जिसने कमल-से जिनेन्द्र भगवान्की पूजा की थी, स्वर्गसे चय कर पद्मावती-के गर्भमें आगया। इस समय पद्मावतीके मनमें एक दोहला उत्पन्न हुआ, परन्तु उसकी पूर्ति न हो सकनेके कारण वह दिन प्रतिदिन दुर्बल रहने लगी।

जब राजाने पद्मावतीके दुर्बल शरीरको देखा तो वह उससे कहने लगा—"मेरे हृदय और नेत्रोंको आनन्द देने वाली तथा मेरे जीवनकी आधार प्रिये, तुम यह बताओ कि तुम्हारा शरीर दुर्बल क्यों होता जा रहा है?"

पतिदेवकी बात सुनकर पद्मावती कहने लगी—"प्राणनाथ! जबसे हमारे गर्भमें यह जीव आया है तबसे मेरे मनमें एक इस प्रकारका दोहला उत्पन्न हो रहा है कि मैं मनुष्यका वेष धारण करके नर्मदा तिलक नामके उन्नत हाथीपर आपके साथ सवारी करूँ और जिस समय मेघ मन्द मन्द गर्जनापूर्वक नन्हीं नन्हीं बूंद गिरा रहे हों, चम्पापुरीकी प्रदक्षिणा करूँ।

जब राजाने पद्मावतीका यह दोहला सुना तो उसने अपने मनष्योंके द्वारा नर्मदा तिलक हाथीको बुलाकर उसे झूल आदि-से मण्डित कराया और सोलह प्रकारके आभूषणोंसे भूषित

पद्मावतीको पुरुषके वेषमें सज्जित कर दिया। इस तरह सब प्रकारकी तैयारीके पश्चात् दन्तिवाहन भूपतिने रानीको मदोन्मत्त हाथीके आगे बिठलाया और स्वयं उसके पीछे बैठ गया तथा नगरकी प्रदक्षिणा करने लगा।

पद्मावती और दन्तिवाहन महाराज इसतरह नगरकी प्रदक्षिणा कर ही रहे थे कि इतनेमें राजाका प्रियमित्र वायुवेग नामका एक विद्याधर जो सोलह प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित और अत्यन्त रूपवान था, वायुके वेगकी तरह तीव्रगतिसे वहाँ आया। उसने अपनी विद्याके बलसे आकाशमें गर्जना करता हुआ एक मेघ तैयार कर दिया और उसमें इन्द्र धनुषकी शोभासे चित्र विचित्र रंग भर दिये। उस समय उस विद्याधरने ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर दिया कि सुगन्धित जलकी एक एक बूँदके रूपमें वृष्टि होने लगी और मन्द-मन्द वायु बहने लगी।

इधर नर्मदातिलक हाथीने ज्यों ही आकाशमें छाये हुए और जलकण बरसाते हुए मेघको देखा और दिशाओंको सुगन्धित करने वाली सुगन्धित वायुको सूंघा तो उसे अपने चिरवसित और वृक्षमालासे अलंकृत विन्ध्याचलके शल्लकी वनकी स्मृति हो उठी और तब यह बलवान् हाथी जनसमूहके देखते देखते ही नगरसे अटवीकी ओर चल दिया।

जब हाथी उत्तरोत्तर अधिक वेगसे दौड़ने लगा तो पद्मावती अपने पतिदेव दन्तिवाहनसे कहने लगी—"नाथ, देखो, मेरे द्वारा आपके ऊपर भी यह घोर संकट आ पड़ा। इस समय कदाचित् हमारे साथ आपकी जीवन लीला भी समाप्त हो गई तो समस्त पृथ्वी ही नष्ट हो जायगी। इसलिए आप किसी निकटवर्ती वृक्षकी शाखाको पकड़कर पर्वतके समान इस उन्नत हाथीसे शीघ्र ही उतर जाइए। मैं अपने कर्मोंके फलसे प्राप्त हुए दुःखोंके भारसे दैवके भरोसे हाथीके साथ ही जाऊँगी।"

राजाने पद्मावतीकी बातको आदरके साथ सुना और वह

मार्गमें आए हुए एक वृक्षकी शाखाको पकड़कर हाथीपरसे उतर पड़ा। राजाका मन बड़ा दुःखी था और चित्त पद्मावती-की ओर ही लगा हुआ था। फिर भी वह पद्मावतीके गुणों-का स्मरण करता हुआ अपने घर आ गया।

उधर नर्मदातिलक हाथी पद्मावतीको अपनी पीठपर बिठाये हुए कलिङ्ग देशके दन्तिपुरके जंगलमें जा पहुंचा। वहाँ पहुंचकर उसने एक ऐसे सरोवरमें प्रवेश किया जो अनेक प्रकारके पद्मोंसे पूर्ण था, हंस और सारसकी बोलियोंसे शब्दा-यमान था, और समुद्रकी तरह विशाल लहरोंसे लहरा रहा था। ज्यों ही हाथीने इस सरोवरमें प्रवेश किया, पद्मावती उसके ऊपरसे जलमें कूद पड़ी और पानीसे बाहर निकलकर स्थलपर आ गई। वहां वह सरोवरके तटपर स्थित वटवृक्षके नीचे खड़ी हो गई और चारों ओर देखने लगी। उस समय वह ऐसी मालूम देती थी जैसे साक्षात् जलदेवी हो। हाथीने भी केवल क्षण भर तक सरोवरमें गोता लगाया और तुरन्त ही वहांसे निकलकर अपने इच्छित स्थानकी ओर चल दिया।

इस बीच दन्तिपुरका शतभट नामका सुजन मालाकार उस सरोवर पर पहुंचा और उसे पद्मावती दिखलाई पड़ी। उसे देखकर शतभटको ऐसा मालूम दिया जैसे रूप और यौवन-से मण्डित वनदेवी खड़ी हो। उसने पद्मावतीसे सब वृत्तान्त पूछा और बहिनके स्नेहवश वह उसे अपने घर ले गया। पद्मा-वती इस प्रकार दन्तिपुरके शतभटके मकानमें ही प्रसन्नता पूर्वक रहने लगी।

एक समयकी बात है। शतभट मालाकार धन-प्राप्तिकी इच्छासे फूल लेकर एक दूसरे गाँवमें बेचने पहुंचा। वह लौटकर घर नहीं आ पाया कि इतनेमें उसकी विपरीत मनोवृत्तिवाली पत्नीने उस साध्वीको प्रसवकालके निकट रहने पर भी घरसे बाहर निकाल दिया। अतः पद्मावती यहाँसे चलकर दन्ति

पुरके निकटवर्ती अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सघन, महाभयंकर घोर श्मशान भूमिमें जा पहुंची और उसने रौरव श्मशान भूमिमें ही एक माङ्गलिक पुत्रको जन्म दिया जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था और जिसका अङ्ग प्रत्यङ्ग सौन्दर्यसे निखर रहा था। वाल सूर्यके समान कान्तिमान् पुत्रको देखकर पद्मावतीको संतोष हुआ; परन्तु अपनी दयनीय दशाको देखकर उसका मन बड़ा ही शोकाकुल और दुखित हुआ।

इस समय ही वहां एक बालदेव नामका विद्याधर मातङ्ग के रूपमें चिताकी रक्षा करता हुआ उपस्थित था। पद्मावती को देखकर यह विनयसे नम्र हो गया और उससे बोला—भगवती, आप मेरे वृत्तान्तको एक चित्त होकर सुनिए। यहकर वह निम्नलिखित कथानक सुनाने लगा—

"जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्ध नामका एक उन्नत पर्वत है। इस पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक विद्युत्प्रभ नामका नगर था, जो मणि-निर्मित प्रासादोंसे मण्डित था और जिसमें अनेक विद्याधर निवास किया करते थे। इस नगरके राजाका नाम विद्युत्प्रभ था, जो समस्त विद्याधरोंका अधिपति था। इसकी महादेवीका नाम विद्युल्लेखा था जो बड़ी ही सुन्दरी थी। मैं इन दोनोंका पुत्र हूँ और बालदेव मेरा नाम है। मेरी पत्नीका नाम हेममाला है। मैं दक्षिण दिशामें इसके साथ घूम कर अभी ही वापिस आया हूं।

परंच, कलिङ्ग और आन्ध्रदेशकी सीमाकी संधिमें अपने शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ रामगिरि नामका एक पर्वत है। जब वृक्षोंकी आवलीसे मण्डित पर्वतके ऊपर होकर मेरा इच्छानुसार गमन करने वाला विमान अचानक एक दम रुक गया तो—भद्रे, मैंने तुरन्त ही विमानके रुकनेके कारणको जाननेके लिए दिशाओंमें इधर-उधर देखना शुरू किया। परन्तु जब कोई कारण दृष्टिगोचर नहीं हुआ तो मेरे मनमें बड़ा संभ्रम

हुआ। इसके पश्चात् जब मैंने नीचेंकी ओर दृष्टि डाली तो मुझे समस्त प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेवाले निर्दोष मुनिराज दिखलाई दिए। यह मुनिराज ध्यानस्थित थे और मुझे वे इस रूपमे दिखलाई दिए जैसे ध्यानके साक्षात् पर्वत हों या मूर्तिमान धर्म हों। मैं इस पर्वतपर अपनी पत्नीके साथ क्रीड़ा करनेकी भावनासे बहुत तेज गतिसे आकाश मार्गसे जा रहा था। जब सहसा मेरा विमान रुक गया और मुझे मालूम हुआ कि मुनिराजके प्रभावके कारण ही मेरा विमान रुक गया है तो मुझे बड़ा क्रोध आया। मेरा हृदय पत्थरकी तरह कठोर हो गया और मैंने मुनिराजपर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया।

मेरे दुःसह उपसर्गके कारण मुनिराजको भी क्रोध हो आया। उनका हृदय प्रतिशोधकी भावनासे भर गया और उन्होंने क्रोधके आवेशमें मुझे शाप दे डाला—"अरे, पापी, दुराचारी और अधर्म हृदय, इस असह्य और अमानुषिक उपसर्गके कारण मैं तुम्हें शाप देता हूं कि इसी क्षण तुम्हारी समस्त विद्यायें विलीन हो जावें।"

मुनिराजके मुँहसे इस शाप-वाक्यके निकलते ही मेरी समस्त विद्यायें तत्काल ही विलीन हो गईं। जब मैंने अपने आपको विद्याओंसे बिल्कुल ही शून्य पाया तो मेरा मन दीन हुआ और मै योगिराजकी सेवामें निवेदन करने लगा—"समस्त प्राणियोंको आनन्द देने वाले और सम्पूर्ण जीवोंपर अनुकम्पा रखने वाले भगवन्! यह बतलानेकी कृपा कीजिए कि अब मुझ अधर्मीका यह शाप किस प्रकार दूर होगा" ?

योगिराजने मेरी प्रार्थना सुनी और उनका मन करुणासे द्रवित हो उठा। वे अपने दिव्यज्ञानके बलसे मुझसे इस प्रकार कहने लगे—

"अङ्ग नामके महान् देशमें चम्पा नामकी नगरी है।

वहाँके राजाका नाम दन्तिवाहन है और रानीका नाम पद्मावती। नर्मदातिलक नामका हाथी इस गर्भिणी पद्मावतीको अपनी पीठपर बिठाये चम्पानगरीसे भाग दिया और इसे समृद्धि-सम्पन्न कलिङ्ग देशके दन्तिपुरमें ले आया।

इस नगरका राजा बलवाहन है और पत्नीका नाम बलवाहना। बलवाहना बड़ी ही सुन्दर और विनीत है। यह राजा अपने भूखण्डसे सम्पन्न है, चतुरङ्ग सेनासे अलंकृत है और बहुत ही धनवान् है, परन्तु इसके पुत्र एक भी नहीं है। इसी दन्तिपुर नगरमें एक शतभट नामका मालाकार रहता है। इसकी पत्नीका नाम मारिदत्ता है जो बहुत ही क्रूर और कठोर हृदयकी है।

नर्मदातिलक नामका हाथी उस गर्भिणी पद्मावतीको इसी दन्तिपुरकी अटवीमें ले आया और वहाँ यह उस मालाकारको दिखलाई दी। वह मालाकार पद्मावतीको बहिन मानकर बड़े आदरके साथ उसे अपने घर ले आया। परन्तु मालाकारकी अनुपस्थितिमें उसकी पत्नी पद्मावतीको प्रसवके ऐन मौकेपर घरसे बाहर निकाल देगी। पद्मावती वहांके भयंकर श्मशानमें पहुंचकर समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक पुत्रको जन्म देगी। इस कुमारका शरीर अत्यन्त सुकुमार होगा और यह इतना सुन्दर होगा कि इसे देखकर प्रत्येक व्यक्तिका हृदय मुग्ध हो सकता है। आगे चलकर यही बालक इस पृथिवी मण्डलका राजा होगा। मुनिराज कहने लगे—"विद्याधर, तुम शरीरके तेजसे चमकते हुए इस दिव्य बालकको पद्मावतीके पाससे लेकर अपने घर ले जाना। उसे पालना, पोसना और बड़ा करना। जिस समय यह बालक बड़ा होकर दन्तिपुरमें विस्तृत राज्यका अधिकारी बनेगा, उसी क्षण तुम्हारी समस्त विद्याएँ पूर्वानुरागवश तुम्हें पुनः प्राप्त हो जावेंगी।"

बालदेव विद्याधर पद्मावतीसे कहने लगा—"हे सुतनु! मैं

मुनिराजके आदेशसे ही इस महाभयंकर श्मशानभूमिमें अब तक ठहरा रहा। मुनिराजने जो आदेश दिया था उसका एक भाग तो हमारे सामने आगया और दूसरा भी निकट भविष्यमें आ जावेगा. क्योंकि मुनिराज कभी भी अन्यथा नहीं कह सकते।"

"भद्रे, इस कारण आप इस बालकको मुझे दे दीजिये। मैं इसे अभी घर लिये जाता हूं और सावधानीके साथ इसका पालन पोषण करूँगा। आशा है, आप इस प्रस्तावको स्वीकार करेंगी और बालककी ओरसे निश्चिन्त रहेंगी।"

पद्मावतीने विद्याधरकी बात सुनी तो कहने लगी—"अच्छी बात है, भैया! परन्तु इसका पुत्रके समान ही पालन करना।"

बालदेव विद्याधरने पद्मावतीको प्रणाम किया और बालकको लेकर वह शीघ्र ही घर आ गया। बालदेवका हृदय बालकके स्नेहसे भरा जा रहा था। उसने बड़े आदरके साथ उस बालकको अपनी पत्नी हेममालाके हाथोंमें सोंप दिया। इस तरह बालक बालदेवके भवनमें और हेममालाकी देख-रेखमें बालचन्दकी तरह दिन प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होने लगा।

इधर पद्मावती भी श्मशान भूमिसे चली आई और आकर दन्तिपुरमें रहने लगी। दन्तिपुरमें भी वह कुछ दिन तक ही रही इसके पश्चात् वह यहाँसे भी चल दी। उसका मन अब भोगोंसे विमुख हो चुका था। वह समाधिगुप्त मुनिराजके निकट जा पहुँची और उन्हें नमस्कार करके सुव्रता नामक आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली।

पद्मावतीने इस प्रकार दीक्षा तो ले ली; किन्तु उसके मनसे अपने पुत्रका वात्सल्य और शल्य दूर नहीं हुए। इसलिये एक दिन वह पुत्रशोकसे व्याकुल होकर घीकी पुड़ी और लड्डुओंको लेकर बालदेवके घर जा पहुँची। उसने अपने प्रेम-पात्र बालकको स्नेहसे देखा और उसे उत्तमोत्तम भक्ष्य पदार्थोंको

देकर वह अपने इच्छित स्थानपर चली गई। एक बार वह फिरसे अपने बालकको देखने आई, परन्तु इस बार उसके हाथों-पैरोंमें खाज-खुजली देखकर वह बड़ी दुखी हुई। उस समय उसने बालदेवके सामने ही अपने इस पुत्रका नाम कर्कण्डु रख दिया और इसके बाद वह चली गई। कर्कण्डु भी इस प्रकार पालित-पोषित होकर बड़ा होगया।

परंच, बालदेव विद्याधरने जिस श्मशानकी पहले रक्षा की थी उसी श्मशानमें पड़े हुए कपालसे तीन बाँस उत्पन्न हुए— एक बाँस इस कपालके मुँहसे निकला और दो बाँस उसकी दोनों आँखोंसे ।

एक समयकी बात है। एक बड़े भारी निर्दोष संघके साथ विहार करते हुये यशोभद्र और वीरभद्र नामके आचार्य जो दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न थे और गुणों तथा शीलके महान् समुद्र थे, दन्तिपुरके निकटवर्ती श्मशानमें ठहरे। उनमेंसे युवक मुनिराजने इन तीनों बाँसोंको देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ वह अपने आचार्यसे कहने लगे—महाराज, लोगोंके मनको अतिशय आश्चर्यमें डालनेवाला यह दृश्य तो देखिये, जो एक मनुष्यके कपालको पार करके तीन बाँस निकले हुए हैं ? निर्मल ज्ञानी यशोभद्र आचार्यके ज्ञानमें इस घटनाका रहस्य प्रतिभासित होगया। वे इन्हें देखकर कहने लगे—"जिस मनुष्यके छत्र, ध्वजा और अंकुशके डण्डे इन बांसोसे बनेंगे वह समस्त भूमण्डलका राजा बनेगा।"

जिस समय आचार्य महाराजने यह वाक्य कहा उस समय वहाँ सुमति नामका ब्राह्मण मौजूद था। आचार्यका यह वाक्य सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—संसारमें मुनि-राजका कथन कभी भी अप्रामाणिक नहीं हो सकता। इसलिये इन बांसोको ले जाकर मैं अवश्य ही स्थिरता पूर्वक चिरकाल तक राज्य कर सकता हूँ।

यह सोचकर उसने तीनों ही बाँस काट डाले इन्हें लेकर वह शीघ्रताके साथ अपने नगरकी ओर जा रहा था कि इतनेमें उसे करकण्डुने देख लिया और उसके हाथसे वे तीनों बांस छीन लिये।

जब सुमति नामके ब्राह्मणने समस्त प्रशस्त लक्षणोंसे सम्पन्न और अत्यन्त सौन्दर्यशाली करकण्डु कुमारको देखा तो उसका मन बड़ा ही विस्मित हुआ और वह सोचने लगा कि मुनिराजने जो समस्त भूमण्डलके भावी राजाका नाम लिया था सो उस प्रकारके राजा होनेकी पात्रता इसी कुमारमें दीख रही है। मैं उस पदकी प्राप्तिका पात्र नहीं हूँ।

इस प्रकारका विचार करके अत्यन्त विस्मयमें निमग्न उस ब्राह्मणने करकण्डुसे कहा—कुमार, आप हमारी बातको जरा ध्यान देकर सुनिये। इन तीन बांसोंको देखकर श्मशानमें ठहरे हुए एक मुनिराजने मेरे सामने जो आदेश प्रकट किया था वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और सत्य है। वह आदेश यह है कि जो मनुष्य इन बांसोको ग्रहण करेगा वह अपने समस्त शत्रुओंको अधीन करके सम्पूर्ण संसारका राजा बनेगा। इस समय मुनिराजके द्वारा किया गया आदेश सत्य होता दीख रहा है। आप शीघ्र ही समस्त संसारके अधिपति बनेंगे। एक बाँस आपके सफेद छत्रका दण्ड बनेगा, दूसरा अंकुशका दण्ड बनेगा और तीसरा आपकी शुक्ल ध्वजाका दण्ड होगा। इसलिये कुमार, इन तीनों ही बांसोंको सावधानीके साथ रखना। यदि आपने इस सम्बन्धमें कोई प्रमाद नहीं किया तो आप अवश्य ही राज्य-लक्ष्मीको प्राप्त करेंगे। परन्तु हे धर्मात्मन्, इस अवसरपर आपसे एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ और वह यह कि यदि आप राज्यके अधिकारी बनें तो मुझे मन्त्रीका पद अवश्य ही प्रदान करना।" बुद्धिमान् सुमति

नामका ब्राह्मण करकण्डु कुमारसे इस प्रकार घटना सुनाकर आनन्दके साथ घर चला गया।

इधर करकण्डु कुमार ब्राह्मणके हाथसे इन बाँसोको लेकर श्मशान भूमिमें आया और वहाँ एक वृक्षके नीचे अपनी थकावट दूर करनेके निमित्त सोगया।

इसके बाद एक अन्य घटना घटित हुई। दन्तिपुरका गुणज्ञ राजा, जिसका नाम वलवाहन था और जिसके एक भी पुत्र न था, अचानक मर गया। इसकी मृत्युके पश्चात् इसके संसार-प्रसिद्ध वंशमें एक भी ऐसा योग्य व्यक्ति न था, जिसे दन्ति-पुरके सिंहासनपर बिठलाया जा सकता। ऐसी परिस्थितिमें वहाँकी सम्पूर्ण जनता बहुत ही व्याकुल हो रही थी। अन्त-में राजाके मन्त्रियोंने जनताकी सम्मतिसे एक राज-हाथीको जलसे नहलाया, कुंकुमसे चर्चित किया, सुगन्धित पुष्पमालाएँ पहिनायीं, धूपसे सुवासित किया और सोनेके मनोहर ध्वनि करनेवाले घंटे बांधे। तथा उसकी सूंडमें जलसे भरा कलश देकर उसे छोड़ दिया।

यह हाथी उद्यान. बाजार, प्रासाद, मन्दिर, नदी, वापी, तडाग आदिको लाँघता हुआ श्मशान भूमिमें जा पहुँचा, जहाँ करकण्डुकुमार सोया हुआ पड़ा था। हाथीने कुमारकी तीन प्रदक्षिणा की और सूंड़के कलशके जलसे उसका अभि-षेक करके उसे अपनी पीठपर बिठा लिया। कामके समान सुन्दर वाले करकण्डुकुमारको लेकर राज-हाथी बाजों और घंटोसे माङ्गलिक ध्वनि करता हुआ राज-भवनमें जा पहुँचा और वहाँ मणिमय स्तंभोंसे बने हुए सभा भवनमें पहुँचकर उसने करकण्डुकुमारको सिंहासनपर प्रतिष्ठित कर दिया। इसके पश्चात् हाथीने सुवर्ण-कलशोंसे उस कुमारका अभिषेक किया, केशरसे लिम्पन किया और पुष्पमालाओंसे पूजा करके उसे खूब ही भूषित कर दिया।

उसके बाद उपस्थित राजाओं और मन्त्रियोंने कर्कण्डुको पट्ट बन्ध बांधा और अन्य राजकर्मचारी उसके चरणकमलको प्रणाम करने लगे। इस समय राजमन्त्री इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने याचकोंके लिये रत्न, सोना–चांदी, हाथी–घोड़े आदि प्रत्येक वस्तु दानमें दी। इस प्रकार धर्मके माहात्म्यसे कर्कण्डु महाराज दन्तिपुरमें शत्रुओंको अधीन करके इस प्रकार राज्य करने लगे, जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गमें करता है।

भव्यजीवों! देखिये, धनदत्त नामके ग्वालने जिनभक्तिसे प्रेरित होकर एक कमलके द्वारा जिन भगवान्‌की पूजा की। इस धर्मकृत्यके माहात्म्यसे वह इस प्रकारके स्वर्गमें देव हुआ, जहाँ नित्य ही स्तुति-पाठकोंकी श्रुतिमधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है और जो देव और देवियोंसे अत्यन्त ही मनोहर है। वह देव वहाँके दिव्य और मानसिक इष्ट सुखको भोगकर दन्ति-वाहन राजाकी पद्मावतीके पुत्र हुआ। और वही पुत्र आज दन्तिपुरके सिंहासनपर आसीन है। इसलिये सज्जनो, उस ग्वालके एक कमलके द्वारा कमाये गये पुण्यके विस्तारको देख-कर आप लोग भी धर्मको अङ्गीकार करिये, जिससे आप लोग भी उस परम पद मोक्षको प्राप्त कर सकें। अस्तु,

इधर कर्कण्डु महाराजके पट्टबन्धको देखकर बालदेवकी विलीन हुईं समस्त विद्याएँ एकदम प्रकट होगईं। उस समय वह बालदेव विद्याधर कर्कण्डु महाराजके सभा-मण्डपमें बैठे हुये समस्त सभ्योंसे कहने लगा–सभासदो, आप लोग आपसका वार्तालाप छोड़कर मेरी बातको एकचित्त होकर सुनियें–

"मैंने कर्कण्डु महाराज की, जब यह शिशु थे, मातङ्गका रूप धारण करके श्मशान भूमिमें रक्षा की और अपने घर लाकर कुमार अवस्थामें इनका पालन पोषण किया। परन्तु

न तो मैं मातङ्ग हूँ और न यह महाराज ही मातङ्ग पुत्र हैं। यह सुकुमार कुमार महान् वंशके प्रसूत रत्न हैं।

अङ्गदेशकी चम्पा नामकी नगरीमें दन्तिवाहन नामका राजा है। जिसकी महादेवीका नाम पद्मावती है। यह रूपवान् कुमार इसी पद्मावती रानीके सुपुत्र हैं। और मातङ्ग वेषधारी मैंने ही इन्हें अपने घर रखकर इतना बड़ा किया है। इनकी माता पद्मावतीने जैन दीक्षा लेली और यह इसी नगरमें शील-सम्पन्न साध्वी आर्यिकाके रूपमें विराजमान हैं।"

बालदेव विद्याधर इस प्रकार सभ्योंको कर्कण्डुकुमारका और अपना पूर्व परिचय देकर अपने नगर चला आया।

कर्कण्डु महाराजने कपाल पार करके निकले हुये उन तीन बांसोंसे अपने छत्र, अंकुश और ध्वजाके मनोहर दंड बनवा लिये। तदनन्तर उसने सुमति नामके ब्राह्मणको बुलवाया और उसे विधिवत् महामन्त्रीका पद प्रदानकर दिया।

जब पद्मावती आर्यिकाको कर्कण्डु कुमारके सिंहासनासीन होनेकी खबर लगी तो वह अपने पुत्र-प्रेमके कारण कलिङ्ग-देशके अधिपति कर्कण्डु महाराजके पास आ पहुँची।

ज्योंही कर्कण्डु महाराजने अपनी माँको देखा वह तुरन्त अपने सिंहासनसे उठ बैठा और बड़ी भक्तिके साथ उसने अपनी माँकी पूजा की।

एक समयकी घटना है। कर्कण्डु महाराज सिंहासनपर विराजमान थे। इतनेमें दन्तिवाहन राजाका दूत उसके पास आया और कहने लगा—"महाराज, अङ्गदेशके स्वामी, महा-राजाधिराज दन्तिवाहनने मेरे द्वारा आपके लिये यह सन्देश भिजवाया है कि कलिङ्गदेशके राजा आप अपने सैन्यसमुदायके साथ पवित्र चम्पापुरीमें आवें।"

ज्यों ही कलिङ्गाधिपति कर्कण्डुने दन्तिवाहन राजाके दूतसे

यह समाचार सुना, उन्हें बड़ा क्रोध हो आया और वे दूतसे बोले—"मुझे अंगदेशसे क्या मतलव है, चम्पापुरीसे क्या काम है और तुम्हारे राजा दन्तिवाहनसे भी क्या लेना है ? क्या हमारा राज्य, हाथी-घोड़े, रथ और पदाति आदि सब हमें तुम्हारी ही कृपासे मिला हुआ है, जिससें तुम्हारा स्वामी इस प्रकारकी अहंकारपूर्ण बात कर रहा है ?" कर्कण्डु महाराजने दन्तिवाहनके दूतको इस प्रकार खूब खरी डाँट पिलाकर उसके मालिकके पास वापिस भेज दिया।

दूतने दन्तिपुरसे प्रस्थान किया और चलते चलते वह चम्पानगरीमें दन्तिवाहन राजाके पास आगया। भयके कारण उसका समस्त शरीर कँप रहा था और उसके मनमें इस बातका आश्चर्य होरहा था कि यह कुसमाचार राजाको कैसे सुनाऊँ ? अन्त में कुछ साहसके साथ वह राजा दन्ति-वाहनसे कहने लगा—"राजन्, कलिंगदेशका वह अधिपति कर्कण्डु आप सरीखे नरसिंहको भी तिनकेके समान भी नहीं समझता।"

दूतके मुंहसे यह सन्देश सुनकर राजा दन्तिवाहन चतुरङ्ग सेनाको लेकर नगरसे वाहर निकला। इधर कर्कण्डु महाराजने भी अपने नगरमें युद्धकी घोषणा करवा दी। एक आदमी हाथीकी पीठपर बैठकर हाथसे भेरी बजाने लगा और महा-राजका आदेश सुनाने लगा। भेरीकी उस ध्वनिको सुनकर समस्त राजा, मन्त्री, और सिपाही सबके सब संग्रामके लिये तैयार होकर राजद्वारपर आगये। और इस तरह सम्पूर्ण चतु-रङ्ग सेना युद्धकी भेरीके शब्दको सुनकर तैयार हो गई।

धनुर्धारियोंने दिव्य कवच पहिन लिये और कन्धोंपर धनुष टांगकर वे तुरन्त वहाँसे चल दिये। इसके पश्चात् वे धीर लोग रवाना हुये, जिनके हाथमें पूर्णिमाके चाँदकी तरह चमकता हुआ दिव्य फार और कडितल्ल नामका शस्त्र था। इनके पीछे संग्राम रसिक वे सुभट चले, जिनके हाथमें यम-

राजकी जिह्वाके समान आकारवाले भाले थे। इनके पश्चात् बड़े बड़े दांतवाले मदोन्मत्त हाथी चले। इनके पश्चात् रथ चले जो दमकते हुये सोनेके बने थे और जिनके बीचमें हीरा पन्ना मोती जड़े हुये थे। दो दो घोड़े इनमें जुते थे और सारथी हांक रहे थे। इनके पीछे अच्छी जातिके घोड़े चले, जिनपर अश्वारोही सवार थे, वायु और मनके वेग-की तरह तीव्रगतिसे चलते थे और अपनी हिनहिनाहटके शब्दोंसे दिङ्‌मण्डलको गुञ्जायमान कर रहे थे। इन सबके पीछे चपल घोड़ोंपर सवार हुये अनेक अश्वारोहियोंसे वेष्टित कर्कण्डु महाराज चले।

कर्कण्डु महाराज जात्यश्वपर बैठे हुए थे। उनके दोनों ओर चमर ढुर रहे थे। सिर पर उन्नत और शुक्ल छत्र तना हुआ था और बन्दीजन उनका विरुद गान करते जा रहे थे।

इस प्रकार कर्कण्डु महाराज अपनी बहुत विशाल सेनाके साथ मार्गमें आने वाली नदी, सरोवर, कुटीर, गिरि, गहन वन, पवित्र आश्रम, महातीर्थ और असंख्य जनोंसे वेष्टित देशको पार करते हुए चम्पा नगरीमें आगये।

जब चम्पा नरेश दन्तिवाहन और उसकी सेनाने अपने प्रतिद्वन्दियोंको उपस्थित हुआ देखा तो दोनों ओरकी सेनाऐं संग्राम रसकी उत्सुकताको बड़े उत्साहके साथ प्रकट करने लगीं और उत्तेजक शब्दोंके साथ परस्परमें लड़ाई छिड़ गई।

इसी बीचमें बुद्धिमती पद्मावती आर्यिका शीघ्र ही महाराज दन्तिवाहनके पास आई और कहने लगी—"राजन्, आपने यह क्या संसारका कारण और अपयशको बढ़ाने वाला संग्राम अपने पुत्रके ही साथ छेड़ दिया है?"

जब राजाने पद्मावतीकी यह बात सुनी तो उसका हृदय कौतुकसे भर गया और वह आर्यिकासे अपनी बातको और

अधिक स्पष्ट रूपमें रखनेकी प्रार्थना करता हुआ बोला–"हे आर्ये ! आप कहाँसे आ रही हैं ? आपका नाम क्या है ? और यह भी बतलाइए कि यह कलिङ्गाधिपति हमारा पुत्र कैसे है ?

आर्यिका बोली–"राजन् ! आप एकचित्त होकर सुनिए। आपने जो प्रश्न किये हैं मैं उनका एक एक कर उत्तर देती हूँ" यह कहकर आर्यिका पिछली घटनाएँ सुनाने लगी। उसने कहा– "राजन् ! आप पूर्वकालकी घटना याद कीजिए, जब आप मेरी सम्मतिसे हाथीपरसे उतर पड़े थे और मैं उसीपर बैठी रह गई थी। उस समय वह हाथी मुझे विदेशमें ले गया। जब यह हाथी जंगलके एक सरोवरमें घुसा तो मैं इस गर्भस्थित पुत्रके कारण उसकी पीठसे जलमें उतर गई और फिर स्थलपर आगई। अन्तमें मैंने दन्तिपुरके भयंकर स्मशानमें समस्त लक्षणोंसे लक्षित इस सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। बालदेव नामके विद्याधर-ने अपने घर लेजाकर इसे पाला पोषा और मैंने आपके वियोग-से दुखित होकर यह दीक्षा लेली। इधर दन्तिपुरके बलवाहन राजाके कोई सन्तान नहीं थी। जब इसका स्वर्गवास हुआ तो यह कुमार अपने ही पुण्यके कारण वहाँका अधिपति बना दिया गया। अपने शैशव कालमें इसके हाथ पैरोंमें खाज–खुजली होगई थी अतः मैंने ही इसका सार्थक नाम कर्कण्डु रखा था।"

आर्यिकाकी यथार्थ बात सुन कर राजा दन्तिवाहनके हृदयसे समस्त वैरभाव दूर होगया और उसमें पुत्र वात्सल्य हिलोरें लेने लगा।

पद्मावती आर्यिका दन्तिवाहनसे पुत्र सम्बन्धकी बात कह कर अपने पुत्रके पास चल दी। कर्कण्डु महाराजके पास पहुँचकर वह बोली–"पुत्र, तुम पिताके साथ युद्ध कर रहे हो? यह ठीक नहीं है।"

पद्मावतीकी बात सुनकर कर्कण्डुका मन बड़ा विस्मित हुआ। वह अपनी माँ पद्मावतीसे कहने लगा–माता, तुम मुझे

ठीक ठीक बतलाओ कि यह हमारे पिता कैसे हैं ? पद्मावतीने अपने पिताके साथ विद्वेष रखने वाले पुत्रसे उसके पिताका परिचय इस प्रकार दिया--

"पुत्र, मैं तुम्हारे पिताके देखते देखते ही हाथीके द्वारा एक सरोवरमें ले जाई गई । उस हाथीसे छूटकर मैं सरोवरके तट पर आई। वहाँसे दन्तिपुरके भयंकर श्मशानमें गई और मेरे पुण्य प्रतापसे वहां तुम्हारा जन्म हुआ । अपने पदपर पुनः प्रतिष्ठित होनेकी इच्छासे बालदेव विद्याधरने तुम्हारा लालन पालन किया और तुम बड़े हुए । इसके पश्चात् मैंने मोक्ष देनेवाली जैन दीक्षा ले ली। जब दन्तिपुरका राजा बल-वाहन परलोक वास कर गया तो इस राज्यके राजहाथीने तुम्हें सहर्ष सिंहासनपर प्रतिष्ठित किया। पुत्र, अब तुम्हें अपने पिताका परिचय मिल गया । उठो और उनसे अपने अपराध-की क्षमा मांगते हुए प्रसन्न मनसे उनके सामने जाओ और उनके चरणोंमें गिरो ।"

कर्कण्डु महाराज अपनी माँके कथनानुसार तुरन्त ही हाथी-से उतर पड़े और बड़े उल्लासके साथ दन्तिवाहनके सामने जा पहुँचे । इधर जब पिताने अपने पुत्रको आते हुए देखा तो वह भी तुरन्त ही घोड़ेसे उतर पड़े और उसे गोदमें भरनेके लिए आगे बढ़े । दोनोंके हृदय स्नेहसे छलक रहे थे । दोनों ही आपसमें मिले और जनताके सामने ही गाढ़ आलिङ्गनमें बद्ध होगये ।

बड़े संतोष और गद्‌गदवाणीके साथ दोनोंने एक दूसरेका कुशलवृत्त पूछा और हर्षसे रोमाञ्चित होकर दोनों यथा-स्थान बैठ गये । अन्तमें दन्तिवाहनने बाजोंकी ध्वनियोंके साथ कर्कण्डु महाराजको अपने राज्यका पट्ट बांध दिया । इसके साथ ही उसने अपने सामन्त, मन्त्री, योद्धा और समस्त प्रजा

जन, हाथी घोड़े, खजाना, रथ, पदाति, सेना और यहाँ तक कि सम्पूर्ण पृथिवी अपने पुत्रको दे डाली।

अन्तमें दन्तिवाहन महाराज सबके सामने पुत्र कर्कण्डुसे कहने लगे—"तुम नीतिके साथ प्रजाओंका पालन करना, सज्जनोंके सेव्य बनना और निश्चिन्त होकर चिरकाल तक पृथिवीका पालन करना।"

इस प्रकार पुत्रको उपदेश देकर राजाने प्रत्येक मनुष्यसे बात की और वैराग्यसे प्रेरित होकर वह नन्दन वनको चले गये। नन्दन वनमें पहुँच कर वीर मुनिराजके दर्शन किये और उनकी बड़ी भक्तिके साथ बन्दना की। उनसे धर्मका स्वरूप पूछकर आत्म-हितका परिज्ञान किया। इसके पश्चात् दन्तिवाहनने अन्य बहुतसे राजाओंके साथ बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग किया और श्रीधर्मसेन मुनिराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

इधर कर्कण्डु महाराजने अपने समस्त विरोधी राजाओंको अपने अधीन कर लिया और इस प्रकार वे बड़े ही आनन्दसे चम्पा नगरीमें राज्य करने लगे। उस समय बङ्ग आदि देशोंके सुप्रसिद्ध और यशस्वी राजा भी कर्कण्डु महाराजसे भयभीत होकर इसके शासनको शिरसा स्वीकार करते थे। उस समयके राजाओंमें केवल द्रविड़ देशके चेर चोल और पाण्ड्य नामके राजा ही ऐसे थे, जिन्होंने कर्कण्डु नरेशकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। जब कर्कण्डु महाराजको इन लोगोंकी उद्दण्डताका पता लगा तो उसने अपने एक कृतज्ञ दूतको उन लोगोंके पास भेजा। वह दूत क्रमशः उन राजाओंके पास पहुँचा और कुशल प्रश्न पूछनेके बाद उन लोगोंसे बोला—"महाराजाओं, कर्कण्डु महाराजने मेरे द्वारा आप लोगोंके लिए सन्देश भिजवाया है कि आप तीनों नरेश शीघ्र ही कर्कण्डु महाराजकी सेवामें उपस्थित हों।"

ये तीनों ही नरेश सिंहके समान पराक्रमी थे। दूतकी यह बात सुनकर उत्तरमें उन्होंने कहा—"दूत, तुम जाकर अपने महाराजसे कह दो कि हम लोग संसारको नष्ट करनेमें प्रमुख कारण अर्हन्त भगवान्के पवित्र चरण कमलके सिवाय अन्य किसीकी वन्दना नहीं कर सकते।"

जब दूतने राजाओंकी यह अविनय पूर्ण बात सुनी तो उसे बड़ा रोष आया। वह चम्पामें आ पहुँचा और उसने बड़ी विनयके साथ कर्कण्डु महाराजसे निवेदन किया—"राजन्, वे तीनों ही नरेश अपनी सेना और समृद्धिके मदमें इतने उन्मत्त हैं कि आपके निकट आनेकी तो कौन कहे, वे अपने स्थानसे एक कदम भी हटना नहीं चाहते।"

यह सुनकर कर्कण्डु क्रोधसे लाल होगया और अपनी चतुरङ्ग सेना लेकर इन विरोधी राजाओंके देशकी ओर चल दिया। कर्कण्डु महाराजके साथ वायुके समान वेगवान् घोड़े थे, मदोन्मत हाथी थे, सोनेके रथ थे और अस्त्र—शस्त्रोंसे सुसज्जित पदाति थें। इन सबको साथ लेकर चम्पापुरका अधिपति इनके दर्पको चूर करनेके लिए दक्षिणा पथके तेर नगरमें जा पहुँचा और तेर नगरके आसपास मार्गकी थकावट दूर करनेके लिए अपना पड़ाव डाल दिया।

जब वहाँके भिल्लाधिपति शिवको मालूम पड़ा कि हमारे नगरके निकट कर्कण्डु महाराज अपनी सेनाके साथ पड़े हुए हैं तो वह अपनी विशाल सेनाके साथ उनसे भेट करनेके लिए आया। आते ही उसने राजाके द्वारपालसे कर्कण्डु महाराजके पास अपने आनेकी खबर भिजवाई और आज्ञा प्राप्त होते ही वह कर्कण्डुकी सेवामें हाजिर होगया।

ज्यों ही शिवने कर्कण्डु महाराजको सभाके बीच बैठा हुआ देखा, उसने दूरसे ही हाथ जोड़कर और पृथ्वीपर मस्तक

रखते हुए उन्हें प्रणाम किया और आकर जमीनपर बैठ गया।

कर्कण्डु महाराजने शिवके साथ कुशल प्रश्न पूर्वक वार्तालाप किया और उसे ताम्बूल भी दिया। इसके पश्चात् कर्कण्डु महाराज शिवसे पूछने लगे--भिल्लाधिपति! तुम तो इस जंगलमें रात-दिन घूमते रहते हो। इसलिए यह तो बतलाओ कि इस जंगलमें तुमने कभी कोई आश्चर्य जनक दृश्य तो नहीं देखा?

कर्कण्डु महाराजकी बात सुनकर भिल्लाधिपति कहने लगा–राजन्! इस जंगलमें एक आश्चर्य पूर्ण दृश्य तो अवश्य देखा है। इस नगरसे दक्षिण दिशाकी ओर पर्वतके ऊपर एक सहस्र स्तम्भ वाली गुफा है। इसके ऊपर एक वामी है, जिसे कोई भी देव, असुर या नरेश लांघ नहीं सकता। समस्त जनताके मनको वह प्यारी है और एक देवता उसकी रक्षा किया करता है। राजन्, हिमालयके समान एक सफेद हाथी निकटवर्ती सरोवरसे जल लाकर अपनी सूंड़के द्वारा रोज ही इस वामीका भाव-पूर्वक अभिषेक किया करता है, कमलोंसे पूजा करता है और पृथ्वीपर अपने मस्तकको टेककर तीन प्रदक्षिणा देता है।

इस प्रकार राजन्! मैंने वृक्ष और लताओंसे भरे हुए और मनसे भी दुर्गम इस वनके मध्यमें यही एक आश्चर्य देखा है। सो यदि आपको मेरे कथनपर विश्वास न हो अथवा आपके मनमें भी इस आश्चर्यको देखनेका कौतुक हो तो आप मेरे साथ चलिए। मैं अवश्य ही आपको इस आश्चर्य का प्रत्यक्ष करा दूंगा।

शिवकी यह बात सुनकर कर्कण्डुका मन बड़ा विस्मित हुआ। उनके शरीरमें भक्तिसे रोमाञ्च हो आये और वह बड़ी

प्रसन्नताके साथ कहने लगे–वत्स, तुम मेरे आगे आगे चलो। मैं इस आश्चर्यको बड़े ही आदरके साथ देखना चाहता हूँ; क्योंकि प्रत्येक प्राणीको सुन्दर वस्तुके देखनेमें आदर रहता है।

इस प्रकार धर्मानुरागी कर्कण्डु भिल्लाधिपति शिवके साथ एक हजार स्तम्भवाली गुफ़ामें जा पहुंचा। उसने इसमें विराजमान जिन प्रतिमाओंके दर्शन किए और भक्तिके साथ उनकी पूजा तथा बन्दना करके वह कौतुक पूर्वक पर्वतके शिखरपर चढ़ गया। पर्वतके शिखरसे ही उसने कमलोंसे वामीकी पूजा करने वाले सफेद हाथीको देखा। फिर हाथीके कमलकी तरह मनोहर वामीको देखा और उपवास पूर्वक उसने पुष्प, धूप और अक्षत चढाकर उस वामीकी पूजा की। पश्चात् उसने माङ्गलिक बाजोंकी ध्वनिके साथ भगवान पार्श्वनाथकी प्रतिमाको वहांसे निकाला और नीचेकी गुफाके बीचमें स्थापित करके उसकी पूजा की।

इस प्रकार राजा कर्कण्डु सिंहासनपर विराजमान भगवान पार्श्वनाथकी मनोहर प्रतिमाकी पुष्पमालाओंसे पूजाकरके उनका दर्शन कर ही रहे थे कि उन्हें विचित्र मणियोंके बने हुए जिनसिंहासनमें एक छोटीसी गांठ दिखलाई दी। राजाने सोचा कि भगवान्‌के सिंहासनमें तो जरा भी गांठ न होनी चाहिए। यह सोच कर उसने एक प्रस्तर-कलाके विशेषज्ञ विद्वान्‌को बुलवाया। शिष्टाचारके बाद उससे कहा–"ओ उपाध्याय! तुम प्रस्तरकला विज्ञानमें निष्णात हो और प्रतिमाके लक्षणोंसे परिचित हो। इसलिए इस सिंहासनमें जो यह गांठ दिख रही है, उसे निकाल दो।"

राजाकी बात सुन कर उपाध्याय कहने लगा–राजन्! सिंहासनकी इस गांठमें एक जलवाहिनी नाड़ी है। अगर यह पाषाणकी गांठ निकाल दी जावेगी, तो राजन्, यह गुफा जलसे भरकर नष्ट हो जावेगी।"

परन्तु राजाने उस विशेषज्ञकी एक न सुनी और उससे आग्रह किया कि तुम इस गांठको जरूर ही निकाल दो। भगवान्‌के सिंहासनमें जरा भी गांठ न होनी चाहिए।

कर्कण्डुके आग्रहसे उपाध्याय अपनी इच्छाके विरुद्ध भी इस गांठको निकालनेके लिए विवश हो गया। परन्तु ज्योंही उसने टांकी मारी उस जलवाहिनी गांठसे पानीकी धारा फूट पड़ी और उससे सारी गुफा जलमग्न हो गई।

जब राजाने इस सम्पूर्ण गुफ़ाको इस प्रकारसे तत्काल विनष्ट होते हुए देखा तो वह बहुत ही दुखी हुआ। उसने वहाँसे आकर स्नान किया, पवित्र होकर सफेद स्वच्छ वस्त्र पहिने और तीन दिन तक उपवास पूर्वक बराबर कुशासन-पर बैठा रहा। उस समय इसका मन बहुत ही व्याकुल था।

कर्कण्डु महाराज इस प्रकारसे चिन्तामग्न दशामें बैठे हुये थे कि इसी समय कार्यवश नागकुमार वहां आ निकला। उसने कर्कण्डु महाराजसे गुफाकी पूर्व कथा इस प्रकार कही—'विजयार्ध पर्वत पर नील और महानील नामके दो विद्याधर भाई रहते थे। दोनों भाई एक दूसरेसे बड़ा स्नेह रखते थे, दोनों सुन्दर और जवान थे। इनके नगरके कुछ पराक्रमी किन्तु विरोधी विद्याधरोंने इनकी विद्याएँ छीन लीं और इन्हें इनके नगरसे निकाल दिया। चलते-चलते दोनों भाई तेर नगरमें आये। यहाँ आकर इन लोगोंने समस्त भूमिगोचरी जनताको अपने वश में किया और वे इसी तेर नगरमें बड़े आनन्दके साथ रहने लगे।

एक बार दोनों भाइयोंने एक मुनिराजके श्रीमुखसे भव्य जीवोंके लिए पुण्यप्रद और अतिशय महत्त्वपूर्ण भगवान् पार्श्वनाथका जीवन चरित सुना और उन्हीं दोनों भाइयोंने इस पर्वतपर भगवान् पार्श्वनाथकी यह एक हजार स्तम्भ वाली गुफा बनवाई। इस गुफामें भगवान् पार्श्वनाथकी सब

प्रतिमाएँ रत्न और सुवर्णकी बनी हुई हैं। दोनों भाई अपने बन्धु बान्धवोंके साथ उन प्रतिमाओंकी त्रिकाल पूजा किया करते थे।

एक समयकी बात है। नील और महानीलका एक मित्र विद्याधर जिसका नाम अमित वेग था, विजयार्ध नगरसे चल कर लङ्कामें आया। उस विद्याधरने वहांकी समस्त रत्नमयी प्रतिमाओंकी बन्दना की और उनमेंसे एक रत्नमयी प्रतिमाको लेकर वह चल दिया।

जैसे ही वह इस प्रतिमाको अपने साथ लेकर आकाशमार्ग से जा रहा था, उसे गुफा दिखलाई दी। इसे देखते ही उसका हृदय भक्तिसे द्रवित हो उठा और वह तुरन्त ही दर्शन करनेके लिये आकाशसे भूतल पर उतर आया। उसने भगवान् पार्श्वनाथकी उस प्रतिमाको जिसे वह अपने साथमें लिए था, गुफाके उपरकी वामीमें विराजमान कर दिया और आप अकेला ही भक्तिके साथ नीचेकी गुफाके दर्शन करने चल दिया।

इस अमितवेग विद्याधरने बड़ी भक्तिके साथ इन प्रतिमाओंके दर्शन और वन्दना की और फिर वह शीघ्रतासे उक्त वामीके पास आ पहुंचा। परन्तु जैसे ही उसने भक्ति और विनयके साथ प्रतिमाको उठाया, वह टससे मस नहीं हुई और उसी स्थान पर अचल होकर रह गई। विद्याधरके बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वह पूर्ववत् अचल बनी रही तो अमितवेग उसे वहीं छोड़कर अपने नगरकी ओर चल दिया।"

नागकुमार कर्कण्डु महाराजसे बोला—"भद्र, इस प्रकार इस प्रतिमाके ऊपर कालके प्रवाहने वामी खड़ी कर दी और मैं तबसे लेकर आजतक बड़े प्रयत्नसे इस वामीकी रक्षा करता आ रहा हूँ। मणिखचित हजार स्तम्भ वाली गुफा उन्हीं नील और महानील नामक भाइयोंने बनवाई थी। वही आज

जलकी वेगवान् धारासे नष्ट हो गई है। मुझमें इस धाराको रोकनेकी शक्ति न थी।" इतना कह कर नागकुमार कुछ क्षण तक मौन रहा और मौन भंग करके पुनः बोला—"राजन् ! इस गुफाके अन्दर जो सुवर्ण और रत्नोंसे बनाई गई जिन प्रतिमाएँ हैं इस विकराल दुखमा कालमें उनकी रक्षा नहीं की जा सकती इसलिए इस सारभूत गुफाको जलमग्न और नष्ट होते हुए देखकर मैं उदासीन ही बना रहा। राजन् ! अब इसको जलमग्न ही बना रहने दीजिए। हाँ, इसके ऊपर आप एक अन्य गुफा बनवा दें"।

नागकुमार यह कहकर अन्तर्हित होगया। इसके पश्चात् रोजकी तरह वह हाथी वामीके पास पहुँचा, परन्तु जब उसने उसे नष्ट हुई पाया तो वह तुरन्त ही पर्वतपर चढ़ गया, और सब प्रकारका आहार छोड़कर उसने समाधि ले ली। अन्तमें वह मरकर सहस्रार स्वर्गमें महर्द्धिक देव हो गया।

इधर करकण्डु महाराजने एक शुभ मुहूर्तमें समस्त शिल्पियोंको बुलवाया और इस नीचेकी जलमग्न गुफाको शिलाओंसे ढकवा दिया। इसके पश्चात् उसने वहां अपने, अपनी महादेवीके और क्षुल्लके नामसें तीन गुफ़ा बनवाईं। तथा बड़ी भक्ति और गाजे-बाजेके साथ उनकी प्रतिष्ठा भी कराई। इस प्रकार अपना पुण्यकार्य करके महाराज करकण्डु द्रविड़ देशकी ओर रवाना होगये।

द्रविड़ देशके उन तीनों राजाओंने जब चतुरङ्ग सेनाके साथ आये हुये करकण्डु महाराजको सुना तो वे भी लड़नेके लिये तैयार होकर तुरन्त अपने अपने नगरसे निकल पड़े। दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ। यह युद्ध शस्त्रोंके संघर्षसे निकली हुई अग्निकी ज्वालाकी प्रभासे चमक रहा था, एक दूसरेको मारनेमें संलग्न योद्धाओंकी गर्जनाओंसे भयंकर था, हाथियोंकी चिग्घाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट और रथोंके चीत्कार-

से आकाश और भूलोक गुञ्जायमान हो रहा था, धनुर्धारियोंके द्वारा छोड़ी गई बाणावलीसे पदाति सैनिक मारे जा रहे थे, वैतालिकोंके कलकल आलापसे दिङ्‌मण्डल बहरा हुआ जारहा था, छत्र, चमर और ध्वजाओंके कारण सूर्यकी प्रभा छिप गई थी। और यहाँ तक कि अनेक देवी-देवता आकाशमें स्थित होकर इसका निरीक्षण कर रहे थे। कर्कण्डु महाराजने चेटक आदि तीनों राजाओंको जीवित अवस्थामें ही पकड़ लिया और ज्योंही वह उन्हें लात मारनेके लिये उद्यत हुआ, उसे उन लोगोंके मुकुटोंमें जिन प्रतिमायें दिखलाई दीं। कर्कण्डुको एक धक्कासा लगा। वह रुक गया और सोचने लगा:-

धिक्कार है, मेरे इस हीन और साधुजनोंके द्वारा निन्दनीय कृत्यको, जो मैं भगवानकी प्रतिमाको लात मारनेके लिये उद्यत हो उठा। उस समय कर्कण्डुको बड़ा वैराग्य हुआ। वह अपनी आलोचना करने लगा।

इधर चेटक आदि तीनों राजा भी बड़े विरक्त हुये और इन्होंने तुरन्त ही अपने अपने राज-कार्यको संभालने योग्य पुत्रोंको बुलवाया। तीनों राजाओंने अपने अपने पुत्रको अपने अपने राज्यका पट्ट बांधा और फिर तीनों ही भव्य राजाओंने वीरसेन आचार्यके निकट जैन दीक्षा ले ली।

कर्कण्डु महाराजने सम्पूर्ण द्रविड़ देश अपने अधीन किया और फिर तुरन्त ही अपने सैन्य-सागरके साथ वह चम्पापुर आगये। उन्होने अपने प्रजापालक और शूरवीर बुद्धिमान् वसुपाल नामक पुत्रको सम्पूर्ण राज्य-भार सोंपा और भगवान् महावीरके तीर्थंकालमें आचार्य वीरसेन महाराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

अब कर्कण्डु नरेश कर्कण्डु योगीश बन गये। वे भव्योंके चित्त-

को आनन्दित करने लगे और स्वर्ग-मोक्षके फलको देनेवाली कठोर जैन साधनामें संलग्न होगये।

इस प्रकार महान् भक्त नागदत्त, गोपालक और एक कमल द्वारा श्री जिनेन्द्रकी पूजाके फलसे दिव्य विभव सम्पन्न कर्कण्डु महाराजका कथानक सम्पूर्ण हुआ।

---

५७. अशोक और रोहिणीकी कथा

मगधदेशमें राजगृह नामका विशाल नगर था। इसके राजाका नाम श्रेणिक था। श्रेणिक महान् धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि था। इसकी महादेवीका नाम चेलना था। चेलना अपने शील सम्यक्त्वम बहुत ही सुप्रसिद्ध थी। इसके पुत्रका नाम वारिषेण था, जिसे सभी विद्वान् एक उत्तम श्रावक मानते थे।

एक समयकी बात है। विपुलाचल पर्वतपर भगवान् महावीरका समवसरण आया हुआ था और उसमें भगवान् महावीर अपने बारह गणधरोंके साथ विराजमान थे। यह समाचार सुनकर श्रेणिक राजा भगवान्के समवसरणमें पहुंचा और देव, असुर तथा मनुष्योंके द्वारा स्तुत और घातिया कर्मोंका नाश करनेवाले भगवान् महावीरको नमस्कार करके निम्न प्रश्न पूछने लगा। वह बोला—भगवन्, आप यह बतलाइये कि आपके ही समान कितने जिन होते हैं, कितने चक्रवर्ती होते हैं, कितने बलदेव होते हैं, कितने वासुदेव होते हैं और कितने उनसे द्वेष रखनवाले प्रतिवासुदेव होते हैं ?

कहा भी है:—

"त्वत्सदृशाः कति नाथ जिनेन्द्राश्चक्रधराः कति केशवरामाः।
तत्प्रतिपन्थिन एव कियन्तः सर्वमिदं मम नाथ विघत्स्व ॥

अर्थात् भगवान्, यह बतलाइये कि आपके समान कितने जिनेन्द्र होते हैं, कितने चक्रवर्ती होते हैं, कितने बलदेव होते हैं, कितने नारायण होते हैं और कितने प्रति नारायण होते हैं?

श्रेणिक निवेदन करते गये–"हे जिनाधीश, पवित्र और त्रिभुवनके गुरू भगवान्, मैं आपके प्रसादसे इन प्रश्नोंका समाधान चाहता हूँ।" श्रेणिक इतना कहकर मौन होगये और उत्सुक हृदयके साथ भगवान्‌की वाणी सुननेकी प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान् महावीर श्रेणिकके प्रश्नोंका निम्न प्रकार उत्तर देने लगे। भगवानने कहा–"राजन्! सम्पूर्ण भूखण्डके स्वामी चौबीस जिनेन्द्र होते हैं। बारह चक्रवर्ती होते हैं। नौ बलभद्र होते हैं। नौ वासुदेव होते हैं और नौ ही वासुदेवोंसे द्वेष रखनेवाले तथा तीव्र क्रूरकर्मी प्रति वासुदेव होते हैं।" श्रेणिक राजाके प्रश्नोंका उत्तर देते हुये भगवान्‌ने श्री ऋषभदेवके चरितसे लेकर शेष महापुरुषोंके चरित सुनाने शुरू किये और इस प्रकार सुनाते सुनाते वे अङ्गदेशके वर्णन तक आ पहुंचे। एवं आगेका कथानक इस प्रकार सुनाने लगे–

"इस अङ्ग देशमें चम्पा नामकी सुन्दर और जनतासे भरी हुई नगरी थी। इस नगरीके राजाका नाम वसुपूज्य था और इसकी सहधर्मिणीका नाम जया था। इन दोनोंके अत्यन्त रूपवान् बत्तीस शुभ लक्षणोंसे संयुक्त, और भव्यजीवोंको आनन्दित करनेवाले भगवान् वासुपूज्यका जन्म हुआ।" इस प्रकार भगवान् महावीर भगवान् वासुपूज्यके जीवन चरितको जब सम्पूर्ण कर चुके और श्रेणिक भी गुणरत्नोंसे भरे हुये इस चरितको सुन चुके तो उन्होंने इस बीचमें ही भगवान्‌से श्री वासुपूज्यके प्रथम गणधर अमृताश्रवका चरित पूछा–और उत्सुकताके साथ भगवान्‌के उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान् कहने लगे—"राजन्, जम्बूद्वीपके इसी भरत क्षेत्रमें कुरुजाङ्गल नामका देश है, जो धन-धान्यसे खूब ही समृद्ध है। इस देशमें हस्तिनागपुर नामका सुन्दर नगर है, वहाँके प्रजाजन बहुत ही सम्पन्न हैं। इस नगरमें वीतशोक नामका राजा राज्य करता था। वह अपने सद्गुणोंके कारण बड़ा ही जनप्रिय था। इसकी पत्नीका नाम विद्युत्प्रभा था और राजा उससे बहुत ही प्रेम करता था। इन दोनोके एक अशोक नामका पुत्र था, जो सदा ही हंसमुख रहता था।

इसी समय अङ्गनामके समृद्धिशाली देशमें चम्पा नामकी नगरी थी। इस नगरीके राजाका नाम मघवा था और रानीका नाम श्रीमती। श्रीमती महारानीके आठ पुत्र हुये। आठों ही पुत्र अपने अपने सद्गुणोके कारण संसारमें खूब ही यशस्वी बने। उन पुत्रोंके नाम इस प्रकार थे—

पहलेका नाम श्रीपाल था, जिससे लक्ष्मी बहुत ही प्रेम करती थी। दूसरेका नाम गुणपाल था, जो बड़ा ही गुणप्रिय था। तीसरेका नाम वसुपाल था, जो बहुत ही धन-सम्पन्न था। चौथे पुत्रका नाम प्रजापाल था, जो सदैव प्रजाके हित-साधनमें संलग्न रहता था। पाँचवेका नाम व्रतपाल था, जो बड़ा ही व्रती था। छठवेंका नाम श्रीधर था, जो बहुत ही श्रीसम्पन्न था। सातवेंका नाम गुणधर था, जिसने अपने सद्गुणोंके कारण समस्त जनताको मुग्ध कर लिया था। और आठवेंका नाम यशोधर था, जो बड़ा ही यशस्वी था और जिसने अपने पवित्र यशसे आकाश-को भी सफेद कर रक्खा था। इस प्रकार ये सभी भाई सार्थक नामवाले थे।

इस राजाके एक रोहिणी नामकी कन्या भी थी। रोहिणी रूपवती थी, युवती थी; पुष्ट, उन्नत और सघन स्तनोंसे रम-णीय थी, और समस्त कलाओंमे कुशल थी।

एक समयकी बात है। कार्तिकका अष्टाह्निक पर्व आया

जानकर रोहिणीने उपवास किया और वह बड़ी भक्तिके साथ चन्दन, अक्षत, चरु, दीप और धूप लेकर चम्पा नगरीके पूर्व दिशावाले प्रदेशमें स्थित महापूजाङ्क नामक गगनचुम्बी जिनालयमें पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने जल, चन्दन, अक्षत आदिसे जिन भगवान्की पूजा की, जिनधर्मी साधुको नमस्कार किया और जिनराजकी शेषा लेकर वह जिनमन्दिरसे निकली और उसने यह शेषा सभाभवनमें बैठे हुये अपने माता-पिता तथा समस्त अन्तःपुरवर्ती परिवारको भी दी।

उस समय रोहिणीके पिताने इसे देखा और स्नेहवश गोदमें बिठा लिया। राजाने देखा कि उसकी कन्या युवती और प्रौढ़ा हो गई है तो वह खिन्न होकर सोचने लगा कि इस अतिशय रूपवती और पूर्ण नवयौवन सम्पन्न कन्याको किस समान रूप और गुण वाले वरको दूँ? इस प्रकार बहुत कुछ सोचनें विचारने पर भी जब वह किसी निर्णयपर नहीं पहुँचा तो रोहिणीको घर भेजकर राजा अपनी मंत्रशालामें जा पहुँचा।

इस राजाके तीन मन्त्री थे। पहलेका नाम सुमति था, जो वस्तुतः बड़ा ही बुद्धिमान् था। दूसरेका नाम श्रुतसागर था, जो अनेक शास्त्रोंका पारगामी पंडित था। तीसरेका नाम विमलमति था, जो सच्चे अर्थमें पवित्र और निर्मल बुद्धिका था।

राजाने इन मन्त्रकला विशारद मन्त्रियोंको बुलवाया और जब वे अपने अपने आसनपर बैठ गये तो राजा उनसे पूछने लगा—"मन्त्रियों, आप लोग मन्त्र कलामें बड़े ही निष्णात हैं; इसलिये आप लोग निःशङ्क होकर बतलाइये कि हम अपनी सुकुमाराङ्गी रोहिणी कन्या किस सुपात्र कुमारके लिये देवें?"

राजाका प्रश्न सुनकर मन्त्री अपने प्रधान सहकर्मी सुमति मन्त्रीसे प्रेरणा करने लगे कि तुम ही महाराजके प्रश्नका

उत्तर दो। इस प्रकार जब सबने सुमति मन्त्रीकें ऊपर जोर डाला तो वह कहने लगा—

"राज़न् ! यदि हम लोग ही किसी एक कुमारको चुन लेते हैं और उसे कन्या दिये देते हैं, तो पता नहीं, कन्याका इसके साथ प्रगाढ़ प्रेम-सम्बन्ध हो या न हो। अथवा दैवयोगसे यह भी संभव है कि वह कुमार संभावनासे अधिक विलासी निकले और कन्याके साथ समुचित प्रेम न करे। ऐसी स्थिति में माता-पिता कुछ नहीं कर पाते हैं और उनकी मनोदशा बड़ी ही शोचनीय हो जाती है। इसलिये राजन्, हमारी संमति-में तो यही आता है कि हम कन्याके लिये स्वयम्वरका आयो-जन करें और उस समय आये हुये अनेक राजाओंमें से कन्या जिसे चाहे अपना वर चुन ले। स्वयम्वरकी पद्धति आधुनिक नहीं है और न इसमें कोई लज्जाकी ही बात है। पहलेके राजा-ओंने इस पद्धतिको बड़े आदरके साथ प्रश्रय दिया है।"

विद्वान सुमति मन्त्रीकी इस भाव-पूर्ण बातको सुनकर राजाने पूर्व महापुरुषोंके द्वारा अपनाई गई स्वयम्वर पद्धतिके आयोजनका ही निश्चय किया।

इसके बाद राजाने विभिन्न जातिके मणियोंसे खचित चांदीके आसन तैयार करवाय और अपने शीघ्रगामी पुरुषों-द्वारा समस्त भूमण्डलमें स्वयम्वरकी घोषणा करवा दी। दूतोंके द्वारा स्वयम्वरका समाचार सुनकर सभी वैभवशाली राजा समृद्ध चम्पानगरीमें पहुंचे और मण्डपमें यथास्थान बैठ गये। स्वयम्वरके समय तरह तरहके बाजोंकी मधुर ध्वनिसे पृथ्वी और आकाश-मण्डल व्याप्त हो गया। स्वयम्वर-मंडपमें उप-स्थित राजा लोग अपने बनाव शृंगारमें लग गये।

कोई राजा प्रसन्न होकर अपनी हारलताको हाथसे टटो-लने लगा। कोई अपने मुकुटको स्थिर और उन्नत करने लगा। कोई आँखोंको कन्याके आगमनकी प्रतीक्षामें व्यस्त करके शिर

परके स्निग्ध केश-समूहको हाथसे निश्चल करने लगा। किसी-ने अपने हाथमें इस प्रकारका लीला कमल ले लिया, जिसकी गन्धसे आसक्त होकर भ्रमर उसपर मंडरा रहे थे, और जिसका प्रत्येक दल पूर्णरीतिसे विकसित था। कोई वीणा लेकर सात स्वर उन्नीस मूर्छनाओंसे युक्त सुन्दर गीत गाने लगा। कोई अपने शरीरको मोड़ मोड़कर अपने नितम्ब भाग पर चमकती हुई तलवार बाँधने लगा। किसी राजाने मनमें खूब ही प्रसन्न होकर ताम्बूल हाथमें लिया और उसे खाते समयकी अव्यक्त, किन्तु जोरकी ध्वनिसे आकाश और भूतल-को भर दिया। इस स्वयम्वर मंडपमें बैठे हुये सभी राजाओंके मन कन्याके आगमनकी प्रतीक्षामें बड़े ही आकुल हो रहे थे और इसी कारण वे विविध शारीरिक चेष्टाएँ कर रहे थे।

इसी समय रोहिणीने एक धात्रीके साथ स्वयम्वर-मंडपमें प्रवेश किया। उस समय वह महामूल्य वस्त्र पहिने हुई थी, दिव्य आभूषणोंसे सुशोभित थी, उसका सम्पूर्ण शरीर रूपसे दमक रहा था, मदोन्मत्त हाथीकी तरह उसकी मन्द-मन्द गति थी, और अपने हाथमें पाँच वर्णके फूलोंसे तैयार की गई पुष्प-माला लिये हुए थी।

ज्योंही रोहिणीने इस प्रकारसे स्वयम्वर-मण्डपमें प्रवेश किया, समस्त राजाओंके मन उसे देखकर कामसे अत्यन्त ही आकुल हो गये और वे अपने अपने मनमें सोचने लगे कि क्या यह यक्षिणी है, अथवा किन्नरी है या विद्याधरकी कन्या है, अथवा उर्वशी है, या इन्द्राणी है, अथवा रति है, अथवा साक्षात् तिलोत्तमा ही है? इस प्रकार रोहिणीके मुख-कमलको देखकर सभी राजा अपने मनमें बड़े ही विस्मित हुए और उल्लिखित प्रकारसे अनेकानेक कल्पनायें करने लगे।

इसके बाद सुमङ्गला नामक मनस्विनी धात्रीने, जो हाथमें सोनेका बेत लिये हुये थी और जिसका स्वर कोकिलकी तरह

मधुर था, रोहिणीसे महाकुन्दपुर नरेशकी ओर संकेत करते हुये कहा—"कुमारिके, देखो यह कुन्दपुष्पकी तरह स्वच्छ दाँतों-वाले, अत्यन्त रूपवान् कुन्दनामक महाकुन्दपुरके नरेश हैं। तुम चाहो तो इन्हें वरण करो। और हे मनस्विनि, यह मेघ-पुरके स्वामी हेम हैं, जिनका सोने जैसा शरीर है और जिनके भण्डारमें अटूट धन और सोना भरा पड़ा है, तुम इन्हें स्वीकार कर सकती हो। और हे बाले, ये रत्नपुरके नरेश रत्नसंचय हैं, जिनका सम्पूर्ण शरीर रत्नोंसे चमक रहा है, तुम इन्हें अङ्गीकार कर सकती हो। तथा यह तिलक नामके तिलकपुरके राजा हैं, जो समस्त ही राजाओंमें तिलकके समान श्रेष्ट हैं, तुम इनसे स्नेह सम्बन्ध स्थापित कर सकती हो। हे मानिनि, यह विद्युत्पुरके स्वामी विद्युत्प्रभ नरेश हैं, जो बड़े भारी विलासी हैं, तुम इनके साथ अपना जीवन बिता सकती हो।"

धात्रीने इस प्रकारसे अनेक राजाओंके रूप, सौन्दर्य और समृद्धि आदिका परिचय दिया; परन्तु रोहिणीने इनमेंसे एक-को भी पसन्द नहीं किया। धात्री बड़ी ही बुद्धिमती थी, रोहिणी-की प्रत्येक चेष्टा संकेत और भाव-भङ्गिमासे अभिज्ञ थी। जब उसने देखा कि रोहिणीने इन राजाओंमें से किसीको भी पसन्द करनेका कुछ भी मनोभाव व्यक्त नहीं किया है तो वह आगे बढ़ी और बड़ी ही प्रसन्न वाणीमें इस प्रकार कहने लगी—

"स्वामिनि, देखो ये महाराज वीतशोकके सुपुत्र अशोक हैं। ये समस्त गुणोंके आकर हैं। अपने सहज रूपसे यह कामदेवको भी पराजित कर रहे हैं और प्रसन्नता सदा ही इनके मुख-मण्डल पर खेलती रहती है। और यह इतने रूपवान् हैं कि पहिचाननेमें नहीं आते कि यह देव हैं या विद्याधर। हे पुत्रि, तुम इनके साथ चिरकाल तक भोग विलास कर सकती हो।"

धात्रीकी इस बारकी बात रोहिणीके मनको लगी और

उसने कामदेवकी तरह अतिशय रूपवान् अशोकको देखा। इस अत्यन्त सुन्दर युवकको देखकर कन्या एक क्षणके लिये मूर्च्छित सी हो गई और बादमें चैतन्य होकर मनमें अत्यन्त आश्चर्य करती हुई इस प्रकार सोचने लगी—क्या यह मूर्तिमान् कामदेव है या इन्द्र है ? या विद्याधर है या कोई भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ कुमार ? इस प्रकार विचार करते करते जब रोहिणीकी मनो-भाव-मालाने उसे खूब बांध लिया और उसका चित्त इस कुमारपर बहुत ही आसक्त हो गया तो रोहिणीने इसके गलेमें वर-माला डाल दी।

इस प्रकार जब अन्य राजाओंने देखा कि वरमाला अशोक-कुमारके गलेमें पड़ चुकी है तो सबके सब नरेश उदास होकर अपने अपने नगरकी ओर चल दिये।

अशोककुमारने क्षीणकर्मा, केवल ज्ञानरूपी नेत्रसे सुशोभित, और समस्त पदार्थोंका साक्षात्कार करनेवाले पवित्र जिन भगवान्की महामह नामकी पूजा की और मघवा नरेशकी प्रार्थनाके अनुसार सुन्दर और माङ्गलिक मुहूर्त्तंम रोहिणीके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लिया। इस प्रकार अशोककुमार रोहिणीके साथ चन्द्रकी तरह विविध भांतिसे मनमाना भोग-विलास करता हुआ प्रसन्नतापूर्वक वहीं रहकर काल-यापन करने लगा। अशोकके पिताने अनेक पत्र इसे घर आनेके लिए लिखे; परन्तु रोहिणीके प्रेमके कारण वह पिताके पास नहीं गया।

अन्तमें अशोकके पिताने अपना चिन्ह देकर एक वैतालिक-को अशोकके पास भेजा। वैतालिकने चम्पापुरीमें पहुँचकर महाराज वीतशोकका लेख उनके पुत्रको दे दिया।

अशोकने अपने हाथसे उस लेखको खोला और पढ़ा तो माता-पिताके दर्शनोंकी उत्कण्ठा उसके मनमें सजग हो उठी।

उसने अपने ससुरसे पूछा और उनकी आज्ञानुसार रोहिणीको लेकर अपनी सेनाके साथ पिताके निकट चल दिया।

अशोककुमार चलते-चलते हस्तिनागपुर आ पहुँचा। उसने सभाभवनमें बैठे हुए अपने माता-पिताको प्रणाम किया और इसके समागमसे उनका सम्पूर्ण शोक दूर हो गया।

एक दिनकी बात है। राजा विगतशोकने आकाशको प्रकाशित करनेवाली और अपनी ज्वालासे कमलोंको भी कान्तिमान् बनानेवाली बिजलीको देखा। इस उल्कापातको देखकर राजाके मनमें वैराग्य-भाव जागृत हो उठा। उसने अपने समस्त सभ्योंसे, जो सभाभवनमें ही मस्तकपर हाथ रक्खे हुए उपस्थित थे, कहा—"सभासदों, आप लोग इस बातका विश्वास कीजिए कि जितने धन-धान्य आदिक विभव हैं वे सब दूर्वादलपर पड़े हुए जल बिन्दुओंकी तरह चल हैं। पुरुषोंका गया हुआ यौवन फिर कभी नहीं लौटता। मीठे-मीठे पदार्थोंसे पालित,-पोषित किये गये इस शरीरका भी यही हाल है। भवन आदिक वैभव तो सूखे हुए पत्तोंके समान कभी भी जीर्ण-शीर्ण हो जानेवाला है। रमणीजनोंके साथ जो प्रीति है, वह भी सन्ध्याकी लालिमाकी तरह क्षणभंगुर है। बन्धु-प्रेम भी स्वप्नमें प्राप्त हुए राज्यके समान है। इस प्रकार संसारमें एक भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे स्थिर और नित्य कहा जा सके।"

विगतशोकने अपने समस्त सभ्योंसे इस प्रकार कहकर उनसे तथा अपने बान्धवजनोंसे पूछकर अशोककुमारको राज्य दे दिया और आप राज-भवनसे निकल पड़ा।

राज-भवनसे चलकर वीतशोक राजा अशोक बनमें विराजमान गुणधर मुनिराजके पास पहुँचा। वहाँ उसने बड़ी ही भक्तिके साथ मुनिराजको प्रणाम किया और अनेक श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ मुनिराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

वीतशोक मुनिराजने अत्यन्त घोर तपस्या की और समस्त कर्मोंका क्षय करके वह शीघ्र ही मोक्षपुरीमें पहुँच गये।

इधर अशोककुमारको पिताके दीक्षित हो जानेसे बड़ा शोक था। सो धीरे-धीरे उसका शोक दूर हुआ और वह निष्कंटक होकर अपने विशाल साम्राज्यका संचालन करने लगा। इसके साम्राज्यमें उस समय एक भी ऐसा राजा न था, जो इसकी अधीनतासे बाहर था।

रोहिणी भी अशोकके साथ मनोरम भोगोंको भोगने लगी और यथा समय उसके आठ निर्दोष पुत्र हुए। तथा कमल दलके समान सुन्दर नेत्रवाली चार कन्याएँ भी हुईं। पुत्रोंके नाम इस प्रकार थे:—विगतशोक, गतशोक, जितशोक, विनष्ट-शोक, धनपाल, वसुपाल, गुणपाल और गुणाकर। पुत्रियोंके नाम इस प्रकार थे:—पहलीका नाम वसुंधरा था, दूसरीका नाम सुरकान्ता था, तीसरीका नाम लक्ष्मीमती था और और चौथीका सुप्रभा। रोहिणीके इन समस्त पुत्र और पुत्रियोंके पश्चात् एक लोकपाल नामका बहुत ही सुन्दर पुत्र हुआ।

एक दिनकी बात है। राजा अशोक, रोहिणी और लोक-पालको गोदमें लिए हुये बसन्ततिलका नाम की धात्री, ये सब राजभवनके शिखरपर बैठकर मीठी-मीठी बातें करते हुए गोष्ठीके सुखका आनन्द लें रहे थे। इसी समय रोहिणीने देखा कि कुछ स्त्रियाँ गलीमें अपने बालोंको बिखेरे हुए महान् कोलाहल करती हुईं और एक घेरा बनाये हुए महान् शोका-कुल हो रही हैं। उसने देखा कि वे एक बालकको नचा रही हैं और छाती, सिर, स्तन तथा भुजाओंको कूटती-पीटती हुईं बार-बार रो रही हैं और चिल्ला रही हैं। इस प्रकार भवनके शिखर पर बैठी हुई रोहिणीने जब इन स्त्रियोंकी यह दशा देखी तो वह बसन्ततिलका धात्रीसे कौतूहलवश पूछने लगी—अम्ब, नृत्यकलाविशारद, सिग्नटक, भानी, छत्र,

रास और दुम्बिली इन पांच प्रकारके नाटकोंका ही अभिनय करते हैं। भरत महाराज प्रणीत इन पाँच प्रकारके नाटकोंको छोड़कर ये स्त्रियां सादिकुट्टन नामके इस कौनसे नाटकका अभिनय कर रही हैं? इस नाटकमें न तो सात स्वरोंमेंसे किसी एक स्वरका ही पता है और न भाषा तथा मूर्च्छनाओंका ही कोई सम्मेलन है। तुम इस नाटकका नाम तो मुझे बताओ?

रोहिणीके इस भोलेपनसे भरे हुए प्रश्नको सुनकर बसन्ततिलका बोली—पुत्रि! यह नाटक नहीं है। कुछ दुखिया जन शोक और महान् दु:ख मना रही हैं।

रोहिणीने जब धात्रीके मुखसें 'शोक' और 'दु:ख' ये दो शब्द सुने तो वह धात्रीसे कहने लगी——अम्ब, यह बताओ कि यह 'शोक' और 'दु:ख' क्या वस्तु हैं?

धात्रीने जब इस बार रोहिणीका प्रश्न सुना तो वह बड़ी रुष्ट हुई और उसकी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो गईं। वह रोहिणीसे कहने लगी—"सुन्दरी, क्या तुम्हें उन्माद हो गया है! पाण्डित्य और ऐश्वर्य क्या ऐंसा ही होता है? क्या रूपसे पैदा हुआ गर्व यही है! और क्या यही लोकातिशायी सौभाग्य है जो तुम 'शोक' और 'दु:ख'को नहीं जानती हो और स्वर तथा भाषासे अलंकृत नाटक-नाटक बक रही हो! क्या तुम इसी क्षण जन्म ल रही हो?"

जब रोहिणीने बसन्ततिलकाकी यह क्रोध-पूर्ण बात सुनी तो वह कहने लगी—"भद्रे, आप मेरे ऊपर क्रोध मत कीजिए। मैं गन्धर्व विद्या, गणित विद्या, चित्र, अक्षर, स्वर, और चौसठ विज्ञानों तथा बहत्तर कलाओंको ही जानती हूँ। मैंने आजतक इस प्रकारका कला-गुण न देखा है और न मुझसे किसीने कहा है। यह आज भी मेरे लिए अदृष्ट और अश्रुत-पूर्व है। इसी-

लिए मैंने आपसे यह प्रश्न पूछा है। इसमें अहंकार और पाण्डित्यकी कोई भी बात नहीं है।"

रोहिणीकी बात सुनकर धात्री फिर कहने लगी–"वत्से, न यह नाटकका प्रयोग है और न किसी संगीत-भाषाका स्वर ही। किन्तु किसी इष्ट-बन्धुकी मृत्युसे रोनेवालोंका जो दुख है वही शोक कहलाता है।"

धात्रीकी बात सुनकर रोहिणी फिरसे कहने लगी–भद्रे, यह ठीक है, परन्तु मैं रोनेका भी अर्थ नहीं जानती, सो उसे भी बतलाइए।

रोहिणीके इस प्रश्नके पूरा होते ही राजा अशोक बोला–प्रिये, शोकसे जो रुदन किया जाता है उस रुदनका अर्थ मैं बतलाता हूँ। इतना कहकर उसने लोकपाल कुमारको रोहिणीके हाथसे छीन लिया और उसके देखते देखते ही राजभवनके शिखरसे नीचे फेंक दिया।

लोकपाल कुमार राजभवनके शिखरसे गिरकर अशोक-वृक्षकी चोटीपर बनी हुई अशोकके फूलोंकी शय्यापर आ गिरा। जब नगरकी देवियोंको इस घटनाका पता लगा तो वे सब कोलाहल करती हुई इस स्थानमें एकत्रित हो गईं। और कहने लगी–रोहिणीको इस प्रकारका शोक और दुखका कारण कैसे आ गया?

इधर रोहिणीने भी जब तक यह नहीं देखा कि देवियोंने उसके चिरञ्जीव पुत्रके लिये अशोक वृक्षके ऊपर पाँच प्रकारके वर्णोंसे समुज्वल दिव्य सिंहासन उपस्थित कर दिया है, क्षीर सागरके जलसे भरे हुये, रत्न और सुवर्णसे बने हुये और मुख पर कमलोंसे अलंकृत एकसौ आठ कलशोंसे उसका अभिषेक कर दिया है और उसे आभरणोंसे भूषित कर दिया है तथा इस प्रकार वह बड़े ही आनन्दसे खेल रहा है, तब तक उसे बड़ा दुख और शोक हुआ।

परन्तु अशोकने जैसे ही नीचे नजर डाली उसे लोकपाल अशोक वृक्षके ऊपर रक्खे हुये सिंहासनपर पड़ा हुआ दिखलाई दिया। उसने देखा कि नगरदेवियोंने उसे सोलह प्रकारके आभूषण पहिना दिये हैं, दिशाओंको सुगन्धित करने वाले पुष्प और धूप आदिसे उसकी पूजा की गई है। उसे मालूम हुआ कि इन देवियोंने ही लोकपालको बचा लिया है।

एक दूसरे समयकी बात है। देवताओंने पुनः लोकपाल का जलके कलशोंसे अभिषेक किया और सुन्दर सुन्दर आभूषण पहिनाये। यह जानकर इन्द्रके समान अनुरागी, और महाबुद्धिमान् अशोक राजा, और स्नेहशील रोहिणी तथा समस्त पुरोहित आदिक बहुत ही विस्मित हुये। इस घटनाको सब लोगोंने रोहिणीके पूर्वकृत सुकृतका परिणाम समझा। इसके पश्चात् वे लोग इस दिव्य आभरणोंसे अलंकृत बालकको ले आये और उसे देखकर सभीको बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

परंच, हस्तिनागपुरका अशोक वन पुन्नाग, चम्पक, अशोक, नमेरु, वकुल, आम्र और अमरकके वृक्षोंसे सम्पन्न था। इस अशोक वनमें अतिभूति तिलक, महाभूति तिलक, विभूति तिलक और अम्बरतिलक नामके चार जिनमन्दिर थे।

एक बार रूपकुम्भ और स्वर्णकुम्भ नामके दो चारण मुनि विहार करते हुए हस्तिनागपुरमें आये और यहाँकी पूर्व दिशामें विद्यमान अशोक वनके महाभूति तिलक नामके जिनमन्दिरमें ठहर गये।

जैसे ही वनपालको मुनिराजोंके आगमनकी खबर लगी, वह तुरन्त अशोक महाराजके पास पहुंचा और उनसे मुनियोंके आनेका समाचार जा सुनाया। राजाने वनपालके मुखसे मुनियोंके आगमनका वृत्तान्त सुना तो मुनिभक्तिसे उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आये और वह महान् सम्पत्तिसे सुशोभित होकर मुनिराजके निकट जा पहुंचा।

अशोकने दोनों मुनियोंकी भक्तिपूर्वक वन्दना की और वह अवधिज्ञानी रूपकुम्भ नामके मुनिसे विनयके साथ प्रश्न करने लगा—महाराज, आप यह बतलाइये कि मैंने और मेरी पत्नी रोहिणीने पूर्वकालमें समस्त प्राणियोंपर दया करनेवाले कौनसे धर्मका आचरण किया था। तथा यह भी बतलाइये कि विशोक आदिक आठ पुत्रों तथा चारों कन्याओंका पूर्वभवमें क्या सम्बन्ध रहा है ?

मुनिराज बोले—राजन्, मैं तुम्हारी पत्नी रोहिणीके अशोकका कारण संक्षेपसे कहता हूं तुम एक चित्त होकर सुनो।

"इसी हस्तिनागपुरसे बारह योजन आगे चलनेपर अनेक वृक्ष और शिलाओंसे मण्डित नीलगिरि नामका ऊंचा पर्वत है। एक बार इस पर्वतके शिखर पर यशोधर नामके चारण ऋद्धि-सम्पन्न मुनिराज स्थिरचित्तके साथ आतापन योगमें संलग्न थे। यह मुनिराज अत्यन्त वीर थे, लोककी शान्तिके प्रचारक थे, सर्वौषधि ऋद्धिसे सम्पन्न थे, इनका शरीर धर्मसे भूषित था और अनेक व्रत और उपवासमें दत्त-चित्त रहा करते थे।

इक प्रकार जब यशोभर मुनिराज आतापन योगमें संलग्न थे तो मृगमारी नामका एक सुप्रसिद्ध शिकारी मृगोंको मारने के लिए नीलगिरि पर्वत पर आया, परन्तु मुनिराजके माहात्म्य, के कारण वह एक भी मृग नहीं मार सका। इस तरह जब मृगमारीका एक भी बाण सफल नहीं हुआ तो वह सोचने लगा कि पता नहीं क्या बात है जो आज मैं अपने अमोघ बाणोंसे सामने स्थित मृगोंमें से एकको भी नहीं मार रहा हूं। विचारते विचारते उसे कुछ दूरीपर विराजमान यशोधर मुनिराज दिखलाई दिये और तब उसे मालूम हुआ कि अवश्य इन्हीं मुनिके प्रभावने हमारे बाण बेकार कर दिये हैं।

इसके बाद जब मुनिराज पारणाके लिये नगरमें चले गये तो इस शिकारीने क्रोधावेशमें मुनिराजके ध्यान करनेकी शिलाको तृण और काष्ठ जलाकर खूब गरम किया और लकड़ियोंकी भस्म और अंगार आदिको अन्यत्र फेंक आया, जिससे मुनिराजको शिलाके गरम होनेका पता न चले और वे अचानक इसपर बैठते ही झुलस जावें। यह करनेके पश्चात् मृगोंको मारनेकी बुद्धिसे वह वहीं ठहर गया।

इधर यशोधर महाराज भी पारणा करनेके बाद धीमी धीमी गतिसे चलकर आगसे तपाई गई ध्यान शिलाके पास आये। उन्होंने शिलाको आगसे तपाई गई जानकर भी सार्वकालिक आतापन योग ले लिया और विशुद्ध परिणामोंके साथ उस शिलापर ध्यानस्थ हो गये। उन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाश किया और अन्तकृत केवली हो गये। इस अवसर-पर देव और असुरोंने उन्हें नमस्कार किया। अन्तमें चार अघातिया कर्मोंका नाश करके उन्होंनें मुक्ति लक्ष्मीको प्राप्त कर लिया।

मुनिराजके साथ इस प्रकारका दुष्टाचरण करनेके कारण मृगमारीको उदम्बर नामका कोढ़ हो गया और इस कोढ़से उसका सारा शरीर गल गया। इस तरह कुष्ट रोगकी असह्य वेदनासे व्यथित होकर वह मृगमारी सातवें ही दिन मर गया और मुनिराजको दुख देनेके कारण तेतीस सागरकी स्थिति वाले सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ।

वहाँसे निकल कर वह तिर्यञ्च हुआ और उस पर्यायमें अनन्त दुख भोगे। इसके पश्चात् भ्रमण करता हुआ वह पुनः मनुष्य गतिको प्राप्त हुआ। इसी सुरम्य हस्तिनागपुरमें बहुत गोधनसे सम्पन्न गोपालदण्डी नामका धनी गोपालक था। इसकी पत्नीका नाम गान्धारी था। वह पूर्व कालका मृगमारी व्याध इन दोनोंके वृषभसेन नामका लड़का हुआ।

जब वह वयः क्रमसे युवा हुआ तो एक बार गायोंको चराते चराते नीलगिरि पर्वत पर पहुँच गया। परन्तु दुर्भाग्य कि उस समय नील पर्वत दावानलकी लपटोंसे झुलस उठा बेचारे वृषभसेन का सम्पूर्ण शरीर आगकी इस ज्वालामें भस्म हो गया और वह तुरन्त ही मर गया। जब सिंहदत्त घी लेनेके लिये गोकुलमें आया तो उसे यह हाल मालूम हुआ और उसने वृषभसेनके माता-पितासे उसकी मृत्युका समाचार कह सुनाया।

जब गान्धारीको अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार मालूम हुआ तो वह मुनियोंके मनमें भी दुखका संचार करने वाला रुदन करने लगी।"

सूर्यकुम्भ मुनिराज कहने लगे–राजन्, यह तो शोकका कारण है। अब आप अपने और रोहिणीके सम्बन्धकी कथा सुनिये। वह इस प्रकार है–

"राजन्, पहले इसी हस्तिनागपुरमें वसुपाल नामक राजा रहता था, जिसकी समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पत्नीका नाम वसुमती था। इसके भाईका नाम धनमित्र था। धनमित्र राज-सेठ था और बड़ा भारी धनी था। धनमित्रकी पत्नीका नाम धनमित्रा था और इसके पूतिगन्धा नामकी एक कन्या थी।

इस पूतिगन्धाके शरीरसे मरे हुए कोढ़ी कुत्तेके शरीरकी दुर्गन्धिकी तरह इतनी भीषण दुर्गन्ध निकलती थी कि जिसके कारण आकाश भी दुर्गन्धित हो जाता था। और यह हाल था कि जिस स्थानमें पूतिगन्धा जा बैठती उस स्थानमें साधारण दुर्बल आदमीकी तो क्या बात, ब्रह्मा जैसा समर्थ मनुष्य भी नहीं बैठ पाता था।

उसी नगरमें एक वसुमित्र नामक धनी सेठ रहता था। वसुमित्रकी पत्नीका नाम वसुमती था और इन दोनोंके श्रीषेण

नामका पुत्र था। श्रीषेण जुआ खेलता, मदिरापान करता, शिकार खेलता, परस्त्री-सेवन करता, चोरी करता जीवहिंसा करता और मांस खाता था।

इस प्रकार वसुमित्रका यह अविनीत लड़का श्रीषेण नित्य ही मनुष्योंको दुख पहुँचानेवाले इन सात व्यसनोंसे खेला करता था। कहा भी है:–

"द्यूतं मांसं कुत्सितवेश्या परदारं
हिंसादत्तं सुरामकार्येष्वतिकष्टम्।
एते दोषाः सप्त नृणामतिपापाः
शिष्टैर्दृष्टाः दुर्गतिमार्गं प्रवदन्ति॥"

अर्थात् जुआ, मांस, खोटी वेश्या, परस्त्री, हिंसा, चोरी और मदिरा, ये सात दोष मनुष्योंके लिए बड़े भारी पाप हैं। शिष्ट लोग यदि इन्हें सिर्फ देख भर लें तो भी ये दुर्गतिके मार्गको ले जाते हैं, इनका सेवन तो और भी दुर्गतिका कारण है।

एक बार यह श्रीषेण किसी धनीके घरमें चोरी करनेके लिए घुसा। जब कोतवालके पास इस कुकर्मकी रिपोर्ट पहुँची तो उसने श्रीषेणको खूब ही फटकारा और बाँध लिया। इसके पश्चात् ढोल बजाते हुए उसने श्रीषेणको नगरसे बाहर निकाल दिया।

जिस समय श्रीषेण नगरसे निकाला जा रहा था और इस दृश्यको देखनेके लिए बहुतसे लोग इकट्ठे हो रहे थे, धनमित्रने सुदृढ़ जंजीरसे जकड़े हुए श्रीषेणसे कहा–श्रीषेण, यदि तुम हमारी कन्याके साथ विवाह करना चाहो तो तुम विश्वास रक्खो, मैं तुम्हें अभी छुड़वाये देता हूँ।

भयके मारे श्रीषेण काँप रहा था। उसने धनमित्रकी बात

सुनी और उससे कहने लगा—मामा, तुम मुझे छुड़वा दो तो मैं पूतिगन्धाके साथ अवश्य विवाह कर लूँगा।

श्रीषेणकी बात सुनकर धनमित्र तुरन्त ही राजाके पास पहुँचा और राजाकी आज्ञा लेकर उसने श्रीषेणको छुड़वा दिया और विधिपूर्वक इसके साथ पूतिगन्धाका विवाह कर दिया। जिसकी सड़ी हुई दुर्गन्धिके कारण सब लोग उससे दूर भागते थे, उसी पूतिगन्धाके साथ श्रीषेणने विधिवत् पाणिग्रहण कर लिया। उसने अपना मुँह और नाक बन्द करके किसी प्रकार एक रात पूतिगन्धाके साथ बिताई, परन्तु प्रभात होते ही वह नगरसे चल दिया।

इस प्रकार संसारकी महान् दुखिया पूतिगन्धाको श्रीषेणने भी छोड़ दिया। वह बड़ी ही दीन हो गई और जीवनकी निन्दा करती हुई पिताके घर ही दिन काटने लगी। इस प्रकारसे बड़े ही कष्टसे पूतिगन्धाके दिन व्यतीत हो रहे थे कि इस बीच एक सुव्रता नामकी आर्यिका उसके पिताके यहां आहारके लिए आईं। पूतिगन्धाने आर्यिकाको देखा और बड़ी दुखी हुई। उसने तुरन्त ही आर्यिकाके लिए आहार दिया और आर्यिका भी आहार लेकर वहाँसे विहार कर गईं।

इसी नगरमें एक कीर्तिधर नामका राजा रहता था। उसकी पत्नीका नाम कीर्तिमती था। एक दिनकी बात है। वनपाल सभाभवनमें आया और महाराज कीर्तिधरसे निवेदन करने लगा कि—"राजन्, पिहिताश्रव नामके चारण मुनि अपने साथ विहार करनेवाले अमितास्रव नामके मुनिराजके साथ वनके एक विशाल शिलाखण्ड पर विराजमान हैं।"

यह सुनते ही वह तुरन्त सपरिवार मुनि-वन्दनाके लिए चल पड़ा। राजाने दोनों मुनियोंकी बड़े ही भक्ति-भावसे वन्दना की, उनके श्रीमुखसे धर्मका उपदेश सुना और उसकी आत्मामें तुरन्त ही सम्यग्दर्शन प्रकट हो गया।

ठीक इसी अवसर पर पूतिगन्धा भी अपने माता-पिता आदि परिवारके साथ मुनियोंकी वन्दनाके लिए आई। पूतिगन्धाने मुनिराजके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया और विशुद्ध भावसे धर्मोपदेश सुना। इसके पश्चात् वह अपने जोड़े हुए हाथ मस्तकपर रखकर मुनिराजसे निवेदन करने लगी कि—भगवन्, आप कृपा कर मेरे पूर्वभवकी बात बतलाइए जिसके कारण मुझे पूतिगन्धा होना पड़ा और इतने कष्ट उठाने पड़े।

जब अमितास्रव योगीन्द्रने महान् वैराग्यभावको जागृत करनेवाला पूतिगन्धाका यह प्रश्न सुना तो वे सामने बैठी हुई पूतिगन्धासे कहने लगे:—पुत्री, तुम स्थिर होकर एक चित्तके साथ सुनना। मैं तुम्हारे इस दुर्गन्धयुक्त शरीरके प्राप्त होनेका कारण बतलाता हूँ।

"जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें पश्चिम समुद्रके निकट एक सौराष्ट्र नामका महान् देश है। इस देशमें ऊर्जयन्तगिरिके पश्चिममें एक गिरि नगर नामका नगर है। इस नगरके राजाका नाम भूपाल था। भूपाल विशुद्ध सम्यग्दृष्टी था। इसकी महादेवीका नाम स्वरूपा था। स्वरूपा इतनी रूपवती थी कि उसका सारा शरीर कुन्दनकी तरह दमकता था।

इसी राजाके एक गङ्गदत्त नामका सेठ रहता था, जिसकी पत्नीका नाम सिन्धुमती था, सिन्धुमतीको अपने रूप, यौवन और उत्कट विलासका इतना अधिक गर्व था कि वह अन्य स्त्रियोंको तृणके समान भी नहीं समझती थी।

एक बार इस नगरमें अनेक महीनेके उपवास किये हुए समाधिगुप्त नामके मुनिराज पारणाके लिए आये। समाधिगुप्त मुनिराज आहारके निमित्त एक घरसे दूसरे घर जा रहे थे कि इतनेमें राजाके साथ प्रमदवन जाते हुए गङ्गदत्त सेठने उन्हें देख लिया।

गङ्गदत्तने देखा कि मुनिराज मन्द-मन्द गतिसे चलकर उसके ही घर आरहे हैं तो उसने अपनी पत्नी सिन्धुमतीसे कहा—प्रिये, अपने घर चर्यापूर्वक विहार करते हुए एक निर्दोष मुनिराज पारणाके लिए आये हैं, इसलिए तुम इन्हें आहार देकर पीछेसे आ जाना।

सिन्धुमती गङ्गदत्तके कहनेसे लौट तो आई, परन्तु उसके मनमें बड़ा तीव्र क्रोध-भाव उत्पन्न हो गया। उसने मुनिराजको पड़गाहा और वह उन्हें अपने घर ले गई। घर जाकर जब वह भैंसके निमित्त खूब नमक आदि डाले हुए बांटको मुनिराजके लिए देनेको तैयार हुई तो उसकी धात्रीने उसे बहुत रोका और समझाया; परन्तु क्रोधावेशमें उसने कुछ भी न सुना और महीनोंके उपवासी समाधिगुप्तको उसने वह कड़वी तूमड़ी मिला हुआ बांट आहारमें खिला दिया। मुनिराजने हमेशाके लिए प्रत्याख्यान लेकर आराधनाओंका आराधन किया और स्वर्गमें जाकर देवपर्यायमें उत्पन्न हो गये।

जब राजा बनसे लौटा तो उसने मरे हुए और विमानमें ले जाये जानेवाले मुनिराजको देखकर पूछा कि इन महाराजकी किस प्रकारसे मृत्यु हो गई ?

राजाकी बात सुनकर एक कहने लगा—महाराज, यह कड़वी तूमड़ीसे मिश्रित भैंसका बांट खिलानेवाली आपकी सिन्धुमतीकी लीला है !

जब राजाने यह सुना तो उसने सिन्धुमतीका सिर मुंड़वाकर, उसपर पाँच बेल बँधवाये, गधेपर सवार करवाया और उस दुराचारिणीको खूब ही पिटवाते हुए तथा नगाड़ा बजाकर इसके दुराचारकी सूचना कराते हुए, समस्त जनताकी उपस्थितिमें उसे नगरसे बाहर निकलवा दिया।

उसके बाद उसे उदम्बर कोढ़ हो गया और वह सात

दिनके भीतर ही मरगईं तथा बाईस सागरकी स्थितिवाले छठवें नरकमें उत्पन्न हुई। इस प्रकार इस पापिनी सिन्धुमतीने क्रमसे सातों ही नरक भूमियोंमें परिभ्रमण किया और घोर दुख उठाये।

जब वह अत्यन्त घोर दुखमय नरकभूमियोंसे निकली तो तिर्यञ्च गतिमें पहुंची। वह दो बार कुत्ती हुई, सूकरी हुई, शृगाली हुई, चुहिया हुई, गोंच हुई, हथिनी हुई, गधी हुई और गोणिका हुई। इसके पश्चात् ही दुःखोंकी मारी, दुर्गन्धित शरीरवाली और बन्धुलोकसे निन्दित तू पूतिगन्धा हुई।"

मुनिराजके द्वारा सुनाई गई यह पूर्वभवकी कथा सुनकर पूतिगन्धाका मन संसारसे विरक्त हो गया और वह समस्त प्राणियोंके लिये हितकर मुनिराजसे कहने लगी—भगवन्, अब आप कृपा कर यह बतलाइये कि मैं किस पुण्य कार्य द्वारा इस पूर्वकृत पाप-कर्मसे उन्मुक्त हो सकती हूँ?

पूतिगन्धाकी बात सुनकर महामुनि कहने लगे—"वत्से, यदि तुम वस्तुतः संसारसे भयभीत हो गईं हो और समस्त पापोंसे उन्मुक्त होना चाहती हो और रोग-शोकसे रहित देव-प्रियता प्राप्त करना चाहती हो तो तुम रोहिणी नक्षत्रमें उपवास किया करो। इससे तुम्हें फिर कभी भी दुख नहीं उठाने पड़ेंगे।"

मुनिराजकी बात सुनकर पूतिगन्धा कहने लगी—भगवन्, यह बतलाइये कि रोहिणीमें कैसे उपवास किया जाता है और उसकी विधि क्या है? इतना कहकर पूतिगन्धाके हृदयमें एक दम भक्तिरस उमड़ आया और उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये।

मुनिराज कहने लगे—"हे मनस्विनी पुत्री, उपवासके पहले दिन पवित्र मुनिमार्गका अनुसरण करते हुये चार प्रकारका प्रत्याख्यान करना चाहिये और जिस दिन चन्द्रमा रोहिणी

नक्षत्रमें हो उसी दिन जिनेन्द्र भगवान्‌की भक्तिपूर्वक पूजा करके उपवास करना चाहिये। इस तरह सत्ताइसवें दिन पुनः उपवास करना चाहिये। इस तरह प्रति सत्ताईसवें दिन उपवास करनेसे पाँच वर्ष नौ महीनेमें कुल सरसठ उपवास हो जावेंगे। हे भद्रे, इस प्रकारकी विधिसे भव्यजीवोंके कल्याणको करनेवाला यह उपवासका विधान अखण्ड रूपसे समाप्त हो जावेगा।

जब यह रोहिणी व्रत अखण्ड रूपसे समाप्त हो जावे तो तुम एक रोहिणीव्रत सम्बन्धी ग्रन्थ लिखवाना और इसके साथ अन्य वे ग्रन्थ भी लिखवाना जो धर्मके कारण हों, आगम सम्मत हों, सारवान् हों और भव्यजीवोंका हित करनेवाले हों। इसके सिवाय हे भद्रे, तुम भव्यजीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाले, देवता और असुरों द्वारा नमस्करणीय वासुपूज्य भगवान्‌की पूजा भी करना।

इस तरह इस शुभ अवसरपर कर्मक्षयके निमित्त भगवान् वासुपूज्य और रोहिणी ग्रन्थकी विमानोंको ध्वजाओंसे, कलशोंसे, घण्टाओंसे, घंटियोंसे, दर्पणोंसे और स्वस्तिकोंसे भूषित करके श्रीखण्डसे, कुंकुमसे, उन पुष्पोंसे, जिनपर सुगन्धिके कारण भ्रमर गुनगुनाते हों,, पञ्चवर्णी चरुसे, दीप, धूप और फल आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा की जाती है। इसके पश्चात् चार प्रकारके संघके लिये शक्तिके अनुसार आहार, औषधि, अभय और ज्ञानदान भी दिया जाता है। वत्से, इस प्रकार जो स्त्री या पुरुष विधिवत् इस रोहिणीव्रतका पालन करतें हैं, वे केवलज्ञानी होकर मोक्षमें चले जाते हैं।"

जब पूतिगन्धाने मुनिराजका यह हृदयंगम उपदेश सुना तो उसने इस उपवास विधिके अनुष्ठानका निश्चय कर लिया। पूतिगन्धाका शरीर भक्तिके कारण रोमाञ्चित हो रहा था।

उसने अपने मनको प्रिय लगनेवाले इस व्रतको स्वीकार कर लिया। पुनः मुनिराजसे कहने लगी—

"भगवन्, इस समय आप मुझे कृपा-पूर्वक यह बतलाइये कि क्या मेरे समान अन्य किसीने भी कभी इस व्रतका अनुष्ठान किया है ?" पूतिगन्धा यह कहकर अपने हाथोंको मस्तकपर रक्खे हुये बैठ गई और मुनिराजके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगी।

उत्तरमें मुनिराज कहने लगे—पुत्री, समस्त दु:खोंको दूर करने वाला यह व्रत-विधान एक अन्य पूतिगन्धने बड़ी ही तत्परताके साथ पालन किया था। जिसकी कथा इस प्रकार है—

"जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें शकटपुर नामका देश है। इस देशमें सिंहपुर नामका सुन्दर नगर था। इसके राजाका नाम सिंहसेन था और पत्नीका नाम कनकप्रभा। इन दोनोंके एक लड़का हुआ, जिसके शरीरसे बड़ी ही दुर्गन्ध निकलती थी।

एक समयकी बात है। विमलमदन जिनराजको केवल-ज्ञानकी प्राप्ति हुई और यह जानकर देवतागण जिनराज का केवल ज्ञान महोत्सव मनानेके लिये आकाश मार्गसे आये। ठीक इसी अवसरपर पूतिगन्धि कुमार राजभवनके शिखर पर बैठा हुआ था। उसने प्रभासे दिपते हुए और आकाशसे जाते हुये एक देव कुमारको देखा। देखते ही वह तत्क्षण मूर्छित हो गया। जब उसके ऊपर चन्दन मिश्रित जल छिड़का गया तो वह होशमें आया और उसे जाति स्मरण हो आया। वह तुरन्त ही अपने पिता सिंहसेन महाराजके साथ केवली भगवान्‌के दर्शनोंको चल दिया। भगवान्‌के पास पहुंचकर उसने उनकी तीन प्रद-क्षिणा की और बड़ी ही भक्तिके साथ नमस्कार किया। इसके पश्चात् वे दोनों ही पिता-पुत्र वहाँ बैठ गये और धर्मोपदेश सुनने लगे।

जब भगवान्‌का उपदेश समाप्त हुआ तो यथावसर सिंहसेन बड़ी ही भक्तिके साथ जिनराजसे अपनी मनोगत बात

पूछने लगा। वह बोला–भगवन्, आप यह बतलाइये कि मेरा यह पुत्र किस कारणसे पूतिगन्धि हुआ और किस कारणसे यह मूर्छित हुआ और चैतन्य होनेपर यहाँ आया ?

राजाका प्रश्न सुनकर जिनराज कहने लगे–"राजन्, आपके इस पुत्रने दूसरे भवमें एक मुनिराजकी हत्या की थी। इसी कारण यह नाना योनिरूपी जल से भरे हुये संसार-सागरमें परिभ्रमण करके तुम्हारे यहाँ पूतिगन्धि पुत्र हुआ। यह उस मुनि-हत्याके पापका ही परिणाम है। राजन्, इसने आकाश मार्गसे जाते हुये एक देव कुमारको देखा और उसे देखनेसे ही इसे जाति स्मरण हो आया। नरक वेदनाकी स्मृति सजग हो उठी और उससे भयभीत होकर ही यह मूर्छित हो गया।"

जिनराजकी यह बात सुनकर भक्त हृदय महाराज सिंहसेन जिन भगवान्से पुनः विनय करने लगे–"भगवन्, आप मुझे यह बतलाइए कि इसने पूर्व जन्ममें क्यों कर मुनिराजकी हत्यां की ?"

सिंहसेनकी बात सुन कर मुनिराज कहने लगे–

"कलिङ्ग देशके निकटमें विन्ध्याचल नामक पर्वत है। उसी विन्ध्याचलपर एक महान् और दिव्य अशोक वन है, जो अशोक वृक्षोंसे खूब ही सघन है। इसे अशोक वनमें दो मदोन्मत्त हाथी रहते थे। एकका नाम स्तम्वकरी था और और दूसरेका नाम श्वेतकरी। दोनों ही हाथी अपने-अपने हाथियोंके झुण्डके स्वामी थे।

एक समयकी बात है। दोनों ही हाथी उस प्रदेशकी एक विशाल नदीमें घुसे और जलके पीछे आपसमें लड़ पड़े। इतने लड़े कि अन्तमें वे दोनों ही मर गये। मरकर एक बार विलाव और चूहा हुए। एक बार भयानक सांप और नेवला हुए। फिर बाज और बगुला हुए। इसके पश्चात् नील कमलके पत्रकी

तरह पंख वाले, गुमचीकी तरह लाल चरण वाले और मीठी-मीठी अव्यक्त ध्वनि करने वाले कबूतर हुए।

अति रमणीय कनकपुरमें सोमप्रभ नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम सोमश्री था। सोमश्रीका मुख चन्द्रकी तरह मनोहर था और वह बड़ी ही मधुर-भाषिणी थी।

सोमप्रभ राजाके एक सोमभूति नामका ब्राह्मण पुरोहित रहता था। इसकी पत्नीका नाम सोमिल्ला था जो अपने सौन्दर्यके कारण ही विख्यात थी। दोनों ही कबूतर मर करके सोमिल्लाके सोमशर्मा और सोमदत्त नामके पुत्र हो गये। दोनों जैसे ही बड़े हुए अनेक कलाओं और विज्ञानमें पारंगत होगये तथा वेद और स्मृतिके प्रकाण्ड पण्डित बन गये।

इधर जब सोमभूति पुरोहितकी मृत्यु हो गयी तो राजाने अपने पुरोहितका पद सोमदत्तको दे दिया। सोमशर्मा ज्येष्ठ भाई था। उसने छोटे भाईकी पत्नी लक्ष्मीमतीसे प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर लिया और बड़ी ही प्रसन्नताके साथ उसके सहवासमें काल यापन करने लगा।

सोमशर्माकी सुकान्ता नामकी मूढ़ पत्नी रोज-रोज सोमदत्तसे इस प्रसङ्गको छेड़ती—सोमदत्त, मैं बिल्कुल सच कह रही हूँ कि तुम्हारी दुराचारिणी पत्नीका मेरे पतिके साथ अनुचित सम्बन्ध है। अन्तमें सोमशर्माके इस कृत्यसे सोमदत्तको महान् वैराग्य हुआ और वह धर्मसेन मुनिराजके पास दीक्षित हो गया।

जब राजाको मालूम हुआ कि सोमदत्त साधु हो गया है तो उसने सोमशर्माको पुरोहितके पदपर नियुक्त कर दिया।

इधर महाराज सोमप्रभने शकटदेशके अधिपति वसुपाल राजाके यहाँ अपना दूत भेजा। दूत वसुपाल राजाके पास पहुंचा और उसे प्रणाम करके हाथ जोड़कर प्रसन्नताके साथ

वसुपाल नरेशसे कहने लगा—राजन् ! आपके यहाँ जो त्रिलोक सुन्दर, महाबली, और युद्ध विशारद राज-हाथी है, हमारे स्वामीने आपके लिए बहुत ही प्रसन्नताके साथ यह सन्देश भेजा है कि आप उस हाथीको शीघ्र ही हमारे पास भिजवा दीजिये ।

किन्तु वसुपाल नरेशने साफ कह दिया कि मैं यह हाथी नहीं दूंगा । अब तुम्हें इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी जरूरत नहीं है । दूतने तुरन्त ही अपने स्वामीके पास जाकर उससे समस्त वृतान्त सुना दिया । वसुपालके उत्तरसे सोमप्रभको बड़ा क्रोध आया । वह वसुपालके ऊपर चढ़ाई करनेके लिये तुरन्त ही अपनी सेनाके साथ चल पड़ा और नगरसे बाहर निकल आया ।

सन्ध्याके समय सोमदत्त नामके मुनिराज सेनाके पड़ावके एक प्रदेशमें ध्यान-मग्न थे । सोमशर्माने ज्यों ही ध्यानावस्थित सोमदत्त मुनिराजको देखा क्रोधके मारे उसकी आँखें लाल हो गईं । वह कहने लगा—"हम लोग आज अपने सबल शत्रुपर चढ़ाई करनेके लिये जा रहे थे कि इस नग्न श्रमणके दर्शनसे अपशकुन हो गया । इसलिये अब हमें चाहिये कि हम इस मुनिको मार डालें और इसके खूनको दसों दिशाओंमें फेंक दें, जिससे हमारा पवित्र शान्ति-विधान हो सके ।

जब महाराज सोमप्रभने मुनि हिंसा-प्रतिपादक सोमशर्माका कथन सुना तो उसने अपने हाथोंसे कान बन्द कर लिये ।

जब राजा इस प्रकार अपने कान मूंदकर ठहर गया तो विश्वदेव नामका ब्राह्मण, जो निमित्तज्ञ था, विशुद्धात्मा था, चार वेद और छः अङ्गका वेत्ता था, अनेक प्रकारके शकुनोंका फल बतलानेमें और शास्त्रार्थमें कुशल था, सज्जनोंके द्वारा मान्य था, और जनताका प्रेम-भाजन था, खेद-खिन्न महाराजसे कहने लगा—

"राजन्, सोमशर्माको कुछ मालूम नहीं है, इसलिये यह इस प्रकारसे कह रहा है। यह मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले हैं। इस प्रकारके मुनिराजका दर्शन समस्त कार्योंकी सिद्धि करता है, समस्त शुभ शकुनोंके समान है और सम्पूर्ण कल्याणका कर्त्ता है। कहा भी है–

"यतिराज-वाजि-कुञ्जर-गोमय-वरकुम्भ-वृषवरा ह्येते।
आगमने निष्क्रमणे सिद्धिकराः सर्वकार्येषु ॥"

अर्थात् मुनि, राजा, घोड़ा, हाथी, गोवर, उत्ताम कलश और श्रेष्ठ वृषभ (बैल) ये आते जाते समय सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके सूचक हैं।

राजन्, मैं इस सम्बन्धका आपको एक पुराना प्रसङ्ग सुनाता हूँ। यह कह विश्वदेव कहने लगा–महाराज, जब विष्णु युद्धके लिए रवाना हुए तो उन्हें मार्गमें एक मुनिराज दिखलाई दिये। उस समय उन्होंने अर्जुनसे कहा–अर्जुन तुम निःशङ्क होकर रथपर बैठ जाओ और धनुषको उठा लो। देखो, सामने यह दिगम्बर मुनिराज हैं और अब मैं सम्पूर्ण पृथ्वीको जीती गयी ही मानता हूं। कहा भी है :–

"आरूरोह रथं पार्थ गाण्डीवं चापि धारय।
निर्जितां मेदिनीं मन्ये निर्ग्रन्थो यतिरग्रतः ॥"

अर्थात् अर्जुन् तुम रथपर चढ़ जाओ और धनुष धारण करलो। सामने निर्ग्रन्थ मुनिराजके दर्शन होरहे हैं, इसलिए मैं समझता हूँ कि अब हमने पृथ्वी जीतली–हमारी विजय अटल है।

विश्वदेव कहने लगा–राजन्, इसके सिवाय समस्त शकुन शास्त्रोंमें एक और सुभाषित आया है और जिसे सब लोग जानते भी हैं। वह सुभाषित निम्न प्रकार है–

"श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुञ्जरो वृषः।
प्रस्थान वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकरा मताः ॥"

अर्थात् श्रमण (दिगम्बर मुनि), घोड़ा, राजा, मोर, हाथी और वृषभ, ये घरसे प्रस्थान करते समय या घरमें प्रवेश करते समय कार्य-सिद्धिके सूचक हैं।

राजन्, ज्योतिष शास्त्रमें भी विद्वानोंने एक सुभाषित लिखा है, जिसे संसारमें खूब ही प्रसिद्धि और यश मिला है। वह सुभाषित निम्न प्रकार है–

पद्मिन्यो राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः।
यद्देशमभिगच्छन्ति तद्देशे शुभमादिशेत् ॥"

अर्थात् पद्मिनी स्त्रियां, राजहंस और निर्ग्रन्थ तपस्वी जिस प्रदेशमें रहते हैं, उस प्रदेशमें सर्वत्र मङ्गल रहता है।

राजन्, जनताको पुण्य प्रदान करनेवाले धर्मशास्त्रोंमें भी विद्वानोंने एक बहुत उत्तम सुभाषित कहा है। वह सुभाषित इस प्रकार है–

"योगी च ज्ञानी च तपोधनाश्च शूरोऽथ राजा च सहस्रदश्च।
ध्यानी च मौनी च तथा शतायुः संदर्शनादेव पुनन्ति पापान् ॥"

अर्थात् योगी, ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, राजा, घोड़ा, ध्यानी, मौनी और सौ वरसका मनुष्य–इन सबके दर्शन मात्र ही पापोंको धो डालते हैं।

विश्वदेव कहने लगा–"इसलिए राजन्, शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके ध्येयसे प्रस्थान करने वाले हम लोगोंके मार्गमें जो ये मुनिराज दिखलायी दिये हैं सो हमारे लिए यह बड़ा भारी शकुन है। जगत्को पवित्र करनेवाले और क्रोधादि शत्रुओंपर विजय प्राप्त करने वाले इन मुनिराजके दर्शनसे हमारे कार्यको निश्चय ही सिद्धि समझिये।

राजन्, इतना ही नहीं मुनिराजका यह दर्शन इस बातकी ओर संकेत कर रहा है कि प्रभात होते ही स्वयं मगधनरेशको त्रिलोकसुन्दर हाथी लेकर यहाँ उपस्थित होना चाहिए।" जब महाराज सोमप्रभने विश्वदेवकी यह बात सुनी तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ।

दूसरा दिन हुआ। मगधनरेश त्रिलोकसुन्दर हाथी ले कर सोमप्रभके निकट आया और उसने यह हाथी सोमप्रभके लिए सहर्ष भेटमें दे दिया। सोमप्रभने मगधाधिपति वसुपालका बड़ा ही सत्कार किया और उस हाथीको ले कर उसने अपनी सेनाके साथ नगरमें प्रवेश किया।

इधर सोमशर्माने पूर्व वैरके कारण ध्यानावस्थित मुनिराज सोमदत्तको तलवारसे मार डाला और इसके पश्चात् वह नगरमें आ गया।

प्रातःकालके समय जब महाराज सोमप्रभको मालूम हुआ कि सोमशर्माने मुनिराज सोमदत्तको मार डाला है तो उसने दुराचारी, मुनिहत्या करने वाले पापी सोमशर्माको पाँच प्रकारका दण्ड दिया। साथ ही इस मुनिहिंसाके कारण दुष्ट बुद्धि सोमशर्माको सात दिनके भीतर ही उदम्बर कोढ़ निकल आया। इस प्रकार उसका सारा शरीर कुष्ट रोगसे गल गया और अन्तमें मर कर वह तेतीस सागर प्रमाण स्थितिवाले सातवें नरकमें जा पहुँचा।

जब वहाँके अनन्त दुःखोंको सहता हुआ वह इस नरकसे निकला तो स्वयम्भुरमण समुद्रमें एक हजार योजन विस्तार वाला तिमिङ्गल नामका मत्स्य हो गया। वहाँ रह कर इस मत्स्यने विविध भाँतिकी पीड़ा सही और अन्तमें मर कर बाईस सागर प्रमाण स्थितिवाले छठवें नरकमें जा गिरा। जब इस नरककी स्थिति समाप्त हुई तो मर कर यह अनेक महान् हाथियोंको भयभीत करने वाला दुष्ट सिंह हुआ। जब इसकी सिंह पर्यायकी स्थिति सम्पूर्ण हुई तो यह पांचवें नरकमें पहुंचा और वहाँ अनन्त वेदना भोगने वाला भयंकर नारकी हुआ। जब इस नरकके कष्टोंको भोगता हुआ यहाँसे निकला तो गुमचीके समान लाल आँखों वाला महा भयंकर काले वर्णका साँप हुआ। जब इस पर्यायसे भी मरा तो

चौथे नरकमें पहुंचा और जब यहाँसे निकला तो वह व्याघ्र-की पर्यायमें उत्पन्न हुआ। जब यह इस व्याघ्र पर्यायसे उन्मुक्त हुआ तो तीसरे नरकमें पहुंचा और जब यहाँसे निकला तो अत्यन्त दुष्टात्मा पक्षी हुआ। जब इस पर्यायसे छूटा तो दूसरे नरकम गया और जब महान् दुखोंको भोगकर यहाँसे निकला तो सफेद बगुला हो गया। जब यह इस बगुलेकी पर्यायसे छूटा तो अनेक दुःखोंसे आकीर्ण प्रथम नरकमें पहुंचा और वहाँ एक सागरकी आयु बिता कर जब बड़े क्लेशसे निकला तो राजन्, यह तुम्हारे यहाँ पूतिगन्धकुमार हो गया, जिसका सारा शरीर कोढ़से गला जा रहा है"।

पूतिगन्धकुमारने इस प्रकार जिनराजके मुखसे अपने पूर्वभवकी कथा सुनी। और वह जिनराजके चरणोंमें विनत होकर भक्तिसे प्रार्थना करने लगा—भगवन्, यह बतलाइए कि अन्य भव-भवान्तरमें उपार्जित किये गये इस तीव्र पाप कर्मका किस प्रकार परिक्षय होगा?

जिनराज कहने लगे—वत्स, यदि तू अपने पाप-कर्मसे तंग आ गया है तो रोहिणी नक्षत्रमें उपवास कर।

पूतिगन्धने जिनराजकी यह बात सुनी तो वह भगवान्से पूछने लगा—भगवन्, रोहिणी नक्षत्रमें किस प्रकार उपवास किया जाता है? सो बतलाइए'।

जिनराज कहने लगे—"वत्स! यह उपवास जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें रहता ह तब किया जाता है। इसी प्रकार इस अनुष्ठानके करनेसे तीन सालम चालीस उपवास हो जाते हैं। अथवा पांचवर्ष, नौ दिन तक करनेसे पाप-समूहको धोने वाले सड़सठ उपवास होजाते हैं। और इस प्रकार जब यह व्रत-विधान विधिवत् समाप्त हो जाय तो चौबीस तीर्थंकरोंका मण्डल बनवाना चाहिए। और इसके नीचे आठपुत्र और चार पुत्रियों के साथ अशोक रोहिणीका चित्र बनाना चाहिए। यह विधि

निःसन्देह शोक दूर करनेवाली है। इसके पश्चात् भगवान् वासुपूज्यकी विविध प्रतिमा निर्माण करा कर उसकी महान उत्सवके साथ पूजा करनी चाहिए। और चार प्रकारके संघको यथायोग्य आहार, ज्ञान, औषधि, अभय और वस्त्रोंका भक्तिपूर्वक दान करना चाहिए। हे वत्स, इस विधानके माहात्म्यसे चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, देव, असुर, मनुष्य तथा विद्याधर आदिमें जन्म लेकर पूजनीय तथा वन्दनीय बनता है और समस्त कर्मोंका क्षय करके मोक्षको प्राप्त कर लेता है।"

इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के उपदेशसे पूतिगन्धकुमारने सम्यक्त्व-लाभ करके रोहिणीमें उपवास करना निश्चित कर लिया। इतना ही नहीं, उसने जिनराजके निकट पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ले लिये। इस प्रकार सम्यक्त्व और धर्मके प्रभावसे पूतगन्धिकुमार सुगन्धिवाहन बन गया—उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे सुगन्धि निकलने लगी। ठीक है, धर्मसे क्या नहीं मिल जाता है?

इस प्रकार जैनधर्मका पालन करते करते उसे एक महीना ही हुआ था कि उसने विरक्त होकर श्रीविजय नामके पुत्रके लिए अपना राज्य दे दिया और स्थिर मनसे चार प्रकारकी आराधनाओंका आराधन किया तथा अन्तमें सल्लेखनासे मरण करके प्राणत नामक स्वर्गमें, जहां देवोंकी दुन्दुभियोंकी ध्वनि हो रही थी, बीस सागर प्रमाण स्थितिवाला महर्द्धिक देव हो गया।

उसने पहले अचिन्त्य देव शरीरको देखा फिर अपना मुख देखा और पुनः एक क्षणके पश्चात् वह सोचने लगा—यह क्या है? मैं कहां आगया हूँ? मेरा यह कौनसा भव है? मुझे यह सुख कैसे मिला? हमारी ओर दृष्टि लगाये हुए कौन हैं? यह कौनसा स्थान है?

यह सोचते ही उसे पूर्व जन्मकी स्मृति सजग हो गयी। उसे देवताओंकी सेना और परिवारने घेर लिया और वह अभिषेक गृहमें पहुंचा। वहां देवताओंने उसका खूब ही अभिषेक किया और इसके पश्चात् वे उसे अलङ्कारगृहमें ले गये। उसे मणिनिर्मित आभूषण पहिनाये गये और उसका शरीर उनकी चमकसे जगमगा उठा। उसके ऊपर चमर ढुरने लगे। दिशाओं में "जय देव जय देव" का महान् कोलाहल होने लगा। दवताओंकी जय ध्वनि तथा दुंदुभिकी ध्वनिसे आकाश भर गया।

इसके पश्चात् वह सभाभवनमें लाया गया, देवता प्रणाम करके उससे उचित कर्तव्य कार्यकी प्रार्थना करने लगे। उन देवोंने कहा—"देव, पहले आप जिन भगवान्की पूजा कीजिए। इसके पश्चात् अपनी सैन्यसामग्रीका निरीक्षण कीजिए। इसके बाद नाटक देखिए और फिर देवाङ्गनाओंके ललित विलासों को कृतार्थ कीजिए।"

पहले भवके पूतिगन्धिकुमारने जब इन समस्त देवोंको अपने सामने उपस्थित और अपनी स्तुति करते हुए देखा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और एक वार फिर सोचने लगा कि मैंने पूर्वभवमें कौनसा शुभ कार्य किया जिसके कारण मैं इस स्वर्गमें उत्पन्न हुआ? तब उसने अवधिज्ञान रूपी नेत्रसे पूर्वभवका समस्त वृतान्त जान लिया और वह समस्त मुनिराजों-की स्तुति करने लगा। उसने अपने विमानमें बैठे बैठे ही मस्तकपर हाथ जोड़े और वह कहने लगा—उन गुरुके लिए नमस्कार हो जिन्होंने मुझे धर्म ग्रहण कराया। वे गुरु महाराज सबके तथा हमारे लिए नित्य पूजनीय हैं, जिनके प्रसादसे मैं उत्तम देवलोकमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह देव देवियोंके साथ मनमाने भोगोंको भोगता हुआ आनन्दके साथ जीवन विताने लगा।

जम्बूद्वीपमें पूर्व विदेह नामका क्षेत्र है। इस क्षेत्रके पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। उसका विस्तार नौ योजन और लम्बाई बारह योजन है और वह समस्त धनधान्यसे सम्पूर्ण है।

इस नगरीमें विमलकीर्ति नामका राजा रहता था। उसकी पत्नीका नाम श्रीमती था जो इसे बहुत ही प्रिय थी। इन दोनोंके पूतिगन्धिकुमारका जीव जो देव था, अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ। अर्ककीर्ति बड़ा ही रूपवान् था और सब लोगोंके मनको प्यारा था। अर्ककीर्तिका एक प्राणोंसे भी प्यारा मित्र मेघसेन था। ये दोनों ही कुमार श्रुतसागर उपाध्यायको सौंप दिये गये। दोनोंने ही कला और विज्ञानका खूब अध्ययन किया, शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्यामें भी खूब श्रम किया और इस प्रकार बहुत जल्दी शास्त्र-समूहके पारगामी पण्डित बन गये।

परंच, उत्तर दिशामें स्थित मथुरामें एक सागरदत्त नामके सेठ रहते थे। वे बड़े भारी धनी थे और उनके पास बहुत अधिक मणि थे। इनकी पत्नीका नाम जयमती था। जयमतीका शरीर रूप-राशिसे दमकता था, और उसके नेत्र कमलकी तरह मनोहर थे। इन दोनोंके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुमन्दिर रक्खा गया।

तथा दक्षिण दिशाकी मथुरामें एक नन्दिमित्र नामके सेठ रहते थे। यह जनताके बड़े ही स्नेह-भाजन थे और धनी भी उतने ही थे। इनकी सहधर्मिणीका नाम धनदत्ता था। इन दोनोंके अतिशय कान्तिमान् सुशीला और सुमती नामकी दो कन्याएँ थीं, जिनका विवाह नन्दिमित्रने सुमन्दिरके साथ विधिवत् कर दिया।

जिस समय इन दोनों कन्याओंका सुमन्दिरके साथ विवाह हो रहा था, उसी समय अर्ककीर्ति और मेघसेन भी घूमते हुए

दक्षिण मथुरामें आये और अर्ककीर्ति इन दोनों कन्याओंको देख कर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुआ। अर्ककीर्तिने मेघसेनको संकेत किया और मेघसेनने उन दोनों कन्याओंको सुमन्दिरसे छीन लिया। परन्तु ज्योंही पुरवासियोंने मघसेनको उन दोनों कन्याओंको ले जाते हुए देखा, उन लोगोंने इन कन्याओं-को मेघसेनके हाथसे छीन लिया। इसके बाद ये सेठ लोग तुरन्त ही पुण्डरीकिणी नगरीमें आये और उन्होंने विमलकीर्ति राजासे इस घटनाका समस्त वृतान्त सुना दिया।

जब महाराजने इन सेठ लोगोंके मुँह से अर्ककीर्ति और मेघसेनका यह काण्ड सुना तो उन्हें बड़ा ही क्रोध आया और उसी क्षण इन दोनों कुमारोंको अपने देशसे निकाल दिया। इस व्यवहारसे दोनों ही कुमारोंको बड़ा शोक हुआ और उनके मुख-कमल श्रीहीन होगये। अपने देशसे चलकर दोनों कुमार पताकावलिसे मण्डित वीतशोकपुरमें आ पहुंचे।

वहां उस समय विमलवाहन नामके राजा राज्य करते थे, जो बड़े ही नीतिज्ञ थे। इनकी पत्नीका नाम विमलश्री था, जो बहुतही निर्मल हृदयकी थी। इन दोनोंके आठ कन्याएं थीं। ये कन्याएँ बहुत ही रूपवान्, विनीत और सदाचारिणी थीं और उनके नाम इस प्रकार थे—पहलीका नाम जयमती था। दूसरीका नाम सुकान्ता था. जिसका शरीर वस्तुतः बहुत ही सुन्दर था। तीसरीका नाम कनकमाला था। चौथीका नाम सुप्रभा था। पांचवींका नाम सुमति था। छटवींका नाम सुव्रता था, सातवींका नाम विमला था और आठवींका नाम विमलप्रभा। प्रत्येक कन्या कला और विज्ञानमें निष्णात थी तथा इनकी कान्ति रतिकी कान्तिकी तरह मनोहर थी।

महाराज विमलवाहनसे एक बहुत सत्य भविष्यवाणी करने वाले ज्योतिषीने बतलाया था कि महाराज, इस महान् श्रीसम्पन्न जयमतीका वही पति हो सकता है, जो भली-

भांति चन्द्रकवेंधका भेदन कर सके। इसलिए महाराज विमल-वाहनने जयमतीके विवाहके निमित्त अनेक राजपुत्रोंको बुलाया और वे सब सहर्ष इस महोत्सवमें सम्मिलित हुए। परन्तु इनमें से एक भी ऐसा नहीं निकला जो चन्द्रकवेधका भेदन कर सके।

चन्द्रकवेधको भेदनेकी प्रक्रिया विद्वानोंने इस प्रकार बतलायी है। सबसे पहले एक खंभा खड़ा किया जाता है और उसके ऊपर रातमें चमकते हुए तारेकी तरह कुम्भकारके चाकके समान वेगसे घूमता हुआ एक चक्र रहता है। चन्द्रकवेध करने वाला व्यक्ति एक लाठीके सहारे उस चक्र पर उचक जाता है और घूमने लग जाता है। उस समय वह धनुषपर बाण चढ़ाता है और लक्ष्यकी ओर अपनी नजर गड़ाता है। तत्पश्चात् वह कुम्हारके चाककी तरह घूमता हुआ ही चक्रके पहले युग पर सात कदम चलता है। तदनन्तर वह चक्रके शेष छह युगोंपर भी तीन तीन कदम चलता है। अर्थात् दूसरे युगसे सातवें युग तक वह उन पर घूमता हुआ ही तीन तीन कदम और चलता है। इसी प्रकार सात नम्बर तकके स्तम्भोंपर चढ़ता-उतरता हुआ वह व्यक्ति पृथ्वीके मानदण्डकी तरह खड़े हुए आठवें स्तंभ पर उछल जाता है। इस स्तंभके ऊपर बालसे बंधी हुई एक कौड़ी लटकती रहती है और उसके नीचे सफेद धुरवाला एक अन्य चक्र घूमता रहता है। वेध करने वाला व्यक्ति अपने घूमते हुए चक्र पर आरूढ़ होकर पूर्वोक्त क्रमसे (पहले सात कदम और इसके बाद तीन तीन कदम) सात युगों पर चलता है। इसके पश्चात् वह लक्ष्य बाँधकर कौड़ीके उस बालका वेध करता है। विद्वानोंने इस प्रकारके वेधको ही चन्द्रक (कौड़ी का) वेध बतलाया है। अन्य ग्रन्थोंमें भी इस चन्द्रकवेधका उल्लेख पाया जाता है। अस्तु,

राजकुमार अर्ककीर्ति भी अपने मित्र मेघसेनके साथ वहां

आया हुआ था और बड़े ही कौतुकके साथ उस दृश्यको देख रहा था। वहीं पर बैठे हुए एक सज्जनने उससे कहा कि यदि तुम्हारा धनुर्वेदमें सुन्दर अभ्यास हो तो तुम ही चन्द्रकवेधका भेदन करो ना? यह सुनते ही वह तुरन्त तैयार हो गया और उसने धनुषसे छोड़े गये बाणसे चन्द्रकवेधका भेदन कर दिया। चन्द्रकवेधका भेदन करके उसे बड़ा ही आनन्द हुआ। उसने विमलवाहनके द्वारा प्रार्थना पूर्वक दी गयी जयमती आदि आठ कन्याओंके साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार अर्ककीर्ति रूप, कान्ति और विभूतिमें देवियोंके समान सुन्दर इन कन्याओंके साथ भोगोंको भोगता हुआ वीतशोकपुरमें ही रहने लगा।

एक समयकी बात है। अर्ककीर्तिकुमारने उपवास किया, जिन भगवान्‌की पूजा की और रातके समय वह जिनमन्दिरमें ही सो गया। इतनेमें चित्रलेखा विद्याधरीने सोये हुए अर्ककीर्ति को देखा और वह देखते ही इसके अतिशय रमणीय रूप पर मोहित हो गयी और इसे उठा कर वेगसे आकाशमार्गसे चल पड़ी। उसने विजयार्ध पर्वतपर ले जाकर सुखपूर्वक सोये हुए अर्ककीर्तिकुमारको सिद्धकूट जिनालयमें छोड़ दिया।

सवेरे ज्यों ही अर्ककीर्तिकुमारकी निद्रा भंग हुई, वह उठा और उसने अपनेको विजयार्ध पर्वतके जिनमन्दिरमें पाया। वह ज्यों ही इस मन्दिरके गर्भालयमें पहुंचा त्यों ही इसके वज्रमय किवाड़ तुरन्त ही खुल गये। इसने उस मन्दिरमें विराजमान जिन भगवान्‌की प्रतिमाकी भक्तिपूर्वक स्तुति की और वह मन्दिरके मण्डपमें आ बैठा।

जब उस मन्दिरकी रक्षा करने वाले विकटदन्त विद्याधरने यह घटना देखी तो वह तुरन्त ही अर्ककीर्तिकुमारके पास आया और बड़े ही विनयके साथ कहने लगा—हे कुमार! तुम

जिस निमित्तसे एक विद्याधरीके द्वारा यहाँ लाये गये हो। मैं उसका कारण बतलाता हूँ तुम एकचित्त हो कर सुनो।

"इसी विजयार्ध पर्वत पर अभ्रपुर नामक विशाल नगर है। उसमें पवनवेग नामका विद्याधर रहता है और उसकी पत्नीका नाम गगनवल्लभा है। इन दोनोंके एक वीतशोका नामकी पुत्री है। वीतशोकाके नेत्र नील कमलकी तरह मनोहर हैं, ओठ प्रवालकी तरह लाल हैं, वह सदा ही प्रसन्न रहा करती है और सम्पूर्ण कलाओंमें पारंगत है।

"एक बार एक निमित्तज्ञसे महाराज पवनवेगने पूछा कि हमारी इस कन्याका पति कौन होगा तो उसने कहा कि जिसके आने पर सिद्धकूट जिनालयके वज्रमयी किवाड़ खुल जावेंगे, वह गुणवान् इस सर्वलक्षण सम्पन्ना और अतिशय रूपवती कन्याका पति होगा। राजाने निमित्तज्ञके इस वचनको सत्य मान मुझे यहां भेजा। कुमार, इस समय निमित्तज्ञकी वह बात सत्य प्रमाणित हुई है। इसलिए आप उठिये और कृपापूर्वक मेरे साथ पवनवेगके घर चलिए।

विद्याधरकी बात सुन कर अर्ककीर्तिको इतना आनन्द हुआ कि उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आये और वह शीघ्र ही विद्याधरके साथ अभ्रपुरके लिए चल दिया। विद्याधर अर्ककीर्तिको लेकर अभ्रपुर पहुंचा और उसे अनेक जातिके फलोंसे सुगन्धित उद्यानमें बिठाकर अपने स्वामीके पास जा निवेदन किया–राजन्, मैं आपकी कन्याके पतिको ले आया हूँ। वह बहुत ही रूपवान् है और मैं उसे अभी नगरके उद्यानमें बिठा कर ही यहां आ रहा हूं।

विद्याधरकी बात सुनकर पवनवेगके मनको बड़ा संतोष हुआ। उसने विकटदन्त विद्याधरको खूब इनाम दिया तथा उसका बड़ा सन्मान किया। इसके पश्चात् वह चतुरङ्ग सेनाके साथ अर्ककीर्तिको लेने पहुँचा और अर्ककीर्तिने माङ्गलिक

गाजे-बाजेके साथ श्वसुरके घरमें प्रवेश किया । इसके पश्चात् उसने पवनवेगके द्वारा दी गयी उसकी वीतशोका कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लिया । अर्ककीर्तिकुमारने इकतीस कन्याओंके साथ और विवाह किया और इस तरह विद्याधरोंकी सम्पत्तिका भोग करता हुआ वह वहाँ पांच वर्ष तक रहा ।

एक दिन अर्ककीर्तिकुमारको अपने घरकी याद आयी । वह अभ्रपुरसे चल दिया और अञ्जनगिरि नामके नगरमें जा पहुंचा । जैसे ही वह इस नगरके निकट पहुंचा, उसे विशाल जन-समुदाय और दिव्य विमान दिखलायी दिये और वह एक क्षणके लिए वहीं पर ठहर गया ।

इस नगरमें महान् बलवानोंके बलको भी चूर करने वाला प्रभञ्जन नामका राजा रहता था । प्रभञ्जनकी पत्नीका नाम नीलाञ्जना था जो बड़ी ही सुलक्षणा थी । इन दोनोंके आठ कन्याएं थीं । ये सभी कन्याएं महान् रूपवती थीं । इनके दाँत मोतीके समान स्वच्छ-सुन्दर थे और अवस्थानुसार ये युवती हो चली थीं । इनमें से पहिलीका नाम कनकमदना था, दूसरीका नाम विपुला था, तीसरीका नाम वेगवती था, चौथीका नाम कनकमाला था, पाँचवींका नाम विद्युतप्रभा था, छटवींका नाम प्रभा था, सातवींका नाम जयमती था और आठवींका नाम सुकान्ता था ।

अर्ककीर्ति कुमार भी-जन-समूहके साथ राजाके उद्यानकी ओर चल दिया और वहांसे लौट कर नगरमें जाने लगा । इसी बीच अञ्जनगिरि नामके सबल राज-हाथीने अपने बाँधनेके खंभेको उखाड़ डाला, महावतको भी मार डाला । और वह उन्मत्त होकर जन-समूहको मारनेके लिए तैयार हुआ । यह देख कर अर्ककीर्ति कुमार ने कन्याओंको अपने पीछे करके आगे बढ़ कर हाथीको रोक दिया । वह शीघ्र ही उछला और हाथीके दांतों पर अपने पैर जमाकर उस पर चढ़ गया और

उसके दोनों गण्डस्थलोंमें जोरके मुक्के लगाकर उसने हाथी को वसमें कर लिया। और उस पर चढ़ कर सहर्ष नगरमें प्रवेश किया। राजा और उसके परिजन बड़े ही आश्चर्यके साथ इस अपरिचित तेजस्वी कुमारको देख रहे थे। उसने निमित्तज्ञके कथनानुसार उसके साथ अपनी आठों कन्याओंका विधिवत् विवाह कर दिया ।

अर्ककीर्तिकुमार इन कन्याओंके साथ भोग-विलास करता हुआ कुछ दिन तक वीतशोकपुरमें ही ठहरा। फिर वह अपने मित्र मेघसेनके साथ पुण्डरीकिणी नगरीमें आ पहुंचा।

यहाँ आकर दोनों मित्र नगर-द्वारके बाहर ठहर गये और नगरमें ऊंट तथा खच्चरोंपर वर्तन भर कर बर्तनोंका, कभी सुगन्धित इत्र आदि पदार्थोंका, कभी ताम्बूल लगाने और बेचने का और कभी रत्नोंके क्रय-विक्रयका व्यापार करने लगे। एक दिन अर्ककीर्तिने वेश्याका रूप बनाकर पिताके आगे लोगोंके मनको आश्चर्यमें डालने वाला नृत्य भी किया। इस प्रकारसे मनस्वियोंके मनको आश्चर्यमें डालने वाले विविध कौतुकपूर्ण कार्योंको करते हुए अर्ककीर्ति अपने कला कौशलका प्रकाश करने लगा और उसी स्थान पर ठहरा रहा।

एक दिनकी बात है। अर्ककीर्तिने अपने पिताके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया। उसने एक विशाल चतुरङ्ग सेना तैयार की और राजाकी समस्त गायोंको घेर लिया।

जब राजाको मालूम हुआ कि उसकी समस्त गायें किसी विपक्षीने घेर ली हैं और वह सरलतासे उन्हें छोड़ना भी नहीं चाहता है, तो उसे बड़ा क्रोध आया और वह इससे युद्ध करनेके लिए अपने नगरसे चल दिया। दोनों ओरसे युद्ध छिड़ गया। घोड़े घोड़ोंसे भिड़ गये। हाथी हाथियोंसे टक्कर लेने लगे, पदाति पदातियोंसे लड़ने लगे, रथ रथोंका सामना करने लगे। एक हाथीने दूसरे हाथीको मार दिया। घोड़े-

ने दूसरे घोड़ेको खतम कर दिया। पदातिने दूसरे पदातिको मार डाला और एक रथने दूसरे रथको चूर-चूर कर दिया। सुर और असुर सब लोग यह युद्ध देखने आ गये और इसमें होने वाले महान् जन-संहारको देखकर भयभीत होने लगे। इतनेमें ही अर्ककीर्तिने अपना धनुष खींचा और अपने नामसे अङ्कित वाणको तुरन्त ही अपने पिताकी ओर छोड़ा। अर्ककीर्तिके द्वारा छोड़ा गया यह महान् वाण बड़ी ही मन्द-मन्द गति से चलकर उसके पिताकी गोदमें जा गिरा।

जब राजाने अपनी गोदमें आये हुए इस वाणको देखा और उसपर अपने चिरञ्जीव पुत्र अर्ककीर्तिका नाम अङ्कित पाया तो राजाका हृदय आनन्दसे भर आया। दोनों अपने अपने वाहनोंसे उतर पड़े। युद्ध बन्द कर दिया गया। पिता–पुत्र दोनों ही सर्वाङ्गीण आनन्दके साथ सामने आये और अत्यन्त स्निग्ध हृदयके साथ प्रगाढ़ आलिङ्गन किया। दोनोंने आपसकी कुशल–क्षेम पूछी और सानन्द राज भवन-में आ पहुँचे।

महाराज विमलकीर्तिने अपने पुत्रके आगमनके हर्ष में इच्छानुसार दान दिया। इसके पश्चात् उसने अपने विजयी महामना अर्ककीर्तिकुमारके लिए समस्त राजाओंके साक्ष्यमें अपनी सम्पूर्ण राज्य-लक्ष्मी समर्पित कर दी। और समस्त वाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहको छोड़कर श्रीधर मुनिराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

विमलकीर्तिने अपने जीवनमें अत्यन्त कठिन तप करके समस्त कर्मोंका नाश किया और अन्तमें निर्वाणको प्राप्त किया।

अर्ककीर्तिने क्रमसे सम्पूर्ण चक्रवर्तीकी विभूतिको प्राप्त किया और आनन्दसे विस्तृत साम्राज्यका संचालन करने लगा।

एक दिन की बात है। अर्ककीर्ति महाराज हिमालयके शिखरोंकी तरह शुभ्र और विचित्र शिखर वाले राज-भवनके ऊपर बैठा हुआ था। उस समय इसने एक सुन्दर मेघके दर्शन किये और ज्यों ही उसे चाकसे भूमिपर चित्रित करनेको तैयार हुआ तब तक न मालूम वह कहाँ विलीन हो गया। यह देखकर अर्ककीर्तिको बड़ा वैराग्य हुआ। उसने यशोमतीके ज्येष्ठ पुत्र विमलकीर्तिको जो सर्वगुण सम्पन्न और राज्य-संचालनके योग्य था, बुलाया और समस्त सामन्तों तथा मन्त्रियोंके सामने अपना सम्पूर्ण महान् साम्राज्य-पद समर्पित कर दिया। इसके पश्चात् उसने समस्त बन्धु बान्धवोंसे पूछा और उत्कट वैराग्यसे प्रेरित होकर शीलगुप्त मुनिराजके निकट दीक्षा ले ली। उसने इतनी उग्र तपस्या की, जो साधारण जनके लिए अत्यन्त कठिन हो सकती है। जब आयुका केवल एक महीना ही शेष रहा, तव उसने सल्लेखना ले ली। चार प्रकारकी आराधनाओंका विधिवत् आराधन किया और पवित्र भावोंके साथ शरीर छोड़ा तथा अच्युत स्वर्गमें, बाईस सागरकी आयुवाला देव हो गया।

इधर पूर्वोक्त पूतिगन्धाने भी श्रावकके व्रतोंका पालन करके तथा रोहिणी व्रतको स्वीकार करके समाधिपूर्वक मरण किया और अच्युत स्वर्गमें जन्म लिया तथा पन्द्रह पल्य प्रमाण आयुको लेकर इसी पूर्वभवके अर्ककीर्तिके जीव तथा वर्तमानमें अच्युत स्वर्गके देवकी महादेवी हो गयी।

अशोक, तुमने इस देवीके साथ मन वांछित भोग भोगे और जब तुम वहाँसे च्युत हुए तो यह जन्म पाया। और पहले भवकी पूतिगन्धा, जो स्वर्गमें तुम्हारी प्रिय महादेवी थी, आयुके समाप्त होने पर वहाँसे च्युत होकर भूतल पर आयी। और वह अङ्गदेशकी चम्पा नगरीके मघवा राजाकी श्रीमती पत्नीके रोहिणी नामकी कन्या हुई, जो

तुम्हारे पास बैठी ही है। यही फिरसे तुम्हारी प्राण-प्रिया महादेवी होगयी है।"

अशोकने चारण ऋद्धिधारी रूपकुम्भ मुनिकी बात सुनी और बोला—महाराज! अब आप कृपा कर मेरे पुत्रोंके तथा पुत्रियोंके भवान्तर बतलाइए।

रूपकुंभ मुनिराज कहने लगे :—

"जम्बूदीपके भरतक्षेत्रमें शूरसेन नामका देश है। इस देशकी उत्तर मथुरामें श्रीधर नामका राजा रहता था। इसकी महादेवीका नाम विमला था। इन दोनोंके एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम कमला था। इस राजाके अग्निशर्मा नामका एक पुरोहित ब्राह्मण था, जो दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुआ था। उसकी पत्नीका नाम तिलका था। दोनोंमें बड़ा ही हार्दिक अनुराग था। यथा समय इन दोनोंके सात पुत्र उत्पन्न हुए। पहलेका नाम अग्निभूति था, दूसरेका नाम श्रीभूति था, तीसरेका नाम वायुभूति था, चौथेका नाम विशाखभूति था, पाँचवेंका नाम विश्वभूति था, छठवेंका नाम महाभूति था, और सातवेंका नाम सुभूति था। जैसे ही वे बड़े हुए, वेद और स्मृति शास्त्रके तथा अन्य अनेक शास्त्रोंके पारंगत विद्वान् होगये। परन्तु सबके सब दरिद्र थे अतः एक दिन वे सब पाटलिपुत्र की ओर चल दिये। इस नगरमें सुप्रतिष्ठ नामका राजा रहता था, जिसकी पत्नीका नाम स्वरूपा था। इन दोनोंके महान् बलवान सिंहरथ नामका पुत्र था।

इसी नगरमें विगतशोक नामका दूसरा राजा रहता था। विगतशोककी पत्नीका नाम रूपश्री था और दोनोंके एक पुत्री थी, जिसका नाम कमला था। कमलाके माता पिताने सिंहरथ के साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया।

जब उन ब्राह्मणोंने इन दोनोंके विवाहको देखा तो वे सोचने लगे—देखो, दुःख है कि जो हम जैसे पापियोंने पूर्व

जन्ममें समस्त दुःखोंको दूर करने वाला दया-प्रधान जैनधर्म अङ्गीकार नहीं किया ! धार्मिक पुरुषोंके ही वभूतियां होती हैं और महान् दुःख पापियोंको ही होता है ।

यह सोचकर वे सब यशोधर मुनिराजके पास पहुंचे और बड़ी भक्तिके साथ उनसे धर्मोपदेश सुनानेकी प्रार्थना करने लगे ।

जब यशोधर मुनिराजने इन लोगोंकी प्रार्थना सुनी तो वे सातों ही भाइयोंको निम्न प्रकारसे धर्मोपदेश करने लगे— "ब्राह्मणो, जो मनुष्य मानव जन्म प्राप्त करके भी धर्म नहीं करता है, वह निधिको सामने देखकर भी आँखोंसे अन्धा बन जाता है। उत्तम कुल और महती सम्पत्ति धर्मसे ही मिलती है। धर्मसे ही धनकी प्राप्ति होती है और धर्मसे ही मनुष्यको यश मिलता है। संसारमें धर्म ही वशीकरण है और धर्म ही सर्वोत्तम चिन्तामणि है। धर्म ही धनकी पवित्र धारा है और धर्म ही सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करने वाली कामधेनु है। यशोधर महाराज कहते गये—ब्राह्मणो, हम धर्मके सम्बन्धमें अधिक क्या कहें ? संक्षेपमें, संसारमें जितने मन और इन्द्रियोंके प्रिय और आकर्षक पदार्थ मिलते हैं, वह सब धर्मका माहात्म्य है।"

जब ब्राह्मणोंने मुनिराजसे धर्मका फल सुख प्राप्ति और अधर्मका फल दुःख प्राप्ति सुना तो वे सबके सब संसारसे बड़े ही उदास और विरक्त हुए और यशोधर मुनिराजके पास दीक्षित हो गये। अपने जीवनमें इन सबने बड़ा कठिन तप किया और समाधि पूर्वक मरण करके सौधर्म स्वर्गमें महर्द्धिक देव हो गये। वे लोग सौधर्म स्वर्गमें दो सागर तक सुख भोगते रहे और जब स्वर्गसे च्युत हुए तो रोहिणीके वीतशोक आदि नामके पुत्र हुए।

मुनिराज, अशोक महाराजसे कहने लगे—राजन् यह तुम्हारा अत्यन्त सौभाग्यशाली लोकपाल कुमार भी पूर्वजन्ममें भलु क्षुल्लक था; परन्तु उसने उस समय पिहितास्रव नामके मुनिराजके निकट श्रावकोंका उत्तम धर्म और सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसका ज्ञान निर्मल हो गया और वह आकाशगामिनी विद्यासे समस्त कर्मभूमियोंके कृत्रिमाकृत्रिम जिन चैत्यालयोंकी भक्तिके साथ तीनों सन्ध्याओंके समय, पूजा करने लगा।

इस प्रकार जिनभक्ति परायण क्षुल्लकने आयुके अन्तमें समाधिपूर्वक मरण किया और वह देव तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मुखरित सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हो गया। वहाँ इसने पच्चीस पल्य प्रमाण दिव्य सुखको भोगा और जब वहाँसे च्युत हुआ तो लोकपाल नामका रोहिणीका पुत्र हो गया।

मुनिराज कहने लगे—राजन्! यह तो तुम्हारे पुत्रोंके पूर्वभवका वृत्तान्त है। अब मैं तुम्हारी पुत्रियोंके पूर्वजन्मके वृत्तान्तको सुनाता हूँ।

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें कच्छ नामका धन-धान्य और जन-समूहसे भरा हुआ देश है। इस देशके विजयार्धके दक्षिण भागमें अलका नामकी नगरी है। इसमें गरुड़सेन नामका राजा रहता था, जिसकी पत्नीका नाम कमला था। इन दोनोंके चार पुत्रियां थीं। चारों ही अतिशय रूपवती थीं, कमलके समान सुन्दर मुखवाली थीं और उनके शरीरकी आभा सोनेके समान थी। इन कन्याओंके नाम इस प्रकार थे—पहलीका नाम कमलश्री था, दूसरीका नाम कमलगन्धिनी था, तीसरीका नाम कमला था और चौथीका नाम विमलगन्धिनी था।

एक समयकी बात है। ये चारों ही रूपवती कन्याएँ बड़े ही आनन्दके साथ वृक्ष, पुष्प और फलसे सम्पन्न एक उद्यान-वनमें पहुंचीं। उन्होंने वहां एक सुव्रताचार्य नामके चारण ऋषिको देखा। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और बड़े ही

कौतुकके साथ वे उपवासका माहात्म्य पूछने लगीं–'भगवन्, कृपा कर यह बतलाइये कि यह लोकोपवास क्या चीज है ?

सुव्रताचार्यने इन कन्याओंकी धार्मिक बात सुनी तो वे उन्हें इस प्रकारसे उपवासका लक्षण बतलाने लगे–पुत्रियों, आगमके पाठी जिन भगवान्ने चार प्रकारका आहार बतलाया है–अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य। बल और कान्ति प्रदान करने वाले इस चार प्रकारके आहारका मन, वचन और काय-की शुद्धिपूर्वक जिनोपदिष्ट मुनिमार्गी साधुके द्वारा जो परि-त्याग किया जाता है, वह उपवास है। किन्तु लोकमें समस्त आहार लेते रहनेपर भी जो उपवास माना जाता है, वह सच्चा उपवास नहीं है। परन्तु समझमें नहीं आता–उन शास्त्रोंके पाठक समस्त प्रकारके आहार लेते रहने पर भी उसे उपवास कैसे कहते हैं ? उनका कहना है–फल, मूलकन्द, दूध, पानी, हवन, ब्राह्मणवाचिक (ब्राह्मण का वचन), गरु-वचन और औषध–ये प्राणियोंके आठ धार्मिक कार्य हैं।

कहा भी है–

"अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं पयः फलम्।
हविर्ब्राह्मणकामश्च गुरोर्वचनमौषधम् ॥"

अर्थात् इन आठ चीजोंसे पाप नष्ट होते हैं–जल, मूल-कन्द, दूध, फल, हवनद्रव्य, ब्राह्मणकी भावना, गुरुका वचन और औषध।

"पुत्रियों, संसारमें इन आठ चीजोंके सेवन करनेसे कभी भी उपवास नहीं हो सकता है। और न धर्मात्मा प्राणियोंको उसका फल ही प्राप्त होता है। उपवास तो तभी कहलाता है, जब पवित्र मुनि-मार्गसे समस्त प्रकारके आहारका परित्याग किया जावे। पुत्रियों, मैं तुम्हें शुद्ध मनसे किये गये उपवासके माहात्म्यको बतलाता हूँ। उसे भाव-पूर्वक सुनो। अज्ञानी

जीवके द्वारा जो महान् भयंकर पाप किया जाता है, वह सब उपवासके द्वारा आगमें डाले गये इंधनके समान नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार धूलि और मैलसे जिसका शरीर मलिन हो वह जलसे स्नान करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार उपवास रूपी जलसे आत्मा भी निर्मल हो जाता है। जिस प्रकार लोहेको खूब गरम करनेसे उसका सारा मैल निकल जाता है, उसी प्रकार व्रत, उपवासरूपी जलसे पापरूपी मल भी दूर कर दिया जाता है। और जिस प्रकार जलका आगमन रुकने पर सूर्य धीरे धीरे तालाबको सुखा डालता है, उसी प्रकार मनुष्य भी इन्द्रियोंको वशमें करके अपने पापोंका शोधन कर सकता है।

पुत्रियों, समस्त शास्त्रोंमें लिखा है कि संसारमें अनशनसे बढ़ कर उत्तम तप नहीं है। इसको परम तप इसलिए कहा गया है कि यह समस्त पापोंके क्षयका प्रधान कारण है। इसके सिवाय उपवाससे देव, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, साँप और राक्षस-जैसे भयंकर जन्तु भी तत्काल वशमें हो जाते हैं। तथा प्रत्येक प्रकारकी विद्याएँ, मन्त्र, औषधियां और वशमें करने वाले सब प्रकारके योग—ये सब उपवाससे सिद्ध हो जाते हैं। यहाँ तक कि व्यभिचारी मनुष्य भी उपवासके प्रभावसे प्रभावित किये जा सकते हैं।"

उपवासका संक्षेपसे माहात्म्य बतला कर सुव्रताचार्य मौन हो गये। तब राजकन्याओंने उनसे पंचमीके उपवासकी विधि पूंछी।

कन्याओंका प्रश्न सुन कर योगिराज कहने लगे—"पुत्रियों, जिनेन्द्र भगवान्ने दो प्रकारकी पंचमी बतलायी है—एक कृष्णा पंचमी और दूसरी शुक्ला पंचमी। यदि कोई भव्य कृष्णा पंचमी-का उपवास करता है तो उसे इस विधानमें पांच वर्ष और पांच महीनेका समय अपेक्षित होता है। यह सुनिश्चित है कि

इस कृष्णा पंचमीके माहात्म्यसे जैन शासनका श्रद्धालु जीव उस समाधिको प्राप्त करता है, जिसके प्रतापसे भव्य जीव दो तीन भव धारण करके ही अविनश्वर सिद्धि—मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है। इतना ही नहीं, जो जिन भक्ति परायण और विशुद्ध हृदय एक जन्ममें भी समाधि पूर्वक मरण करता है वह क्रोध और मानरूपी महान् मीनपूर्ण और माया तथा लोभकी तरंगोंसे युक्त संसार समुद्रमें सात आठ भवोंसे अधिक गोते नहीं लगाता है। आगममें कहा भी है—

"एकम्हि भवग्गहणे समाहिमरणेण कुणइ जो कालं।
ण हु सो हिंडइ बहुसो सत्तट्ठभवे पमोत्तूण ॥"

अर्थात्—जो व्यक्ति एक ही जन्ममें समाधिपूर्वक मरण करता है, संसारमें वह सात—आठ भवसे अधिक नहीं घूमता है।

सुव्रताचार्य कहने लगे—पुत्रियों, जिसे भव्यजन शुक्ल पंचमीमें करते हैं, वही श्रीपञ्चमी नामकी प्रथम उपवास विधि है। यह महान् विधि भी पांच वर्ष और पांच महीने तक उपवाससे ही पूर्ण होती है। इसके पश्चात् पुष्प, धूप और अक्षत आदि अष्ट द्रव्यसे जिनेन्द्र भगवानका पूजन करना चाहिए और घंटा, चंदोबा तथा झंडियोंसे जिन-मन्दिरको सजाना चाहिए। इस दिन पञ्चमी विधानकी पांच पुस्तकें लिख कर साधुके लिए भक्ति पूर्वक दानमें देनी चाहिए और विधिपूर्वक औषधिदान करना चाहिए। इसके सिवाय मुमुक्षुओंका कर्त्तव्य है कि वे इस दिन आहार, ज्ञान, औषध और अभय दानके साथ आर्यिकाओंको वस्त्र दान भी दें। इस विधिके विधानसे भव्यजीव पञ्च कल्याणकोंको प्राप्त करता है और अक्षय निर्वाण-पद भी।"

गरुडसेनकी पुत्रियोंने आचार्य महाराजकी यह बात सुनी तो उनका चित्त बड़ा ही पुलकित हुआ। उन्होंने मुनिराजकी

वन्दना की और जैनधर्ममें आसक्ति भाव होनेसे पञ्चमी विधान-के पालन करनेकी प्रतिज्ञा भी ले ली। इस प्रकार पञ्चमी विधानको लेकर इन राज-पुत्रियोंका मन संतोषसे भर गया और मुनिराजके चरण कमलको नमस्कार करके वे सब अपने घर चली गयीं।

ये चारों राज-कन्याएं मुनिराजके पाससे पञ्चमी विधान के पालनकी प्रतिज्ञा करके अपने राज-भवनकी छतपर आकर बैठी हुईं थीं कि इतनेमें शीघ्र ही उनके ऊपर गाज (वज्र) गिर पड़ा। गाज गिरनेसे उनकी तत्काल ही मृत्यु हो गयी और वे धर्मके प्रभाव से सौधर्म स्वर्गमें जा कर मनोरम देवियां हो गयीं। एक उपवासके पुण्य से ही उन्हें किन्नरियोंके गानसे मनोरम स्वर्गमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ये चारों ही देवियां पाँच पल्य-प्रमाण समय तक सौधर्म स्वर्गमें देवताओंके साथ दिव्य सुखका अनुभव करती रहीं और जब इनकी आयुका अन्त आया तो ये वहाँसे च्युत हो कर रोहिणीके गर्भमें आयीं और राजन्, आपकी वसुन्धरा आदि नामकी कन्याएं हो गयीं।

राजा अशोक रूप्यकुम्भ मुनिराजसे अपने पुत्र तथा पुत्रियों-के पूर्व भवान्तर सुन कर बड़े ही संतुष्ट हुए और रोहिणी भी प्रसन्न हुईं। अन्य श्रोताओंने भी इन लोगोंके भवान्तर सुने तो कोई सम्यक् श्रद्धानी हो गये, कोई सच्चे श्रावक बन गये और कुछ समस्त आरंभ-परिग्रह छोड़कर जैन यति हो गये।

इस बीच ही बसुमती नामकी कन्याने मुनिराजको प्रणाम किया। वह बड़ी ही प्रसन्न थीं और उसका मन विस्मयसे भरा था। वह मुनिराजसे कहने लगी—भगवान्, आप मुझे बतलाइये कि मौनव्रतका क्या स्वरूप है और उसके उद्यापनकी कौनसी शास्त्रीय विधि है? सारी चीज आप स्पष्टतासे समझाइये।

रूप्यकुम्भ मुनिराजने जब इसकी इस प्रकार धर्मवर्द्धक बात सुनी तो वे इससे कहने लगे—"वत्से, भोजन करते समय जब तक सम्पूर्ण भोजन न कर लिया जाय, तब तक कुछ भी बात न करके भाव-पूर्वक उत्तम मौनका अवलम्बन करना चाहिए। इस प्रकार वर्ष या महीनेके प्रमाणके अनुसार इच्छाओंको रोकनेसे मौनव्रतका पालन होता है और यह विधि समाप्त हुई कहलाती है। यह मौन समयकी मर्यादाके अनुसार ही समाप्त हुआ कहलाता है। अब मैं तुम्हें संक्षेपमें इस व्रतके उद्यापनकी विधि बतलाता हूँ। वह इस प्रकार है—

जब मौन व्रत समाप्त हो जाय तो पुष्प, धूप, आदि द्रव्यों-से श्रीमहावीर भगवान्‌की महामह पूजा करनी चाहिए। फिर इस व्रतके आचरण करने वालोंका यह कर्त्तव्य है कि वे कर्मों-के क्षयके लिए बड़ी ही भक्तिके साथ चार प्रकारके संघ-के लिए यथायोग्य आहार-वस्त्र आदिका दान करें। जैन मन्दिरमें चंदोबा देने चाहिएँ और गंभीर टंकार करने वाले दिव्य घंटे भी दान करने चाहिएँ। इस प्रकारके उद्यापनसे इस व्रतका विधान समाप्त कहलाता है। जो प्राणी इस मौन व्रतका पालन करते हैं और उसका विधिवत् उद्यापन करते हैं वे मर कर स्वर्गमें देव होते हैं। उन्हें अनेक प्रकारके दिव्य भोग प्राप्त होते हैं और उनका कण्ठ बड़ा ही मधुर होता है। इतना ही नहीं, इस मौन व्रतके फलसे वे जीव स्वर्गमें स्वर्गीय सुख तो भोगते ही हैं, परन्तु जब वहाँसे च्युत हो कर पृथ्वीपर अवतीर्ण होते हैं तो चक्रवर्ती आदिके भोगोंका फिरसे अनुभव करते हैं। वे चिरकाल तक महीतलके मनवांछित भोगोंको भोगते हैं और फिर जैनेन्द्री दीक्षा लेकर निष्कलङ्क बन जाते हैं तथा मोक्ष-लाभ करते हैं।

वत्से ! अब मैं तुम्हें मौनव्रतका फल बतलाता हूँ, सो सुनो। मौनव्रतके कारण मनुष्यकी वाणी कानोंको सुखद मालूम

देती है, मनोहर लगती है। मनुष्य उसका विश्वास करते हैं और उसे प्रमाण भूत मान कर अङ्गीकार करते हैं। सारा संसार मौनव्रतीकी आज्ञा को अक्षरशः उस प्रकार मानता है, जिस प्रकार एक देवकी आज्ञा शिरोधार्य की जाती है। यह भी मौनका एक उत्तम फल है। इसके सिवाय संसारमें जो चिरकाल तक मौनका आश्रय लेता है, वह जनताके प्रत्येक प्रकारके भय रोष और विषको दूर कर देता है। मौनके कारण मनुष्यका मुख कमल, मीठे शब्दोंसे परिपूर्ण एवं मनोहर हो जाता है और वह तथा उसका भाषण लोगोंको रुचिकर होता है।

इतना ही नहीं जो दीर्घकाल तक मौनव्रतका आचरण करता है उसको दुःसाध्य विद्याएँ भी सिद्ध हो जाती हैं और समस्त जनताको यथेच्छ फल देने लग जाती हैं। इसके सिवाय जो कार्य अत्यन्त असाध्य होता है अथवा जिस कार्यकी सिद्धिमें सन्देह रहता है, वह कार्य मौनव्रतीके एक वाक्यसे ही सिद्ध हो जाता है। समस्त मुनिराज मौनसे ही कर्मोंको नाश करने वाले ध्यानका चिन्तन करते हैं, इसलिए मौन ही समस्त मनोरथोंके सिद्ध करनेका प्रमुख साधन है। कोई मौनव्रती अणुव्रतोंका पालन करता है, कोई गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंका पालन करता है और इस प्रकार सिद्ध परमेष्ठीका भक्त बनकर परम्परासे मोक्ष प्राप्त कर लेता है।"

बसुमतीने रूप्यकुम्भ मुनिराजके श्रीमुखसे इस प्रकार मौनव्रतका माहात्म्य सुना और उन्हें शिरसा तीन बार नमस्कार किया। इसके पश्चात् उसने मुनिराजके सामने मौनव्रतकी प्रतिज्ञा ले ली।

महाराज अशोक आदि भी इन मुनिराजसे पूर्वभव और धर्मोपदेश सुन कर और इन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार करके

हस्तिनागपुर चले गये। महाराज अशोक और रोहिणीके पुत्र भी अपने प्रासादोंमें आ गये और वहाँ असीम भोगोंका अनुभव करते हुए आमोद-प्रमोदके साथ अपने दिन विताने लगे।

एक दिनकी बात है। महाराज अशोक और महारानी रोहिणी-दोनों ही स्नान करनेके पश्चात् सिंहासनपर एक साथ बैठे हुए थे कि इतनेमें रोहिणीने अशोक महाराजके कानके पासमें काशके फूलकी तरह चमकता हुआ एक सफेद बाल देखा। महारानी रोहिणीने अपने हाथसे इस बालको निकाल लिया और अशोकके कमल-कोशके समान सुन्दर हाथपर रख दिया।

महाराज अशोकने महादेवीके द्वारा दिये गये इस सफेद बालको देखा तो वह चिन्तामें पड़ गया। उसके मन-में तुरन्त वैराग्य भाव जाग्रत हो उठा और वह भोग तथा शरीर आदिकी निन्दा करने लगा।

इस बीच ही वनपाल महाराजके पास आया और निवेदन करने लगा —"राजन्, भगवान् वासुपुज्य अपने उद्यानमें आये हुए हैं।" ज्यों ही राजाने यह सुखद समाचार सुना, वह तुरन्त ही सिंहासनसे उठा। उसे बड़ा हर्ष हुआ और उस दिशामें सात कदम आगे जा कर उसने भगवान् वासुपुज्य को भावपूर्वक नमस्कार किया। तदनन्तर उसने वनपालको इनाम दिया और आनन्दके साथ सम्पूर्ण नगरमें मुनादी पिटाकर सम्पूर्ण जनताको भगवान् वासुपूज्यके समवसरणके आनेकी सूचना करवा दी।

अशोकने अपनी सम्पूर्ण राज्यश्री लोकपालकुमारके लिए दे दी और स्वयं महान् विभूतिसे सम्पन्न हो कर आदरके साथ उद्यानके लिए चल दिया। वह समवसरणमें पहुँचा और उसने भगवान्की तीन प्रदक्षिणाएं कीं तथा उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया, और भगवान्के निकट ही जैनी दीक्षा ले ली।

अशोक महाराज योगीश बन कर प्रखर प्रभा-पुञ्जसे चमकने लगे और वह उन वासुपुज्य भगवान्के गणधर हो गये, जिनकी इन्द्र तक स्तुति और विनुति किया करते हैं। तत्पश्चात् अशोकने चिरकाल तक बहुत ही उग्र तपस्या की और अन्तमें समस्त कर्मोंका नाश करके परमोत्तम निर्वाणको प्राप्त किया।

महारानी रोहिणीने भी समस्त परिग्रह छोड़ दिया और भगवान् वासुपूज्य जिनेन्द्रको नमस्कार करके सुमति नामकी आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली। रोहिणीने इतनी कठोर तपस्या की जिसे साधारण स्त्री नहीं कर सकती है और अन्तमें कर्मोंका उच्छेद करनेके लिए सल्लेखनाको भी विधिवत् अङ्गीकार किया। आयुके अन्तिम क्षण उसने समाधि पूर्वक विताये और मर कर वह अच्युत स्वर्गमें देव हो गयी।

रोहिणीने भावपूर्वक सिर्फ एक ही उपवास किया और उसके द्वारा इतना सुख प्राप्त किया जो जन साधारणके लिए बहुत ही दुर्लभ है।

इस प्रकार रोहिणी नक्षत्रमें किये गये उपवास-
के फलको बतलाने वाला अशोक और
रोहिणीका यह कथानक सम्पूर्ण हुआ।

---

५८. क्षीर कदम्बकी कथा

कुरुजाङ्गल देशमें हस्तिनागपुर नामका सुन्दर नगर था। इस नगरमें पाण्डु नामका राजा रहता था, जिसने अपनी कीर्तिसे आकाश तकको शुभ्र कर रक्खा था। पाण्डुकी दो पत्नियां थीं—एक कुन्ती और दूसरी माद्री। ये दोनों ही पत्नियां बड़ी ही कुशल थीं, रूपवती थीं, युवतीं और बहुत ही मनोहर थीं।

इनमेंसे कुन्तीके तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन। संसारमें इन तीनों पुत्रोंका खूब ही यश फैला और ये बहुत ही लोक-प्रिय हुए। माद्रीके भी दो पुत्र हुए—एक नकुल और दूसरा सहदेव। ये दोनों भाई भी समस्त बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करते थे, जन-प्रिय थे और कुलदीपक थे।

इसी नगरमें एक द्रोणाचार्य नामके धनुर्वेदके पारंगत ज्ञानी आचार्य रहते थे। द्रोणाचार्यने अनेक शस्त्र और शास्त्रोंका अभ्यास किया था और इन दोनों ही विद्याओंके पंडित इन्हें खूब ही मानते थे। द्रोणाचार्यकी पत्नीका नाम स्वस्तिमती था। वह द्रोणाचार्यको बहुत ही प्रिय थी। इन दोनोंके एक पुत्र था, जिसका नाम अश्वत्थामा था। अश्वत्थामा बड़ा ही विचारशील और लोक-प्रिय था।

द्रोणाचार्य विनय और आचारके जानकार अर्जुन आदि भाइयोंको धनुर्वेदका शिक्षण देते थे।

हस्तिनागपुरके निकट ही एक भीलोंकी भयानक नगरी थी। इस नगरीमें क्षीरकदम्ब नामका एक भील रहता था, जो धनुर्विद्यामें बहुत ही निष्णात था। क्षीरकदम्बने धनुर्वेद सीखनेके लिए द्रोणाचार्यकी प्रस्तरकी मूर्ति बनायी। उसे प्रति दिन नमस्कार करता, बड़ी भक्ति करता और इस प्रकार इस मूर्तिको ही द्रोणाचार्य समझ कर वह धनुर्वेदकी शिक्षा लेने लगा। और इस प्रकार एक दिन वह सम्पूर्ण धनुर्वेदका पारगामी विद्वान् हो गया।

एक दिनकी बात है। अर्जुन आदि तीनों भाई अपने अपने धनुष लिये शिकारके लिए पर्यटन कर रहे थे कि घूमते घूमते भीलोंकी इस नगरीमें आ पहुंचे। इसी समय क्षीरकदम्ब भी वनमें विचर रहा था और वह भी अपने हाथमें धनुष-बाण लिये हुए था। सो यह भी विचरता हुआ इन अर्जुन

आदि कुमारोंके करीब आ पहुंचा। इतनेमें बनमें शिकार खेलने वाले इन कुमारोंका कुत्ता बहुत ही जोरसे और बुरी तरहसे चिल्लाया। जैसे ही क्षीरकदम्बने इस कुत्तेका कर्णकटु चिल्लाना सुना, उसने तुरन्त एक शब्दवेधी वाण इसके मुँह पर चला दिया।

अर्जुन इसदृश्यको देख कर वड़ा विस्मित हुआ। वह सोचने लगा हमलोगोंके वीच तो और कोई ऐसा धनुर्वेद-विशारद है ही नहीं जो शव्दवेधी बाणका प्रयोग जानता हो। और इस कुत्तेके मुंहपर शब्दवेधी बाण चलाने वाला यहाँ दिख भी नहीं रहा है। इतना सोच कर अर्जुन उस ओर चल दिया जिस ओरसे वह शब्दवेधी वाण आया था और कुछ दूर चलनेपर उसे धनुर्धारी क्षीरकदम्ब दिखलायी दिया। अर्जुन कुमारने जव अपने सामने इस महान् भयंकर और सुसज्जित व्यक्तिको देखा तो वह कुतूहलवश उससे पूछने लगा—भद्र! वतलाओ तो क्या शब्दविज्ञानके जानकार तुम्हींने इस कुत्तेके मुँह पर शव्दवेधी वाण चलाया है?

क्षीरकदम्बने ज्यों ही अर्जुनका यह प्रश्न सुना, वह बड़ी ही विनयसे कहने लगा—हाँ स्वामिन्, मैंने ही इस कुत्तेके मुंहपर शब्दवेधी वाणका प्रयोग किया है। अर्जुन क्षीरकदम्बसे फिर पूछने लगे—भद्र! तुम कौन हो और तुमने धनुर्वेदकी शिक्षा किस आचार्यसे ग्रहण की है? जव क्षीरकदम्बने देखा कि इस प्रश्नके साथ ही अर्जुन अपने मनकी उत्कट उत्सुकताके साथ उसके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा है तो वह कहने लगा—स्वामिन्! मेरा नाम क्षीरकदम्ब है और मैं भीलोंका सरदार हूँ। मैंने धनुर्वेदका सम्पूर्ण शिक्षण, शस्त्र और शास्त्रकी कलाओंमें निष्णात द्रोणाचार्यसे लिया है।

क्षीरकदम्वके उत्तरसे अर्जुनका कौतुक और भी वढ़ गया। वह कहने लगा—अच्छा भाई, धनुर्वेदका उपदेश करने वाले उन

द्रोणाचार्यको दिखा सकोगे क्या ? इस प्रश्नके बाद ही अर्जुनने क्षीरकदम्बकी परीक्षा की तो उसे शृङ्गिका, वसुनन्द, करवाली, चक्र और चित्रदण्ड नामके पांचों प्रकारके आयुधोंमें निष्णात पाया। इतना ही नहीं, अर्जुनने जब उसे चन्द्रकवेध आदि प्रयोगोंमें भी बहुत ही कुशल पाया तो उसके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और वह सोचने लगा—

आज यह किरात जातिका भील भूमण्डलपर अपने धनुर्वेदके विज्ञानमें द्रोणाचार्य और मुझसे भी बढ़ा-चढ़ा है। द्रोणाचार्यने जो सातिशय उपदेश मुझे एकान्तमें दिया और बड़े भारी यत्नके साथ दिया, वही उपदेश उन्होंने वनमें इस क्षीरकदम्बके लिए भी दिया। अर्जुन सोचते सोचते कहने लगा—अथवा ठीक है, जिनके मनमें विवेक जाग्रत नहीं होता है उन महात्माओंके स्वभावमें भी प्रायः इस प्रकारका वैपरीत्य देखनेको मिलता है। देखो ना, स्त्री खलके साथ क्रीडा करती है, मेघ पर्वतपर बरसता है, लक्ष्मी कंजूसका आश्रय लेती है और पंडितजन प्रायः दरिद्र पाये जाते हैं। कहा भी है—

"अपात्रे रमते नारी गिरौ वर्षति माधवः।
लुब्धमाश्रयते लक्ष्मीः प्राज्ञः प्रायेण निर्धनः॥"

अर्थात्—नारी अपात्रमें रमण करती है और बादल पर्वत पर बरसते हैं। लक्ष्मी लोभीके पास जाती है और पंडित प्रायः निर्धन होता है।

अर्जुनको यह विचार करते करते बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह तुरन्त हस्तिनागपुर आया और द्रोणाचार्यसे बड़ी विनयके साथ इस प्रकार निवेदन करने लगा—भगवन्, जिन विद्वानों-की कीर्ति सम्पूर्ण भुवनमें व्याप्त हो रही है, उन विद्वानोंको दिया गया आपका धनुर्वेदका उपदेश म्लेच्छके हाथमें चला गया है।

जब द्रोणाचार्यने अर्जुनकी यह बात सुनी तो वे कहने

लग—अर्जुन तुम यह कैसा समाचार सुना रहे हो। अरे वत्स, मैंने जो कुछ धनुर्वेदका उपदेश दिया है और जिसे दिया है वह आज भी ज्योंका त्यों और जहांका तहां है वह कभी भी म्लेच्छके हाथ नहीं लग सकता। अर्जुन द्रोणाचार्यसे कहने लगा-- नहीं महाराज, यह बात नहीं है। आपका उपदेश म्लेच्छ क्षीर-कदम्बके हाथ लग गया है।

ज्यों ही द्रोणाचार्यने गाण्डीवधारी अर्जुनकी यह बात सुनी वे तत्क्षण अर्जुनके साथ वृक्षोंसे सघन भीलोंकी नगरी-में जा पहुंचे। जब द्रोणाचार्यने क्षीरकदम्बको देखा तो उन्हें बहुत ही कुतूहल हुआ और वे कहने लगे—वत्स, बतलाओ तो तुमने यह धनुर्वेद किसके पास सीखा।

जब क्षीरकदम्बने द्रोणाचार्यका यह प्रश्न सुना तो वह बोला—भगवन्, मैंने धनुर्वेदकी यह शिक्षा द्रोणाचार्यके निकट सीखी है। द्रोणाचार्य सामने उपस्थित इस म्लेच्छसे पुनः कहने लगे—वत्स, क्या तुम द्रोणाचार्यको पहिचानते हो। यदि पहिचानते हो तो बतलाओ वह कौन हैं और कैसे हैं?

क्षीरकदम्ब द्रोणाचार्यका प्रश्न सुन कर कहने लगा—भगवन् मैं द्रोणाचार्यको खूब अच्छी तरहसे जानता हूँ और आपको भी अभी हाल दिखला सकता हूँ। इतना कह कर वह द्रोणाचार्य-को उस पाषाण प्रतिमाके निकट ले गया और कहने लगा महोदय, यही हमारे गुरु द्रोणाचार्य महाराज हैं।

क्षीरकदम्बकी बात सुन कर द्रोणाचार्य कहने लगे—वत्स, यह तो बतलाओ, तुमने इन मिट्टीके द्रोणाचार्यके पास धनुर्वेदकी शिक्षा किस प्रकार ली?

द्रोणाचार्यकी बात सुन कर क्षीरकदम्ब फिर कहने लगा—भगवन्, मैं आपको अपनी वह विधि बतलाता हूँ, जिसके कारण गुरु महाराज मेरे ऊपर प्रसन्न हुए और मैंने उनके निकट धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की। भगवन्, अपने गुरु महाराज

की पूजाके लिए सबसे पहले मैं फूल लाता था। फिर भक्तिसे उनकी तीन प्रदक्षिणा देता था और फूलोंसे भक्ति और श्रद्धा-के साथ उनके दोनों चरण कमलोंकी विधिवत् पूजा करता था। तत्पश्चात् मैं अपने हाथमें धनुष लेता और गुरु महाराज-से पूछता कि मैं किस प्रकार दृष्टि और मुष्टिकी सिद्धि करुं और किस प्रकार निशाना लगाऊँ। भगवन्, आप विश्वास कीजिए, वस्तुत: इन्हीं द्रोणाचार्यके उपदेश और विनयसे मैंने यह धनुर्वेदका विज्ञान प्राप्त किया है। ठीक ही है, विनय से क्या नहीं मिल सकता है। भक्तिसे गुरुजन संतुष्ट होते हैं। भक्तिसे देवता संतुष्ट होते हैं। भक्तिसे योगीजन प्रसन्न होते हैं। संसारमें वह कौनसा कार्य है, जो भक्तिसे साध्य न हो।

विशुद्ध हृदय द्रोणाचार्यने जब क्षीरकदम्वके मुखसे यह सब सार गर्भित वृत्तान्त सुना तो उनका मन सन्तोषसे भर गया और वह गाण्डीवधारी अर्जुनसे कहने लगे—देखो, इस क्षीरकदम्बने केवल गुरुभक्ति और विनयसे ही धनुर्वेदकी इतनी ऊंची शिक्षा ले ली है और तुमने भी गुरुभक्ति और विनयसे ही यह शिक्षा प्राप्त की है। द्रोणाचार्यने उसके सामने इतना कह कर क्षीरकदम्बको अपना नाम बतला दिया।

ज्यों हीं द्रोणाचार्यने क्षीरकदम्वको अपना नाम बतलाया वह वड़ी ही विनयके साथ पृथ्वीपर अपने घुटने टेक कर द्रोणाचार्यके चरणोंमें झुक गया। द्रोणाचार्य बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने धनुर्वेद विशारद क्षीरकदम्वसे गुरु दक्षिणा माँगी। गुरु-भक्ति परायण क्षीरकदम्बने भी तत्काल ही अपना दाहिना अंगूठा काट कर द्रोणाचार्यके लिए गुरुदक्षिणाके उपलक्ष्यमें दे दिया।

जिस प्रकार गुरु-भक्ति करने वाले म्लेच्छ क्षीरकदम्बको थोड़े हीसमयमें धनुर्वेदकी सिद्धि प्राप्त हो गयी उसी प्रकार

जो मुनि जिनेन्द्र और गुरुकी भक्ति करता है उसे भी निर्वाण-विद्या निश्चयसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार द्रोणाचार्यसे समन्वित क्षीरकदम्ब-
म्लेच्छेको धनुर्वेद विद्याकी प्राप्तिका
सूचक कथानक सम्पूर्ण हुआ।

---

५९. पद्मरथ राजाकी कथा

भरतक्षेत्रमें विजय नामका देश है। इस देशमें भूमितिलक नामका नगर था। इस नगरके राजाका नाम प्रजापाल था। प्रजापाल बड़े ही समुचित ढंगसे प्रजाका पालन करता था। इसकी पत्नीका नाम मनोरमा था, जो वास्तवमें बड़ी ही मनोरम थी।

प्रजापालके राज्यमें एक सेठ था, जिसका नाम सुन्दर था। सुन्दर सच्चा श्रावक था और अपने गुणोंके कारण वह भी लोक प्रिय था। इसकी पत्नीका नाम सुन्दरी था और सुन्दरी अपने गुणोंके कारण गुण सुन्दरी कहलाती थी। इन दोनोंके चित्त परस्परके प्रेमसे खूब ही सने हुए थे। दोनोंके काल क्रम-के अनुसार सात पुत्र उत्पन्न हुए। सातों ही पुत्र श्रावक धर्म-म दीक्षित हो गये। इनमें सबसे छोटे पुत्रका नाम धर्मान्तरि था। धर्मान्तरि बड़ा ही धर्मात्मा था और इसकी पत्नीका नाम प्रियदत्ता था।

धर्मान्तरिका एक घनिष्ठ मित्र था, जिसका नाम विश्वा-नल था। विश्वानल जातिका ब्राह्मण था, परन्तु उसका मन अत्यन्त चंचल रहता था और वह सदैव सप्त व्यसनमें तल्लीन रहता था। विश्वानलके संसर्गका प्रभाव धर्मान्तरिके

ऊपर भी पड़ा और वह भी धीरे धीरे व्यसनी बन गया। ठीक है, दुर्जनोंका संसर्ग ही ऐसा होता है कि वह सज्जनोंको भी दूषित कर डालता है।

विश्वानल और धर्मान्तरि–दोनोंने मिल कर नगरमें अनेक बार चोरी की और पकड़े गये, परन्तु सेठके लिहाजके कारण राजा इन दोनोंको छोड़ता ही गया।

एक दिनकी बात है। दुष्टबुद्धि धर्मान्तरि चोरी करने के लिए किसीके घरमें घुसा और सिपाहियोंके द्वारा पकड़ा गया। इस बार वह नगरसे निकाल दिया गया और बन्धु-बान्धवोंसे बिछुड़कर अपनी माता, पत्नी और मित्रके साथ हस्तिनागपुर आगया। हस्तिनागपुर आ कर दोनों ही यमदण्ड कोतवालके निकटवर्ती मकानमें रहने लगे और उसके बलसे ही चोरी करने लगे।

एक दिनकी बात है। धर्मान्तरि एक मुनिराजके निकट पहुँचा और उनसे कुछ दिन तकके लिए धीका नियम ले लिया और यह भी नियम लिया कि जब तक मैं सात कदम पीछे न हट लूँगा किसी भी प्राणीका वध नहीं करूँगा।

एक दिन ये दोनों साथी चोरी करनेके लिए निकले। परन्तु एक नाटक देखनेमें लग गये और इससे चोरी करनेका कुछ समय निकल गया। इस दिन धर्मान्तरि चोरी करने नहीं गया। वह घर लौट आया। आज सास-बहु साथ-साथ सोयीं हुई थीं। इसलिए जब धर्मान्तरिने अपनी पत्नीके साथ किसी दूसरेको सोते हुए देखा तो वह क्रोधसे भभक उठा। उसे बड़ी ही ईर्ष्या हुई और जैसे ही वह तलवार ले कर उसका वध करनेको तैयार हुआ, उसे मुनिराजके निकट ली हुई प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया। और ज्यों ही धर्मान्तरि अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार सात कदम पीछे हटा, उसे अपनी पत्नीके पास सोती हुई माताका स्वर सुनायी दिया। उसके मनमें वैराग्य भाव

उदित हो उठा और वह तुरन्त ही घरसे चल दिया । उसने सोचा-देखो, एक ही व्रतके कारण आज मैंने अपनी पत्नी और माताके प्राण बचा लिए ।

यह सोच कर वह मुनिराजके पास आया और बड़े ही आदरके साथ मुनिराजसे पहले लिये हुए व्रतकी सामर्थ्य बतलाने लगा । धर्मान्तरिने इस बार भी मुनिराजसे धर्मोपदेश सुना और मद्य, मांस तथा मधुके त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली । तदनन्तर मुनिराजको नमस्कार किया और फिर यहाँसे चल दिया ।

एक दिनकी बात है । दुष्ट विश्वानलने धर्मान्तरिको लोभ दिखाया और उसके कारण वह व्याधोंके समूहके साथ चोरी करने चल दिया । ये व्याध चोर बहुत ही भयंकर और बड़े ही दुष्ट थे । इन लोगोंने वन-खण्डमें धन और रत्नोंसे सम्पन्न एक व्यापारियोंके झुण्डको जा पकड़ा । और इन लोगोंका समस्त धन छीन लिया और विश्वानल तथा धर्मान्तरिके जिम्मे छोड़ कर सबके सब भूख-प्यासकी वेदना मिटानेके लिए हस्तिनागपुर चल दिये । वहाँ पहुँच कर इन लोगोंने एक दूसरेसे छिपा कर मद्य, मांस और मधुमें विष मिलाया और विश्वानल और धर्मान्तरिके पास आ पहुँचे । इनके आते आते रात हो गयी और रात्रि-भोजन त्यागके कारण इन दोनों मित्रोंने यह भोजन नहीं किया । इस प्रकार इन दोनोंको छोड़ कर शेष समस्त चोरोंने एक दूसरेके द्वारा लाये मांस आदिको खा डाला । इन पापी चोरोंको इस विषमिश्रित भोजनका पता नहीं था, अतः वे सबके सब इस भोजन द्वारा मर गये ।

चोरीका सम्पूर्ण धन विश्वानल और धर्मान्तरिके हाथ लगा । ये दोनों इस धनको ले कर बहुत ही संतुष्ट हुए और अपने नगरको लौट आये । धर्मान्तरिने नगरमें पहुंच कर अपनी माँ और पत्नीको यह सब धन दे दिया । तदनन्तर वह इन दोनोंसे

तथा अपने मित्र विश्वानलसे विना पूछे ही वहाँसे चल दिया और गुणधर आचार्यके पास जा पहुँचा। वहाँ पहुंच कर इसने अपनी बहुत ही निन्दा की तथा आत्मीय धनस्वरूप तपकी प्राप्तिके लिए आचार्य महाराजसे प्रार्थना की।

मुनिराजने धर्मान्तरिके आन्तरिक उद्‌गार सुने और इसकी भव्यताको समझ कर इसे संसारसमुद्रसे पार करने वाली दिगम्बर दीक्षा दे दी। तदनन्तर धर्मान्तरिने आचाराङ्ग आदि द्वादशाङ्ग श्रुतका अध्ययन किया, धर्माचरण द्वारा अपनी आत्माको पवित्र बनाया और महान् तप करनेमें तत्पर हो गया।

एक बार विहार करते हुए यह धरिणीभूषण नामके उन्नत पर्वतपर, जहाँ तपस्वियोंके अनेक आश्रम बने हुए थे, जा पहुंचा और स्थिर मनसे आतापन योग करने लगा।

इसके पश्चात् विश्वानलको अपने मित्र धर्मान्तरिके गुणोंकी याद आयी और वह धरिणीभूषण पर्वतपर आतापन योगसे विराजमान धर्मान्तरि मुनिराजके पास जा पहुँचा। जब विश्वानलने मौनव्रतपूर्वक कायोत्सर्गमें स्थित धर्मान्तरिको देखा तो वह बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और उसने तपस्वियोंके व्रत ले लिये।

इधर जब योगिराज धर्मान्तरिने कायोत्सर्ग छोड़ा तो वह विश्वानल तपस्वीको समझानेके लिए उसके पास आये। इसे देख कर उनके मनमें हित-बुद्धि जागृत हो गयी और वे कहने लगे—विश्वानल! तुम समस्त सुखोंके कारण जिनधर्मको ग्रहण करो। योगिराज धर्मान्तरिके इस प्रकार समझानेपर जब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया तो वे कहने लगे—मित्र! तुम्हें भवान्तरमें इसका फल मालूम होगा। जिनधर्मसे विमुख विश्वानलसे इस प्रकार कह कर योगिराज वहाँसे चल दिये और अपने मन-वांच्छित प्रदेशको विहार कर गये।

इधर विश्वानल मरा और तपस्वियोंके व्रतके कारण सौधर्मेन्द्रके लोकपालकी सेनाका हाथी हो गया। उधर धर्मान्तरि योगिराजने भी दुष्कर तपस्या की और वह अच्युत स्वर्गमें बाईस सागर प्रमाण आयुवाला अच्युतेन्द्र हुआ।

एक बार ये दोनों मित्र नन्दीश्वर द्वीपमें पहुंचे। वहाँ एक दूसरेके दर्शन किये और परस्परकी कुशल क्षेम पूछने लगे। तदनन्तर दोनोंने धर्मकी परीक्षा करनेका निश्चय किया और इसके लिए ये दोनों कुतूहल वश बड़े ही आनन्दके साथ यमदग्नि मुनिके पास आये। इन दोनों विचक्षण देवोंमें एकने पक्षीका रूप धारण किया और दूसरेने पक्षिणीका रूप बनाया और इस प्रकार दोनों ही आकर कौतुकके साथ यमदग्निके पास जा बैठे।

इतनेमें पक्षीरूप देव पक्षिणीरूपी देवसे कहने लगा—प्रिये, आज समस्त पक्षी गण अपने स्वामीका सुमेरु पर्वतपर प्रसन्नतासे और माङ्गलिक जय ध्वनियोंके साथ अभिषेक करके पट्टबन्ध करेंगे। इसलिए हे पद्मपत्रके समान सुन्दर नेत्रवाली, और विकसित कमलके समान प्रसन्न मुखवाली प्रिये, मैं भी शीघ्र ही इस उत्सवमें सम्मिलित होऊँगा।

पक्षीरूपी देवकी यह बात सुनकर पक्षिणीरूप देव उससे कहने लगा—स्वामिन्! आपके वियोगमें मेरा मन भयसे विह्वल हो जायगा और गर्भके कारण अलस शरीरवाली मैं अकेली रह भी न सकूंगी। फिर संसारमें पुरुषोंके चित्तको कौन जानता है? और सुमेरु पर्वतपर एकसे एक बढ़ कर सुन्दर रूपवती अनेक पक्षिणियां भी हैं। स्वामिन्! तुम्हारा क्या ठिकाना है, तुम उन्हीं सुन्दरी पक्षिणियोंके साथ निरन्तर भोग करते हुए वहीं रह गये तो क्या विश्वास?

पक्षिणीकी बात सुन कर पक्षी बड़े ही संभ्रमके साथ उससे कहने लगा—प्रिये, वस्तुतः तुम्हें छोड़कर मेरी अन्य कोई भी

प्रियतमा नहीं है। हे प्रिये, तुम प्राणियोंपर दया करनेवाले और जनसाधारणके प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले इन मुनिराजके पास सिर्फ पांच दिन तक रह जाओ, तब तक मैं लौट कर जरूर ही वापिस आ जाऊंगा।

पक्षिणीने पक्षीकी बात सुनी और वह बड़े ही मीठे शब्दोंमें कहने लगी—स्वामिन्, मैं तो तुम्हें यहांसे एक कदम भी अन्यत्र नहीं जाने दूंगी।

पक्षी पुनः अपनी प्रियतमा पक्षिणीसे कहने लगा—प्रिये, यदि मैं पांच दिन बाद तुम्हारे पास वापिस न आ जाऊँ तो शपथ करता हूँ कि मैं गाय और ब्राह्मणकी हत्याके पापका भागी बनूं। इस प्रकार पक्षी जिस जिस प्रकारकी शपथ करता, पक्षिणी प्रतिकूल हो कर उसकी एक भी शपथ नहीं मानती।

पक्षी फिर इस पक्षिणी प्रियतमासे कहने लगा—देखो प्रिये, मुझे जाना जरूर है। अब तुम्हें मेरी शपथपर विश्वास नहीं है तो अपनी शपथ बतलाओ, जिससे तुम्हें मेरे वापिस आनेका विश्वास हो जाय। प्रियतम पक्षीकी यह बात सुन कर पक्षिणी कहने लगी—यदि तुम मुझे छोड़ कर जाना ही चाहते हो तो यह शपथ करो कि यदि मैं लौट कर शीघ्र वापिस न आऊँ तो मैं दूसरे जन्ममें इन मुनिराज जैसी गतिको प्राप्त करूँ। तुम यह प्रतिज्ञा करो और चले जाओ। मैं नहीं रोकूंगी।

जब पक्षीने पक्षिणीकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—भद्रे! जबतक मैं जीवित हूँ, इस प्रकारकी शपथ नहीं कर सकता।

इस प्रकार परस्परमें कलह करने वाले इन पक्षियोंकी बात यमदग्नि मुनिने सुनी तो उनकी भौंहें तन गईं और वे इन पक्षियोंसे कहने लगे—भाई, तुम मुझे शीघ्र बतलाओ कि इस शपथमें क्या रहस्य है जो तुम इसे स्वीकार नहीं कर रहे हो? मुझे बड़ा ही कौतुक हो रहा है।

पक्षी कहने लगा--"मुनिवर, न तुम्हारी कोई गति है, न तुम्हारा कोई तप है और न इस तपका तुम्हें कुछ फल ही मिल सकता है ; क्योंकि संसारमें पुत्रहीनकी न कोई गति है, और न उसे स्वर्ग ही मिल सकता है । पुत्रका मुंह देख कर ही भिक्षु बनना चाहिए । पक्षी कहता गया--मुने, पुत्रसे ही इह लोक और परलोक उत्तम होते हैं और पुत्रसे ही तीनों लोकमें फैलने वाली शुभ्र कीर्तिरूपी वधूकी प्राप्ति होती है । जिनका यश समस्त-दिशाओंमें व्याप्त हो रहा है और जो समस्त जनताके प्रेमभाजन हैं, उन विद्वानोंने चार प्रकारके आश्रमोंका विधान किया है, जो आज संसारमें खूब ही प्रसिद्ध हैं । प्रत्येक ब्राह्मणका यह कर्तव्य है कि वह एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें प्रवेश करता हुआ अपना जीवन बिताये । यदि वह इस मर्यादाका उल्लं-घन करता है तो प्रायश्चित्तका अधिकारी होता है । मुने, तुमने कुमार अवस्थामें ही यह मुनियोंका व्रत ले लिया । सो तुमने मूर्खतावश यह बहुत ही अप्रामाणिक कार्य किया है । तथा जो मनुष्य मनु, व्यास, वसिष्ठ और वेदके वचनको अप्रामाणिक बतलाता है, संसारमें वह ब्रह्मघाती कहलाता है । पक्षी कहता गया--मनुधर्म, पुराण, साङ्ग वेदविधि और क्रिया--ये सिद्ध स्वरूप हैं । इनका कदापि हेतुओंसे खण्डन नहीं करना चाहिए ।"

पक्षीकी बात सुन कर यमदग्नि मुनिकी भोगरुचि जागृत हो उठी । उसने विवेक शून्य होकर अपनी निन्दा करनी शुरू कर दी । वह सोचने लगा--'मैं कितना अज्ञानी हूँ जो कुमार अवस्थामें ही मुनियोंके व्रत ले लिए । खेद, मैंने इतने समय तक किस प्रकार अपनी आत्म वंचना की' । इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् यमदग्नि पक्षीसे कहने लगा--पक्षिन्, तुम मेरा हित करने ही आये हो । इसलिए मेरा शीघ्र ही इस दुर्गतिसे उद्धार करो । यमदग्नि योगीने इस प्रकारके कर्त्तव्यमार्गका उपदेश करने वाले पक्षीकी खूब पूजा की और सन्तानकी इच्छासे वह इन्द्रपुर चला गया ।

इन्द्रपुरमें यमदग्निका मामा राज्य करता था। इसकी पत्नी-का नाम जयमति था, जिसका शरीर सौन्दर्यसे निखर रहा था। इन दोनोंके देवकुमारी आदि नामकी मनोहर कन्यायें थीं। सो यमदग्नि इस राजाके पास पहुंचा और वहुत ही विह्वल होकर कहने लगा—मामा, मेरे कोई भी पुत्र नहीं है और संसार-में अपुत्रकी कोई गति भी नहीं है। इसलिए मैं कन्याके निमित्त-से ही आपके पास आया हूँ।

राजाने यमदग्निकी बात सुनकर अपनी समस्त रूपवती कन्याओंको बुलवाया। जव ये कन्याएँ राजाके सामने आगईं तो वह उनसे कहने लगा—पुत्रियों, तुम लोग इस मुनिके साथ इच्छानुसार भोगोंका अनुभव करो।

कन्याओंने पिताकी बात सुनी और ज्यों ही जटाओंके मुकुटको धारण करने वाले, पिशाच जैसे दिखने वाले, वृद्ध और कूर्चोंसे भयंकर तथा बीभत्समूर्ति इस यमदग्निको देखा, वे भयके मारे डर गईं और शीघ्र ही पिताके पाससे भाग गईं।

कन्याओंके भाग जानेसे तपस्वी यमदग्निको एकदम रोष हो आया। उसने इन्हें तुरन्त ही शाप दे दिया कि ये सब दुरा-चारिणी कन्यायें कुबड़ी हो जावें। तपस्वीके शाप देते ही ये सब कन्याएँ कुबड़ी होगईं और साराका सारा इन्द्रपुर कुबड़ी कन्याओंसे संकुल हो गया।

इन कन्याओंमेंसे एक ऐसी कन्या वहीं खेलती हुई रह गई थी जिसका सम्पूर्ण शरीर धूलिसे धूसरित हो रहा था और जिसका नाम रेणुका था। इस धूर्त तपस्वीने उस कन्याको एक बिजौरा फल (बीजपूरक) दिखलाया और कहने लगा यदि तुम मुझे चाहो तो मैं अभी हाल तुम्हें यह बिजौरा देदूं।

कन्या कहने लगी—तपस्विन्, तुम यद्यपि एकदम वृद्ध हो चुके हो, फिर भी यदि तुम मुझे यह बिजौरा दो तो मैं तुम्हें चाह सकती हूँ। यमदग्निने जव रेणुकाके चित्तको अपनी ओर

आकर्षित देखा तो उसने वह फल उसे दे दिया और उसे अपने कन्धे पर बिठला कर शीघ्र ही राज भवनसे चल दिया। तपस्वी-ने शुल्कदान दिया वह प्रसन्न हुआ और समस्त कन्याओंके कुबड़े-पन को दूर करके वह अपने घर आगया। इसने रेणुकाको पाल पोष कर बड़ा किया और फिर उसके साथ विधिवत् विवाह कर लिया। तदनन्तर रेणुकाके परशुरामका जन्म हुआ।

अच्युतेन्द्र पूर्वभवके विश्वानल देवसे कहने लगा—मित्र! यमदग्नि तपस्वीकी अज्ञानता और मूढ़ता तो देखो। इस मूर्खने परमार्थपर कोई ध्यान नहीं दिया और कर्तव्य तथा अकर्त्तव्यका भी कोई विवेक नहीं किया। इसलिए विद्वानोंका कर्त्तव्य है कि वे समस्त ग्रन्थोंके कथनकी ठीक-ठीक छान बीन करें। मिथ्या ग्रन्थोंके उपदेशसे उन्हे विष भक्षण नहीं करना चाहिए। एक तो क्या, हजारों मनुष्य कौमार अवस्थामें ब्रह्मचारी हुए और रमणियोंको छोड़कर स्वर्गमें पहुंचे। कहा भी है:—

"परीक्षा सर्वशास्त्रेषु कर्त्तव्याऽत्र विचक्षणैः।
न कुशास्त्रप्रणीतेन कर्त्तव्यं विषभक्षणम्॥
अनेकानि सहस्राणि कौमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि मुक्तानि अकृत्वा दारसंग्रहम्॥"

अर्थात्—'बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है कि वे समस्त शास्त्रोंकी परीक्षा करें। कुशास्त्र यदि विष खानेकी ओर इंगित करे तो विष नहीं खाना चाहिए। अनेकों हजार ब्रह्मचारियोंने दार परि-ग्रह नहीं किया और उनमेंसे कुछ स्वर्ग गये तथा कुछ मुक्त-भी हुए।"

ये दोनों देव कौमार व्रतको नष्ट करने वाले तपस्वी यमदग्निकी परीक्षा करके राजगृह नगरीमें पहुंचे। इस नगरीमें एक जिनदास नामका श्रावक रहता था। जिनदास सम्यग्दृष्टी था और बड़ा ही मधुरभाषी था। वह प्रत्येक पर्वके दिन कायोत्सर्ग किया करता था। अच्युतेन्द्रने जिन-

दासको कायोत्सर्गमें विराजमान देखा तो वह पूर्वभवके विश्वानल देवसे विशुद्ध हृदयके साथ कहने लगा—मित्र, तुम हमारे जैनधर्मका पालन करनेवाले मुनियोंकी बात तो जाने दो। यदि तुममें कुछ शक्ति हो तो इस श्रावकको ही अपने योगसे च्युत करो।

ज्यों ही देवने अच्युतेन्द्रकी यह बात सुनी, वह क्रुद्ध हो जिनदासके ऊपर उपसर्ग करने लगा। इसने मायाके द्वारा जिनदासके सामने उसके धन-धान्यको लुटते हुए दिखलाया, पुत्र और कुलके प्राणियोंकी हिंसा होती हुई दिखलाई तथा और भी अनेक प्रकारके उपसर्ग इसके सामने उपस्थित किये। परन्तु इस प्रकारसे उपसर्ग किये जानेपर भी जिनदासका मन ध्यानसे किञ्चित् भी स्खलित नहीं हुआ और वह अन्ततक सुमेरुकी तरह अडिग बना रहा।

जब देवने जिनदासकी यह धीरता देखी तो उसे बड़ा ही हर्ष हुआ और उसने इस धीर-वीरके लिए आकाशगामिनी विद्या दे डाली। इस प्रकार आकाशगामिनी विद्या देकर पूर्वभवके विश्वानल देवके मनमें कुटिलता जागृत हुई और वह अच्युतेन्द्रसे कहने लगा—'मित्र, यह आर्य जिनदास महान् और पुराना श्रावक है। इसका चित्त धर्ममें रम चुका है और इसने अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करके कुशलता भी प्राप्त की है। इसलिए यदि धीरात्मा जिनदास इस महान् उपसर्गको सहन कर जाता है तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। तुम मुझे इस प्रकारका व्यक्ति बतलाओ, जिसने अभी हाल ही धर्म स्वीकार किया हो और जिसका शास्त्रीय ज्ञान भी थोड़ा हो'।

अच्युतेन्द्र बोला—'मित्र, ऐसा भी एक व्यक्ति है, जिसका हृदय बहुत भोला है, आत्मा विशुद्ध है और अल्प समयका ही धर्मात्मा है। इस यशस्वी नरपुङ्गवको सारभूत जैनधर्म ग्रहण किये हुए अभी सात दिन ही हुए हैं। यदि तुम्हारी इच्छा उसको

अपने अङ्गीकृत धर्मसे डिगानेकी हो तो हम लोग उसके पास चलें ।

इस प्रकार अच्युतेन्द्रकी बात सुन कर पूर्वभवके विश्वानल देवको संतोष और रोष दोनों ही हुए । वह इन्द्रके समान वैभवसे सम्पन्न होकर मिथिला नगरीमें आया ।

मिथिलाके उद्यानमें पद्मरथ नामका शूरवीर राजा ठहरा हुआ था। इसे सुधर्माचार्यके निकट जैनधर्मका उपदेश सुने कुल सात ही दिन हुए थे। भगवान् वासुपूज्यका समवसरण चम्पापुरीके उद्यानमें आया हुआ था। सो पद्मरथ राजा उनकी वन्दनाके लिए आया था ।

ज्यों ही अच्युतेन्द्रने उद्यानमें ठहरे हुए पद्मरथको देखा उसका मन कौतुकसे भर गया और वह विश्वानल देवसे कहने लगा—मित्र, देखो, इस पद्मरथ राजाने अभी अभी ही जैनधर्मको स्वीकार किया है। सो तुममें यदि शक्ति हो तो इसीको अपने धर्मसे चलित कर दो।

विश्वानल देवने ज्यों ही पद्मरथ राजाको देखा, क्रोधसे उसकी आँखोंमें रक्त वरसने लगा और वह वड़े ही आवेशसे उसके ऊपर भयंकर उपसर्ग करने लगा । इस देवने पद्मरथके सामने इसके नगर दाहका दृश्य दिखलाया, सैन्य-युद्ध दिखलाया, महान् भीषण गर्जनाएँ की और भूत-प्रेतकी डरावनी मूर्तियां दिखलाकर अनेक प्रकारके उपसर्ग किये। पद्मरथने विश्वानल देव द्वारा किये गये उपसर्गकी जरा भी परवाह नहीं की । वह अपने निश्चयसे जरा भी विचलित नहीं हुआ ।

जब इस देवने पद्मरथ राजाकी यह अविचल धीरता देखी तो उसका मन बहुत ही संतुष्ट हुआ और उसने एक योजन तक मधुर और गंभीर गर्जना करने वाली भेरी इसे दानमें दी । इस घटनासे अच्युतेन्द्र भी बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने भी धर्म-वात्सल्यके कारण पद्मरथ राजाको एक समस्त व्याधि-

विनाशक हार उपहारमें दिया। इस प्रकार ये देव भगवान् वासुपूज्यकी वन्दना करके तथा राजाकी पूजा करके स्वर्ग चले गये।

पद्मरथ भी कण्ठमें हार पहिनकर और सुस्वर भेरी लेकर भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी वन्दनाके लिए जा पहुंचा। उसने बड़ी ही भक्तिसे भगवान्की स्तुति की तथा उन्हें नमस्कार किया। तत्पश्चात् विशुद्ध बुद्धि पद्मरथने अपने पुत्रको राज्य-सिंहासनपर बिठलाया और उसने वासुपूज्य स्वामीके निकट जिन-दीक्षा ले ली। पद्मरथ इतना जिन भक्तिपरायण हुआ कि वह भगवान् वासुपूज्यका प्रधान गणधर हो गया और उसने शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त किया।

इस प्रकार जिनभक्ति परायण पद्मरथ राजाकी
गणधरत्व प्राप्ति तथा निर्वाण गमनको
बतलाने वाला यह कथानक
सम्पूर्ण हुआ।

---o---

६०. सुभग गोपालकी कथा

अङ्ग नामके महान् देशमें चम्पा नामकी समृद्ध नगरी है। इस नगरीमें दन्तिवाहन नामका राजा रहता था, जो बड़ा ही नीतिज्ञ था। दन्तिवाहनकी पत्नीका नाम अभया था। अभया राजाकी महादेवी थी और बहुत ही बुद्धिमती थी। इसकी एक धात्री थी, जिसका नाम पण्डिता था। पण्डिता भी बहुत ही गुणवती थी।

इसी नगरीमें एक ऋषभदास नामका सेठ रहता था। ऋषभदास एक बहुत सम्पन्न सेठ था। इसकी पत्नीका नाम

जिनदासी था । इस सेठके एक भक्त नौकर था, जो इसकी गाय भैंसोंकी रखवाली किया करता था। इसका नाम सुभग था । सुभग समस्त मनुष्योंको बड़ा ही प्रिय था ।

एक दिनकी वात है । सुभगने समस्त भैंसोंको आगें किया और उन्हें घास और पानी वाले वनप्रदेशमें ले चला । जव वह साँझके समय उधरसे लौटकर आ रहा था तो इसे कुछ दूर-वर्ती प्रदेशमें एक चारण मुनि दिखलाई दिये। इन मुनिराज-को देख कर वह वड़ा ही विस्मित हुआ और इस प्रकार विचार करने लगा—देखो, इतने महान् शीतकालमें भी यह मुनिराज वाहर खड़े हुए हैं और वस्त्रके नामपर इनकी कमरमें एक लंगोटी तक नहीं है। समझमें नहीं आता, यह किस प्रकार रात काटेंगे ?

सुभग यह सोच-विचार करता हुआ अपने घर आ गया और रातमें उन मुनिराजके गुणोंका ही चिन्तन करता हुआ वह अपनी कुटियामें जा सोया। सुबह हुआ और वह भैंसे लेकर पुन: उसी दिशामें चल दिया। जब उसे मुनिराज दिखलाई दिये तो वह कुछ समयके लिए वहाँ ठहर गया।

मुनिराजने प्रभातकाल सम्बन्धी क्रियाको किया और ज्यों ही सूर्य उदित हुआ वह "नमोऽर्हते" कहकर आकाशमें विहार कर गये। ज्यों ही सुभग गोपालने सजल मेघकी तरह 'नमोऽर्हते,' की गंभीर ध्वनि सुनी और मुनिराजको आकाश मार्गसे जाते हुए देखा, उसने समझा कि यही विद्या आकाश गामिनी है । और इस प्रकारका निश्चय करके उसने संसार-समुद्रको सुखाने वाला अर्हन्त भगवान्का नमस्कार मनमें बिठा लिया। इतना ही नहीं, सुभगने सोचा इस मंत्रसे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो जावेगी और इसके वलसे मैं भी अगम्य पर्वतों आदिपर विहार करूँगा। इस प्रकार वह उठते बैठते, जागते सोते सदैव "नमोऽर्हते" इस वाक्यको जपता और इसे कभी भी न भूलता ।

सुभगके सेठ तथा अन्य श्रावकोंने इस गोपालको समझाया कि तुझे संसारका नाश करन वाला यह जिन नाम नहीं लेना चाहिए। किन्तु उसने उत्तर दिया–तात, मैं महान् पवित्र जिन नामको कभी नहीं छोड़ सकता। जब सेठने सुभगकी जिन नामके प्रति इतनी अविचल निष्ठा देखी तो वह कहने लगा-पुत्र मेरी भी अब यही संमति है कि तुम कभी भी जिन नाम न छोड़ो। जिनेन्द्र भगवान्का नाम पवित्र है और यह तुम्हारे लिए सदैव माङ्गलिक रहेगा। इस प्रकार कहकर ऋषभदास सेठ चुप रह गया।

एक दिनकी बात है। भैसोंका झुण्ड वेगसे गंगा पार हो गया और वहाँ जाकर एक सुगन्धित धानके खेतमें प्रवेश कर गया। ज्यों ही सुभग गोपालने देखा कि उसकी भैंसें गंगा पार होगई हैं, वह तुरन्त ही दौड़ा और दौड़ करके किनारे जा पहुँचा। उसने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया और जिनेन्द्र भक्तिमें ही अपना मन स्थिर करके तथा निर्भय होकर वह गंगाकी धारामें कूद पड़ा।

सुभग ज्यों ही गंगामें कूदा, एक काठकी नोक उसके पेट-में घुस गई। वह तुरन्त ही मर गया और मर कर ऋषभदास सेठकी पत्नी जिनदासीके गर्भमें आगया। इसके गर्भमें आये हुए जब इसे पाँच महीने होगये तो सेठानीको जिनेन्द्र भगवान्-की पूजा करनेका दोहद उत्पन्न हुआ।

एक दिनकी बात है। सेठानी जिनदासी सेठजीके सामने बैठी हुई थी। सेठजीने जब इसे ध्यानसे देखा तो यह पहले-की अपेक्षा दुर्बल दिखलाई दी। सेठजीने पूछा-प्रिये, तुम्हारी इस दुर्बलताका क्या कारण है ? मुझे बतलाओ। मै उसे दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।

सेठानी बोली–स्वामिन्, मैं इस समय जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करना चाहती हूँ। सेठ ऋषभदासने अपनी पत्नीकी

च्छानुसार जन्म-जराविहीन जिन भगवान्की माङ्गलिक गाजे-वाजेके साथ महामह पूजा की। तदनन्तर जब नौ महीने व्यतीत हो गये, तो जिस प्रकार पूर्व दिशा प्रभा-सम्पन्न वाल सूर्यको उत्पन्न करती है, उसी प्रकार सेठानीने भी कान्तिसे जगमगाते हुए पुत्रको उत्पन्न किया। इस शिशुने अपने शरीरके सुन्दर प्रभा-पुञ्जसे पूर्णचन्द्रकी तरह समस्त वान्धवरूपी कमलोंको विकसित कर दिया—इसके उत्पन्न होनेसे समस्त वन्धुओंको बड़ा ही हर्ष हुआ। इसके वाद ऋषभदास इसे जिन मन्दिर ले गया और वहाँ उसने जिन भगवान्की वड़ी ही भक्तिपूर्वक पूजा की। और मुनिराजने इसके गुणोंके अनुसार इसका सुदर्शन नाम रख दिया।

सुकुमार सुदर्शन धीरे धीरे बड़ा हुआ और उसने बहुत ही शीघ्र समस्त कलाओंकी शिक्षा ले ली। वह चौसठ कलाओं-में पारंगत हो गया।

इसी चम्पा नगरीमें एक सागरदत्त नामके अन्य सेठ रहते थे। इनकी पत्नीका नाम सागरसेना था। तथा इन दोनों-के एक मनोरमा नामकी कन्या थी। सुदर्शन कुमारका इस मनोरमाके साथ विधिवत् विवाह होगया और इन दोनोंके एक सुकान्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आकृतिमें बड़ा ही मनोहर था। एक दिन सेठ ऋषभदासको यह समस्त सांसारिक सुख अनित्य और असार दिखलाई दिया और उसने अपने पुत्र सुदर्शनको सेठकी पगड़ी बांध दी। तथा उसने दन्तिवाहन राजाको अपना यह पुत्र सौंप दिया और आप समाधिगुप्त मुनिराजके निकट दीक्षा लेकर साधु होगया।

सुदर्शनका एक मित्र था जिसका नाम कपिल था। वह जातिका ब्राह्मण था। कपिल दन्तिवाहन राजाका पुरोहित था। इसकी पत्नीका नाम कपिला था। कपिलाको अपने रूप और यौवनका बड़ा ही अहंकार था। उसने सुदर्शनके गुण

सुन रक्खे थे, जिसके कारण उसका मन सुदर्शनके प्रति आसक्त होगया।

एक दिनकी बात है। मदनोन्मत्त कपिलाने एक चतुर दूती द्वारा कुछ गुप्त सन्देश सुदर्शन सेठके पास भेजा। दूती अपनी स्वामिनीके अभिप्रायको समझ कर तुरन्त ही सुदर्शनके घर जा पहुंची तथा सुदर्शनसे कहने लगी—स्वामिन् ! तुम्हारे अभिन्नहृदय मित्र कपिलका कहना है कि तुम कृपा पूर्वक कुछ देरके लिए हमारे घर जरूर ही आओ।

दूतीकी बात सुन कर सुदर्शनका मन स्नेहसे गद्‌गद हो उठा। वह तुरन्त ही अपने मित्रके घर चलनेको प्रस्तुत होगया। मित्रके घर आकर सुदर्शनने ब्राह्मणी कपिलासे पूछा-भद्रे ! कपिल कहाँ है ?

कपिला कहने लगी—आपके मित्र घरके अन्दर सो रहे हैं। आप घरके भीतर जाकर देखिए। जब सुदर्शन कपिलाके कहनेके अनुसार घरके अन्दर गया और वहां कपिल दिखलाई नहीं दिया तो वह फिर पूछने लगा—अरे भई, जल्द बतलाओ मित्र कपिल कहां हैं ?

अबकी बार कपिला बोली—कपिल तो यहां नहीं हैं। पर आप मेरी बात सुनिए। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ और परोक्ष रीतिसे तुम्हारे गुणोंमें अनुरक्त हूं। मेरी प्रार्थना आप स्वीकार करें। यदि बार-बार प्रार्थना करनेपर भी तुम मुझसे प्रेम नहीं करोगे तो मैं निश्चयसे मनुष्योंके द्वारा तुम्हें अभी हाल मरवा डालूँगी।

इतना कह कर वह मूर्खा सुदर्शनसे आलिङ्गन आदि करने लगी। यह देखकर सुदर्शन सेठ उससे बोला—मुग्धे, तुम मेरी सत्य बात सुनो। क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि मुझमें बिलकुल भी पौरुष नहीं है ?

सुदर्शनकी यह बात सुनकर कपिला बड़ी विरक्त हुई और कहने लगी—यदि तुममें पौरुष नहीं है तो अपने घर जाओ। यह बात सुनकर सुदर्शनको ऐसी प्रसन्नता हुई मानो वह महान् व्याधिके मुखसे उन्मुक्त हुआ हो। और कपिलाके कहनेके वाद ही वह तुरन्त अपने मकानपर आगया।

एक दूसरे दिनकी बात है। दन्तिवाहन राजा कपिल और सुदर्शनके साथ उद्यान वनमें क्रीड़ा करनेके लिए गया। इनके साथ ही अभया महादेवी, कपिला और मनोरमा ये तीनों भी अपनी-अपनी पालकीमें बैठ कर वन-विहारके लिए चल पड़ीं।

अभया महादेवीने कपिलासे पूछा—कपिले, यह तो बतलाओ, यह पुत्र आदि परिवारसे वेष्टित किसकी स्त्री जा रही है? देखो तो, इस स्त्रीके शरीरके कान्तिपुञ्जसे आकाश मण्डल प्रकाशित हो रहा है और यह इस प्रकारसे सुशोभित हो रही है, मानो आकाशमें चन्द्रलेखा हो।

कपिलाने महादेवी अभयाकी बात सुनी तो वह तुरन्त कहने लगी—देवी, यह सुदर्शनकी पत्नी है और इसका नाम मनोरमा है।

कपिलाकी बात सुन कर महादेवी कहने लगी—यह सुन्दरी धन्य है जिसकी गोदमें छोटा पुत्र खेल रहा है। पुत्रके विना स्त्रीपर्याय उसी तरह निष्फल है, जिस प्रकार फल-फूलके अभावमें शून्य लता। महादेवी फिर कहने लगी-देखो, इसका शरीर रूपसे निखर रहा है और इसका कण्ठ कितना मधुर है? यह कितनी प्रसन्नतासे हम लोगोंके साथ उद्यान वनमें क्रीड़ा करनेके लिए जारही है।

कपिलाने जब महादेवी अभयाकी बात सुनी तो उसने एक उपहास सूचक हँसी हँस कर रानीसे धीरेसे कहा—देवि, सुनो,

स्त्री हो तो सुदर्शनकी स्त्रीकी तरह हो जो चतुराईके साथ पुत्र पैदा कर लेती है।

कपिलाकी बात सुनकर अभयाको भी हँसी आगई, परन्तु वह सम्हल गई और कहने लगी—कपिले ! तुम इस प्रकार व्यङ्गचात्मक ढंगसे क्यों बात कर रही हो ? कारण तो वतलाओ ? यह स्त्री पतिव्रता है और रूप तथा शीलसे सम्पन्न है। यह अपने पतिदेव सुदर्शनको छोड़ कर अन्य पुरुषको मनसे भी नहीं चाहती है। यह जिन शासनकी भक्त है। सम्यक्त्व और अणुव्रतोंसे सुशोभित है। गुणव्रतों तथा शिक्षाव्रतोंका पालन करती है, और उदुम्बरको छोड़े हुए है। यह अपने पतिको छोड़ कर अन्य मनुष्यकी स्वप्नमें भी अभिलाषा नहीं करती और जिनदेव तथा जैन मुनियोंको छोड़ कर अन्य किसीकी भक्ति और स्तुति भी नही करती।

परन्तु कपिला अभयाकी यह वात सुन कर कहने लगी-देवि ! जिस स्त्रीकी आप इतनी प्रशंसा कर रही हैं उसीके पति सुदर्शनने मुझसे एक वार कहा था कि मैं नपुंसक हूँ तथा मुझमें पौरुष नहीं है। इसलिए देवि ! मैं तो इसके पति सुदर्शनको नपुंसक ही समझती हूँ और इसने जो यह पुत्र प्राप्त किया है सो यह इसकी कुशलताके सिवा और क्या है ?

महादेवी अभयाने जब कपिलाकी यह वात सुनी तो वह कहने लगी—तुम्हें काम शास्त्रका ज्ञान नही है, इसी लिए उस धूर्तने तुम्हें ठग लिया। सखि ! वस्तुतः सुदर्शन दूसरोंकी स्त्रियोंके लिए नपुंसकके समान है--किन्तु अपनी स्त्रीके लिए कामके समान विलास करने वाला पौरुष सम्पन्न पुरुष है। सुदर्शनका चित्त समुद्रकी तरह गंभीर है और क्षोभसे शून्य है। तुम मूर्ख हो, अतः उसके चित्तको और उसे ठीक-ठीक नहीं समझ सकीं। ठीक ही है, पुरुषोंकी परीक्षामें स्त्रियां कुशल नहीं देखी जाती हैं।

जब महादेवीने इतना कहा तो कपिलाका मुख कमल मुरझा गया और उसका चित्त ईर्षासे जल उठा। वह कहने लगी–देवि, यदि यह बात है तब तो सुदर्शनने मुझे ठग लिया। इतना कहकर कपिला महादेवीसे कहने लगी–देवि, मैं ब्राह्मणी तो काम कलासे अनभिज्ञ हूँ अतः अपनी मूर्खताके कारण मन्दराचलकी तरह स्थिर मनवाले सुदर्शनको वशमें नहीं कर सकी; परन्तु तुम तो कामशास्त्रकी पंडिता हो। महादेवीके पदपर आसीन हो, और रूपवती तथा युवती हो। इतना होनेपर भी मैं तुम्हें तब जानूँ, जब तुम इसे अपने अधीन करलो।

महादेवी अभयाने जब कपिलाकी यह बात सुनी तो वह कहने लगी-कपिले, मैं निश्चयसे सुदर्शनको अपने वशमें करनेके लिए समर्थ हूँ। महादेवीने खिन्नमनस्क कपिलाके सामने यह बात कही और अपने रूपके अभिमानमें आकर उसने सुदर्शन-को अपने अधीन करनेकी प्रतिज्ञा की–हे नितम्बिनि, यदि मैं सुदर्शनके चित्तको क्षुब्ध नहीं करसकी तो मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि भविष्यमें मैं पुरुषके भोगसे ही विरक्त हो जाऊँगी।

कपिलाके सामने यह प्रतिज्ञा करके महादेवी शीघ्र ही नगरमें लौट आई और अपने प्रासादमें आ पहुँची। तदनन्तर महादेवीने पंडिता धात्रीको अपने पास बुलवाया। और वह लज्जा छोड़कर प्रसन्नताके साथ इस प्रकार कहने लगी-पंडिते, तुम शीघ्र ही सुदर्शनको मेरे पास लाओ, जिससे मैं इसके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगूं। भद्रे! सुदर्शनने मेरा चित्त चुरा लिया है, सो यदि तुम इसे शीघ्र ही मेरे पास नहीं लाती हो तो विश्वास रक्खो मैं बहुत जल्दी प्राण-विहीन हो जाऊँगी।

धात्रीने ज्यों ही महादेवीकी यह बात सुनी, वह मीठे शब्दों-में बोली–देवि, तुमने यह बहुत ही बुरा काम सोचा है। जो पांच अणुव्रतोंका पालन करता है, जिसकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे

पवित्र है, जो पुण्य और पापका विचार करता है, जिसकी बुद्धिमें हित और अहितका विवेक है, जिसे अत्यन्त गभीर समुद्र कहो या कम्परहित सुमेरु कहो, क्षमासे सम्पन्न पृथ्वी कहो या निर्मल मूर्तिवाला आकाश कहो, और जो लोगोंके द्वारा की जाने वाली परस्त्रीकी चर्चाको मन, वचन, काय तथा कानोंसे भी नहीं सुनना चाहता है, समझमें नहीं आता कि वह विशुद्धात्मा किस प्रकार तुम्हारे साथ इच्छानुसार भोग-विलास करेगा और यह भी समझमें नहीं आ रहा है कि उसे तुम्हारे पास किस प्रकार लाया जावे ?

महादेवी अभया धात्रीकी बात सुनकर कहने लगी—सखि ! मैंने कपिलाके सामने यह प्रतिज्ञा की है, यदि सुदर्शन मेरे प्रति आसक्त होकर मेरा आलिङ्गन न करे और मुझसे प्रेम न करे तो मैं निश्चयसे आत्मधात कर डालूँगी।

जब धात्रीको महादेवीकी इस रहस्यपूर्ण प्रतिज्ञाका पता चला तो वह कहने लगी-देवि, सुदर्शनको यहां लानेका एक ही उपाय है । वह यह कि वह पर्वके दिन रातमें स्थिर मनसे कायोत्सर्ग करता है, सो कायोत्सर्गकी स्थितिमें ही वह यहाँ लाया जा सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। महादेवी धात्रीकी बात सुनकर कहने लगी—जो उपाय सुदर्शनको यहां लानेका तुमने बतलाया है, वही उपाय मेरे मनमें भी था। तदनन्तर धात्री कुम्हारके घर पहुंची और उसने उससे मिट्टीके सात पुरुष बनवाये।

प्रतिपदाके दिनकी घटना है। धात्रीने मिट्टीके एक पुरुष-को वस्त्रसे आच्छादित किया और उसे लेकर महादेवीके भवन-की ओर चल दी। धात्री ज्यों ही इस मिट्टीके पुरुषको लेकर महादेवीके भवनमें प्रवेश करने लगी, पहिले द्वारपालने उसे देखा और वह धात्रीसे कहने लगा—यह कौन वस्तु है, जिसे तुम वस्त्रसे ढककर जल्दी जल्दी जा रही हो ? यदि राजाको इसका पता

चलेगा तो वह हमसे क्रुद्ध होंगे और हमें दण्डका भागी होना पड़ेगा। धात्रीने द्वारपालकी बात सुनी और कहने लगी—तुम्हें हमसे क्या मतलब, जो हमारे मनमें आता है उसे लेकर जा रही हूँ।

धात्रीके उत्तरसे द्वारपालको क्रोध हो आया। उसने धात्रीका पिछौरा पकड़कर खींच दिया। धात्रीने अपने हाथकी मिट्टीके पुरुषकी प्रतिमाको जमीनपर छोड़ दिया और जमीनपर गिरते ही उसके सैकड़ों टुकड़े होगये। धात्रीका सम्पूर्ण शरीर क्रोधसे कंपने लगा। उसने द्वारपालसे कहा—द्वारपाल, तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। महादेवीने आदर पूर्वक पुरुषव्रतका उपवास किया है। उन्हें इस मिट्टीके पुरुषकी पूजा करके ही भोजन करना था। मैं इस मिट्टीके मनुष्यको महादेवीकी पूजाके लिए ही लाई थी; परन्तु तुम जैसे मन्दबुद्धिने उसे भी खण्ड खण्ड कर दिया। धात्री कहती गयी—द्वारपाल, तुम्हे मालूम होना चाहिए कि मिट्टीका ऐसा पुरुष इस समय नहीं मिल सकता और रानी जब मुझे देखेगी कि मैं इस मृत्तिका-पुरुषको नहीं लायी हूँ तो सोच, उन्हें कितनी पीड़ा होगी? मैं अभी हाल यह समाचार राजासे कहती हूँ और कल यदि मैंने तेरा सिर न कटवा दिया तो मै धात्री ही किस कामकी?

धात्रीकी बात सुनकर भयके मारे द्वारपालका सारा शरीर कँपने लगा। उसने अपना मस्तक धात्रीके चरणोंमें टेक दिया और वह धात्रीसे कहने लगा—"अम्बे, तुम हमारी माताके समान हो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, तुम इस समाचारको राजासे न कहना। भद्रे, यह तो मिट्टीका मनुष्य है, यदि अबकी बार तुम वास्तविक मनुष्य भी देवीके पास ले जाओगी तो मैं तुमसे कुछ भी न कहूँगा।"

द्वारपालकी यह बात सुनकर धात्री संतुष्ट हो गई। उसने द्वारपालके चिरजीवी और दीर्घजीवी होनेकी कामना व्यक्त

की और कहा—अच्छी बात है, मैं राजासे यह समाचार नहीं कहूँगी। धात्रीने भयसे कंपित शरीर वाले द्वारपालसे इतना कहा और स्वयं संतुष्ट होकर घर चली गई। धात्री बड़ी कुशल थी। उसने इसी प्रकार सातो द्वारोंके द्वारपालोंको इसी विधि से वशमें कर लिया।

अष्टमीका दिन था। रातका समय था। सुदर्शन समस्त आरंभ-परिग्रह छोड़कर उपवास पूर्वक स्मशानमें कायोत्सर्गसे विराजमान था। धात्री श्मशानमें पहुँची और ध्यानमें मग्न सुदर्शनको उठाकर जल्दीसे अभया महादेवीके पास चल पड़ी। वह इस समय बहुत ही प्रसन्न थी। उसने कायोत्सर्गमें स्थित सुदर्शनको ले जाकर महादेवीको सोंप दिया।

ज्यों ही महादेवीने सुदर्शनको देखा, उसका मन कामाकुल हो उठा और वह कायोत्सर्गमे ही स्थित सुदर्शनके साथ गाढ आलिङ्गन-चुम्बन आदि करने लगी।

सुदर्शनने अपने ऊपर महान् उपसर्ग आया हुआ देखकर यह प्रतिज्ञा की यदि यह उपसर्ग कुशलता ` व्यतीत हो जावेगा तो मैं शीघ्र ही पाणिरूपी पात्रसे पारणा करूँगा। यह प्रतिज्ञा लेकर जिनेन्द्र भगवान्का चिन्तन करता हुआ वह वहाँ सुमेरूकी तरह अडिग बना रहा।

उस समय देवीके समान रूपवाली भी अभया महादेवी सुदर्शन सेठको जरा भी क्षुब्ध और विचलित नहीं कर सकी। जब महादेवीने यह स्थिति देखी तो उसे सुदर्शनकी धीरता और अपनी असफलतापर बड़ा हो क्रोध आया। उस कामुकीने अपने शरीरको नाखूनोंसे खूब नोच लिया और बालोंको बिखेर लिया। फिर वह बड़े जोरसे चिल्ला पड़ी—अरे दौड़ियो-दौड़ियो, इस सेठने मेरी इच्छाके विरुद्ध मेरा उपभोग कर डाला।

ज्यों ही राजाने यह बात सुनी, वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ

और अपने रक्षा-पुरुषोंसे बोला—तुम लोग इसे श्मशानमें ले जाओ और शीघ्र ही इसका मस्तक काट डालो।

राजाकी आज्ञानुसार रक्षा-पुरुष सुदर्शनको श्मशान भूमिमें ले गय। और ज्यों ही इसके गलेपर तलवारका प्रयोग किया गया, तलवार ही पुष्पमाला बन गई। आकाशमें स्थित देवताओंने यह विस्मय देखा और वे यह कहकर सुदर्शनको धन्यवाद देने लगे—"धन्य है, सुदर्शनके शीलको, धन्य है सुदर्शनके शीलको।" देवोंने इस प्रकार कहकर नाना वर्णके उज्ज्वल और सुगन्धित पुष्पोंसे प्रसन्न हृदय सुदर्शनकी पूजा की।

जब दन्तिवाहन राजाने यह अतिशय देखा तो वह जन-समूहके साथ सुदर्शनके निकट आया। उसने सुदर्शनकी प्रदक्षिणा की और उससे बार-बार क्षमा मांगी। वह उससे कहने लगा—सुदर्शन ! तुम हमारा आधा राज्य ले लो और इच्छानुसार विविध भांतिके भोगोंको भोगते हुए इसी नगरीमें रहो।

जब सुदर्शनने जन-समूहसे घिरे हुए राजाकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—राजन्, न तो मुझे आपके राज्यसे प्रयोजन है और न भोगोंसे ही। राज्य और भोग—दोनों ही महान् दुख देने वाले हैं और अनन्त संसारके बढ़ाने वाले हैं। राजन्! जिन मानियोंका मान गलित हो चुका है उन्हें पृथ्वीका लाभ होने पर भी क्या सुख मिल सकता है ? क्यों कि जब तक मनुष्यका मान है, तब तक उसका जीवन है। मान नष्ट होनेपर कहाँसे सुख मिल सकता है ? कहा भी है:—

"मानिनो हृतदर्पस्य लाभोऽपि न सुखायते।
जीवितं मानमूलं हि माने म्लाने कुतः सुखम् ॥"

अर्थात्—जिसका दर्प चूर हो चुका है, उस मानीको लाभ भी सुखकर नहीं हो सकता है; क्योंकि जीवनका मूल मान है। जब मान ही जाता रहा तो कहाँसे सुख मिल सकता है ?

सुदर्शन कहने लगा–राजन्, यह मत समझना कि तुमने मेरे ऊपर यह उपसर्ग किया है। यह तो मेरे पूर्व जन्मके अशुभ कर्मोका ही फल है।

सुदर्शन दन्तिवाहन राजासे यह कह ही रहे थे कि इतनेमें वहाँ विमलवाहन नामके आचार्य आ पहुँचे। सुदर्शनने राजासे क्षमा मांगी और आचार्यके पास पहुंच कर उनकी तीन प्रदक्षिणा दी तथा उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। तत्पश्चात् वह उनसे दीक्षाकी प्रार्थना करने लगा। जब आचार्य विमल वाहनने सुदर्शनका जिनदीक्षाके प्रति उत्कट निश्चय देखा तो उन्होंने इसे दैगम्बरी दीक्षा दे दी।

इधर जब अभया महादेवीको इस सातिशय घटनाका समाचार मिला और उसे मालूम हुआ कि सुदर्शनकी देवों तकने पूजा की तथा वह दीक्षा भी ले गया है तो उसका सारा शरीर भयसे काँपने लगा। उसने फांसी लगा ली तथा मर कर वह पाटलिपुत्र नगरमें व्यन्तरी हुई।

पंडिता धात्री भी राजाके भयसे शीघ्र ही चम्पापुरी-से भागकर पटना जा पहुंची। धात्री पाटलिपुत्रकी समस्त गणिकाओं तथा नगरकी समस्त स्त्रियोंसे अपने स्वदेश त्याग-की कथा तथा सुदर्शनकी कथा कहती हुई और प्रतिदिन अपनी निन्दा तथा गर्हा करती हुई देवदत्ता वेश्याके यहां रहने लगी। पाटलिपुत्रकी जनता भी धात्रीकी बात सुनती और मनमें बहुत ही आश्चर्य करती। इसने वहांके जन समूहको सुदर्शन मुनिके दर्शनके लिए इतना उत्सुक कर दिया कि वह बड़ी ही उत्कण्ठा-के साथ इनके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगा।

एक समयकी बात है। अत्यन्त धीरात्मा सुदर्शन महाराज विहार करते करते पाटलिपुत्र नगरमें आपहुँचे। सुदर्शन मुनिराज-का शरीर अनेक प्रकारके उपवासोंसे खिन्न हो चुका था और केवल हाड चर्म मात्रही शेष रहा था। एक दिन पण्डिता धात्री-

ने इन्हें पारणाके लिए राजमार्गसे जाते हुए देखा। वह देवदत्ता से कहने लगी—सुन्दरी, जिस मानवात्माके कारण मैं नष्ट हुई, उस साधुको तो देखो।

धात्रीकी बात सुनकर देवदत्ता कहने लगी-'पण्डिते, महादेवी और कपिलामें से कोई भी न कामशास्त्रकी पंडिता थी, न काम-कलाविशारद थी और न मनुष्योंके मनकी पारखो थी। तुम देखो, मैं अभी अभी इस मुनिके चित्तको विक्षुब्ध करती हूँ। धात्रीसे इतना कहकर देवदत्ताने अपनी चेटीको बुलाया और उससे कहा कि तू जाकर इन मुनिराजसे कह कि भगवन्, आज आप हमारे घर भोजन कीजिए। चेटीकी प्रार्थना-पर मुनिराज देवदत्ताके घर आगए।

ज्यों ही सुदर्शन मुनिराजने देवदत्ताके घरके भीतर कदम रक्खा उसने दोनों किवाड़ लगवा दिये और वह तीन दिन तक इन मुनिराजके ऊपर भयंकर उपसर्ग करती रही। परन्तु उस समय सुदर्शन मुनिने अपने मनको इतना आत्माभिमुख कर लिया कि यह निश्चय करना कठिन होगया कि यह काठके बने हुए हैं अथवा मिट्टी या पत्थरके। देवदत्ताने उस समय शतशः अपने हाव-भावोंका विलास दिखलाया, परन्तु सुदर्शनका चित्त जरा भी विक्षुब्ध न हो सका।

जब देवदत्ताने देखा कि सुदर्शन मुनिराज इतने पर भी स्थिर चित्त, गंभीर और गुणसागर बने हुए हैं तो उसे बड़ा ही भय लगा और वह अपने दूषित अभिप्रायकी निन्दा करने लगी। वह रात होते ही मुनिराजको श्मशान ले गई और अपने मुरझाये हुए मुख-कमलको लेकर घर आगई।

सुदर्शन मुनिराज ज्यों ही महा भयंकर स्मशान भूमिमें पहुँचे, उन्होंने चार प्रकारके आहारका त्यागकर दिया और रात-में कायोत्सर्ग लगाकर ठहर गये। वहाँ महादेवी अभयाके जीवने

जो मरकर व्यन्तरी हुई थी, सुदर्शनको पहिचान लिया और लगातार सात दिन तक उनके ऊपर भयंकर उपसर्ग किया। सात दिनके पश्चात् सुदर्शन मुनिराजने घातिया कर्मोंको क्षय किया और उन्हें समस्त पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला केवलज्ञान प्रकट होगया।

केवल ज्ञान प्रकट होते ही तीर्थङ्करकी तरह सुदर्शन मुनीन्द्रके भी आठ प्रातिहार्य और चौतीस आतिशय प्रकट हो गये। केवल इतना ही अन्तर है कि मुण्ड केवलीके तीन छत्र, प्राकार, सिंहासन और समवसरणकी विभूति नहीं रहती है। मुण्ड केवलीके केवल दो ही विभूति होती हैं—एक तो चन्द्रमाकी तरह शुभ्र एक छत्र और दूसरे मनोहर भद्रपीठ। साधारणतया बारह गण भी होते ही हैं। इस प्रकार जब सुदर्शन मुनिराजको लोक और अलोकका साक्षात्कार करने वाला केवलज्ञान प्रकट होगया तो देव-समूह इनकी स्तुति बन्दनाके लिए आने लगा। इस बीच देवदत्ता, धात्री, व्यन्तरी और समस्त पुरवासी जनता बड़ी भक्तिके साथ केवलीके निकट आई। जब सुर, नर आदि समस्त देहधारी अपने अपने समुचित स्थान पर बैठ गये तो केवल ज्ञानरूपी निर्मल नेत्र वाले सुदर्शन योगीन्द्र इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे—

'भव्य जीवों, धर्मसे ही रूप सम्पत्ति मिलती है और धर्मसे ही उत्तम कुलमें जन्म मिलता है। धर्मसे ही धनसम्पत्ति मिलती है और धर्मसे ही निर्मल यश मिलता है। धर्म चिन्तामणिके समान है, धर्म ही कामधेनुके सदृश है। और धर्म ही समस्त प्राणियोंको वशमें करने वाला उत्तम वशीकरण है।

जो मनुष्य मानव तन पाकर भी धर्म नहीं करता है, वह निधि पाकर भी आँखोंसे अन्धा है। संसार परिभ्रमण करने वाले प्राणी पापसे ही नरकमें जाते हैं। और पापसे ही

उन्हें तिर्यञ्च गतिमें जन्म लेना पड़ता है। इसके विपरीत दानसे भोग-सम्पत्ति मिलती है, तपसे स्वर्ग मिलता है और ज्ञानसे समस्त कर्मोंका क्षय स्वरूप मोक्ष मिलता है।

पूर्व वर्णित व्यन्तरी, देवदत्ता वेश्या, पण्डिता धात्री तथा अन्य उपस्थित प्राणियोंने सुदर्शन केवलीका धर्मोपदेश सुना तो सबको ही बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्हींने भक्ति पूर्वक श्रावक धर्म अङ्गीकार किया और किन्हींने सम्यक्त्व धारण किया। कुछ लोगोंने जो संसारसे एकदम त्रस्त हो चुके थे, समस्त परिग्रह छोड़ दिया और वे अपने पुत्रोंको धन-सम्पत्ति सौंपकर दिगम्बर साधु बन गये।

केवलज्ञानी सुदर्शनने देशान्तरमें विहार करते हुए धर्मोपदेश दिया और अन्तमे वह समस्त कर्मोंका नाश करके मोक्ष चले गये। इस प्रकार सुदर्शन योगीन्द्र, जो भवान्तरमें सुभग गोपाल थे, जिनेन्द्र भगवान्‌के नमस्कारके फलसे ही शाश्वत निर्वाण पदको प्राप्त हुए। कहा भी है :–

"साध्येनाऽपि नमस्कारं यः करोति जिनेश्वरे।
स निस्तरति संसारं किं पुनः परमार्थतः॥"

अर्थात्–जो बाह्यरूपसे भी जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करता है, वह भी संसारसे पार हो जाता है, फिर जो परमार्थसे उनको नमस्कार करता है, उसका संसार तो एकदम आसन्न ही समझना चाहिए।

इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार करनेवाले सुभग गोपालका कथानक समाप्त हुआ



६१. यम मुनिकी कथा

उण्ड्रदेशमें धर्मपुर नामका नगर था। इस नगरके राजाका नाम यम था और इसकी पत्नीका नाम धनदमति था। इन दोनोंके एक पुत्र था, जिसका नाम गर्दभ था, तथा एक पुत्री थी, जिसका नाम कोणिका था।

कोणिकाके सम्बन्धमें निमित्तज्ञने बतलाया था कि जो व्यक्ति इस सुकुमार कन्याको विवाहेगा वह निष्कंटक होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका उपभोग करेगा। जब यमको ज्योतिषीकी इस भविष्यवाणीका पता चला तो उसने कोणिकाको एक तलघरेमें रख दिया और कन्याको इस स्थानमें रखनेका किसीको भी पता न चलने दिया।

राजा यमकी अन्य भी बहुत सी कान्तिशाली स्त्रियां थीं और उनसे बहुत ही रूपवान् पाँचसौ पुत्र थे।

यमके मन्त्रीका नाम दीर्घक था, जो बहुत ही सुप्रसिद्ध था और राजा भी लौकिक तथा अलौकिक समस्त शास्त्रोंका अखण्ड पण्डित था। यमको अपने ज्ञानका बड़ा ही अहंकार था। उसकी आज्ञा निर्बाध मानी जाती थी और उसका तेज बहुत ही उग्र था। इसका शील यमके समान सतेज था और इसने समस्त शत्रुओंको अपने अधीन कर रक्खा था। इस प्रकार राजा यम बड़े मान और वैभवके साथ अपने नगरमें रहता हुआ राज-काज करता था।

एक दिनकी बात है। सुधर्माचार्य अपने पांच सौ शिष्योंके साथ विहार करते हुए धर्मनगरमें आये। जब धर्मपुरके श्रावकोंको आचार्य-संघके आगमनका समाचार मिला तो वे चंदोवा और ध्वजा आदि पूजाकी सामग्री लेकर मुनिवन्दनाके लिए चल दिए। ज्यों ही यह वृत्तान्त राजा यमके पास पहुँचा, उसे बड़ा ही अहंकार हुआ। वह मुनियोंकी निन्दा करने लगा।

और इस प्रकार मुनि निन्दा करता हुआ ही मुनिराजके निकट चल दिया।

जैसे ही वह मुनियोंकी निन्दा करता हुआ जाता था, तत्क्षण उसका सम्पूर्ण ज्ञान और बुद्धि विलीन हो गई। इस तरह यमका जब सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो चुका तो उसका ज्ञान सम्बन्धी अहंकार भी गलित होगया और अब मुनियोंके पास पहुंचते ही उसके शरीरमें भक्तिसे रोमाञ्च हो आया।

राजा यमने मुनियोंकी तीन प्रदक्षिणा दी और बड़ी ही भक्तिके साथ उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् वह सुधर्माचार्य द्वारा प्रतिपादित जैनधर्मका हृदयहारी व्याख्यान सुनने लगा। इस व्याख्यानसे उसके अन्तस्में वैराग्यकी नदी उमड़ आई।

राजा यमने अपने गर्दभ नामके पुत्रको बुलवाया और समस्त राजाओंकी उपस्थितिमें उसे राज्यका पट्ट बांध दिया। तदनन्तर उसने अपने पाँचसौ पुत्रोंके तथा अन्य नरेशोंके साथ सुधर्माचार्यके निकट जैन दीक्षा ले ली। जब यम इस प्रकार दीक्षित होकर साधु हो गया तो उसके समस्त पुत्र थोड़े ही समयमें ग्रन्थोंके तथा तत्त्वोंके पारगामी पंडित हो गये। परन्तु यमका यह हाल था कि वह चर्यासम्बन्धी उठने बैठनेके नियमोंके सिवाय और कुछ जान ही न पाया।

यमने अपनेको जब इस प्रकार ज्ञानाभ्याससे विहीन देखा तो उसके मनमे बड़ा ही विराग हुआ। उसने सोचा कि अपनी इस प्रकारकी स्थितिमें मुझे एक क्षणके लिए भी इस संघमें नहीं रहना चाहिए। यह सोच कर उसने अपने गुरु महाराजसे संघ छोड़ कर चले जानेके सम्बन्धमें बार बार कहा। जब आचार्य महाराजने भी इसका तीव्र आग्रह देखा तो इसे संघ छोड़ कर चले जानेकी आज्ञा दे दी। इस प्रकार यम मुनिराज संघ छोड़कर एकाकी विहार करते हुए पूर्व देशमें आये।

एक दिन वह विहार करते हुए जारहे थे कि उन्हें एक ऐसा आदमी दिखलाई दिया जो एक गाड़ीमें बैठा हुआ था, जिसे दो खच्चर खींच रहे थे। गाड़ी जौके खेतमेंसे जा रही थी, खच्चर जौ खानेको झपट रहे थे और आदमी उनकी डोरें खींचता हुआ उन्हें पीट रहा था।

योगीराजको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने तत्काल एक खण्डित श्लोकको रचना कर डाली। रचना इस प्रकार थी:–

" तरामाकर्षणोऽसि त्वं भूयोऽपि प्रतिकर्षणः।
लक्षितस्ते मया भावो यवं गर्दभ याचसे ॥ "

अर्थात्–'हे खच्चर, तुम्हारा आकर्षण यथार्थ है ; परन्तु आदमी तुम्हें खींच लेता है और तुम अपनी इच्छाकी पूर्ति नहीं कर पाते हो'।

यम मुनिराज इस श्लोकका पाठ करते हुए ही देवताकी स्तुति करते, और इसका पाठ करते हुए ही वह अपनी प्रतिदिनकी समस्त स्वाध्याय आदि क्रियाएँ करते तथा इस प्रकार खूब ही प्रसन्न रहते।

एक दूसरे दिनकी बात है। यम मुनिराज विहार करते हुए रास्तेसे जारहे थे कि उन्होंने कोणिकाके साथ क्रीड़ा करते हुए कुछ कुमारोंको देखा। यमने इस वार भी एक खण्ड श्लोककी रचना इस प्रकार की:–

" आधावन्तः प्रधावन्तः संधावन्तो मतं मया।
मन्दवुद्धिसमायुक्ता छिद्रे पश्यत कोणिकाम् ॥ "

अर्थात्–'मैंने इन मन्द बुद्धि कुमारोंको इधर-उधर दौड़ते हुए और आते हुए देखा। और पापमें पड़ी हुई कोणिकाको देखो'।

विशुद्ध हृदय यम मुनिराज अब इन दो पद्योंका पाठ करते हुए ही बड़ी भक्तिके साथ अपनी समस्त बन्दना आदि दैनिक क्रियाओंको किया करते।

एक तीसरे दिनकी घटना है। यम योगीन्द्र विहार करते हुए जा रहे थे कि उन्हें संध्याके समय एक जाता हुआ बानर दिखलाई दिया। यम साधुने बड़े ही प्रयत्नसे एक श्लोककी फिर रचना कर डाली। वह रचना इस प्रकार थी:–

" विषाणनालशीताङ्ग सन्ध्यायां मा व्रज क्वचित्।
बुभुक्षाग्रस्तचेतस्काद्दीर्घात्ते दृश्यते भयम्॥"

अर्थात्–'हे वानर, तुम कमलके नालकी तरह ठंडी सन्ध्यामें अब कहीं न जाओ। तुम्हारा दीर्घ मन जो भूखसे पीड़ित हो रहा है उससे भय है'।

योगिराज यम प्रतिदिन इन तीनों पद्यों द्वारा ही बड़े भक्ति भावके साथ अपनी प्रतिदिनकी स्वाध्याय आदि क्रियायों-का पालन करने लगे।

एक दिन विहार करते हुए वह एक सुन्दर गाँवके बीचसे निकले। इन्होंने उस गाँवमें एक इस प्रकारकी विशाल बावड़ी देखी, जिसमें पत्थरकी सीढ़ियां लगी हुई थीं। यम मुनिराजने देखा कि इन पत्थरकी सीढ़ियोंमें कुछ गड्ढे बने हुए हैं। वे इन गड्ढोंको देख कर बहुत आश्चर्यमें पड़े।

इसी समय एक स्त्री दो घड़े लेकर पानी भरने आई। यम उससे पूछने लगे–कोणिका, बतलाओ तो इन पत्थरकी सीढ़ियोंके बीच ये गोल-गोल पंक्तिबद्ध गड्ढे क्यों और कैसे बने हुए हैं?

जब उसने मुनिराजकी यह सीधी-सादी बात सुनी तो उसे मालूम हुआ कि यह बिलकुल ही भोले हैं और तब वह बड़े ही कौतुकके साथ उनसे कहने लगी–स्वामिन्! नगरकी

स्त्रियां इन स्थानोंपर जलसे भरे हुए विशाल घड़े रखती हैं और यह पद्धति वहुत पुराने समयसे चली आरही है, इसी लिए इन पत्थरोंमें भी इतने गहरे गड्ढे पड़ गये हैं।

जब योगिराज यमने यह रहस्य सुना तो उनके मनमें बड़ा ही विस्मय हुआ। उन्होंने तत्काल ही एक पद्यकी रचना कर डाली और उसे बार-बार पढ़ने लगे। रचना इस प्रकार थी:—

"तिष्ठता गच्छताऽन्येन मृदुना कठिनोऽपि च।
भिन्नो ग्रावापि कालेन नित्यस्थेन घटेन सः॥"

'देखो, आते जाते हुए मृदुल और नित्य घटने भी समय पाकर कठोर पत्थर फोड़ दिया'।

इस प्रकार श्लोक-पाठ करके यम मुनिराजके मनको वहुत ही विस्मय हुआ। वे विचारने लगें, क्या हमारे कर्म इस पत्थरसें भी कठोर हैं जो मैंने बन्ध और मोक्षको दिखलाने वाले आचार्यं महाराजको छोड़ दिया और इस अधार्मिक तथा अनुचित एकाकी विहारको अपना लिया। यम साधु इस प्रकार वहुत देर तक सोचते रहे और तत्पश्चात् वे अपने गुरु महाराजके निकट चल दिये। चलते चलते वें गहन वृक्षावलीसे सघन धर्मपुरके निकट ठहर गये। वहीं रात होगई। और इस समय जो दीर्घक और गर्दभने यमको यहां ठहरा हुआ देखा तो वे एक भयंकर तलवार लेकर इन्हें मारनेके लिए आ पहुंचे। ज्यों ही दीर्घक तलवार निकालकर इन्ह मारनेके लिए उद्यत हुआ, वह मुनि-वधसें डर गया और उसने अपनी तलवार म्यानमें रख ली। जब गर्दभका नम्बर आया तो उसका भी यही हाल हुआ। इतनेमें मुनिराजका स्वाध्यायका समय होगया, वे इस प्रकार श्लोक-खण्डका पाठ करने लगे—

"आकर्षन्तौ प्रकर्षन्तौ स्वमतं क्रूरमानसौ।'

अर्थात्—दो क्रूर हृदय जीवोंने पहले तो पाप करना चाहा परन्तु बादमें शान्त रह गये।

जब गर्दभने मुनिराजका यह पाठ सुना तो वह सामने खड़े हुए दीर्घंकसे कहने लगा—हे महामते, इस मुनिने हम दोनोंको ही पहिचान लिया है। दोनोंको बड़ी ही शङ्का हुई और वे परस्पर-में एक दूसरेको देखते हुए खड़े रह गये।

जब दीर्घंक और गर्दभ योगिराज यमकी बातका उत्तर न देकर बिलकुल चुप रह गये तो योगी यम एक दूसरे खण्ड श्लोकका पाठ करने लगे:—

'आधावन्तौ प्रधावन्तौ किञ्चिदेतौ समीपगौ'।

अर्थात्—आते हुए और दौड़ते हुए दोनों ही अब पासमें आगये हैं।

यह सुनकर गर्दभका शरीर भयसे काँप गया और वह दीर्घंकसे कहने लगा—दीर्घंक, तुमने तो यह बतलाया था कि यह मुनिराज इसलिए यहाँ आये हैं कि हम दोनोंको मार डालेंगे और हमारा राज्य छीन लेंगे। सो दीर्घंक, यह हमारा राज्य अपहरण करने नहीं आये हैं। यह तो मेरी बहिन कोणिकाको समझाने आये हैं।

इस प्रकार सुनकर भी जब दीर्घंक चुप रहगया तो योगिराज-ने तृतीय श्लोकका खण्ड पढ़ना शुरू कर दिया।

"मृणालनालशीताङ्ग नक्तं मा याहि दर्दुरे"।

अर्थात्—हे कमल नालकी तरह शीतल शरीर वाले मेंढ़क तुम रातमें मत जाओ।

गर्दभने यह श्लोक-खण्ड सुना और मौन रह कर इस प्रकार विचार करने लगा—यह दीर्घंक नामका मन्त्री बड़ा ही धूर्त है और मन्त्री नहीं कुमन्त्री है। यह उद्धत है, स्वार्थी है, क्रूर है, और वञ्चक है। मैं इसे अब अच्छी तरह समझ गया। दूसरे आदमीके साथ सैकड़ों उपकार करो, उसके साथ कितना ही रहो और उसे कितना ही मानो, परन्तु उसे कभी भी अपना

नहीं बनाया जा सकता, क्यों कि आखिर पराया पराया ही है। हमारे पिता इस साधु अवस्थामें रहकर भी पुत्रके स्नेहके कारण ही हमें शिक्षा देनेके लिए यहाँ आये हुए हैं। ठीक है, पिताके लिए पुत्र बहुत ही प्रिय होता है। गर्दभ इस प्रकार विचार करके अपनी पितृ-भक्तिसे प्रेरित होकर मुनिराजके पास पहुँचा। उसने भक्ति पूर्वक मुनिराजकी वन्दना की और उनसे अपने अपराधकी क्षमा मांगी। तत्पश्चात् वह जैनधर्मको स्वीकार करके दीर्घके साथ घर लौट आया।

इधर योगिराज यम भी अपने गुरुमहाराजके निकट पहुँचे और उनके पासमें रहकर बड़े ही आदरके साथ घोर तपस्या करने लग। इस प्रकार तपस्या करते करते यम मुनिराज-को अनेक ऋद्धियोंकी प्राप्ति हो गई।

जिनागममें पदानुसारिणी बुद्धि, कोष्ठबुद्धि और संभिन्न-श्रोतृका आदि बुद्धियां बतलाई हैं। उग्र तप, दीप्त तप, तप्त तप, महातप और घोर तप इत्यादि प्रकारके तपोंका भी जिनागममें विधान है। अणिमा, महिमा, प्राप्ति, वशित्व, कामरूपिता, गरिमा, ईशिता और वीर्य इस प्रकार ये आठ लब्धियाँ हैं। विद्वानोंने आठ चारण लब्धियां भी बतलाई हैं, जो अपने अपने स्वरूपके अनुसार फल देनेवाली हैं। वे चारण लब्धियां इस प्रकार है :—

जल लब्धि, तन्तु लब्धि, जंघालब्धि, बीजलब्धि, पुष्पलब्धि, फल लब्धि, आकाश लब्धि और श्रेणिलब्धि। तथा आमौषधि खेलौषधि, मलौषधि, जल्लौषधि और सर्वौषधि ये भी पाँच लब्धियां हैं। विद्वानोंने चार रस-लब्धियां भी बतलाई हैं और वे इस प्रकार हैं :—अमृतलब्धि, क्षीर लब्धि, मधु लब्धि और घृतलब्धि। इसके सिवाय औषधिकी (?) अक्षीणता तथा आहार-की अक्षीणता इस प्रकार ये दो अक्षीण महानस लब्धियां हैं।

योगिराज यमको ये समस्त ही ऋद्धियां प्राप्त हो चुकी थीं।

इस प्रकार उन्होंने धर्मनगरके निकटवर्ती कुमार पर्वतके शिखर-पर विराजमान होकर पांचसौ मुनियोंके साथ श्रमणधर्मका विधिवत् पालन किया और अन्तमें चार प्रकारकी आराधनाका आराधन करके वह स्वर्ग सिधार गये।

इस प्रकार तीन खण्डित श्लोकोंके स्वाध्याय
करनेमें निरत रहने वाले यम मुनिराज-
के स्वर्ग-गमनको बतलाने वाला
यह कथानक सम्पूर्ण हुआ।

——०○—-—

६२. दृढ़सूर्य चोरकी कथा

अवन्ती देशमें उज्जयिनी नामकी समृद्ध नगरी है। इस नगरीमें धनपाल नामका राजा रहता था। धनपाल बड़ा ही प्रतापशाली था। इसकी पत्नीका नाम धनमती था। धनमती धनपालके मन और नेत्रोंको बहुत ही प्रिय थी। उसके स्तन उन्नत थे और नेत्र कमल-दलके समान सुन्दर।

इस राजाका एक सेठ था, जिसका नाम धनदत्त था। धनदत्त बहुत ही धन-सम्पन्न था। इसकी पत्नीका नाम धनदत्ता था। धनदत्ताका शरीर रूप-राशिसे निखर रहा था और वह बड़ी ही पतिव्रता थी।

इसी नगरमें दृढ़सूर्य नामका चोर रहता था। इसकी पत्नी-का नाम वसन्तसेना था, जो वेश्या थी। दृढ़सूर्य उससे बहुत ही प्रेम करता था।

एक दिनकी बात है। रानी धनमती मनोहर उद्यान में आई हुई थी। वसन्तसेनाने इसके गलेमें पड़े हुए सुन्दर हारको देखा तो उसके लिये वह बहुत ही दुखी हुई।

जब दृढ़सूर्यने वसन्तसेनाको खिन्नमन देखा तो वह

उससे पूछने लगा—देवि, तुम आज दुखित क्यों हो ? और क्यों इस प्रकार अप्रसन्न मनसे बैठी हुई सोच कर रही हो ?

दृढ़सूर्यकी बात सुनकर वसन्तसेना कहने लगी—देव, धनमती रानीका हार देखकर ही मैं कर्त्तव्य-विमूढ़ होगई हूँ और इस कारण ही मेरा मुख-कमल मुरझाया हुआ है। सो यदि तुमने आज धनमतीका हार लाकर मुझे नहीं दिया तो विश्वास रक्खो, मैं बहुत शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ दूँगी।

दृढ़सूर्यने वसन्तसेनाकी बात सुनी और वह कहने लगा—भद्रे, तुम जरा भी शोक और दुख मत करो। मैं तुम्हें अवश्य आज हार लाकर दूँगा। उसने वसन्तसेनासे इतना कहा और रात होते ही वह रानीके महलमें जा पहुँचा। उसने रानीके गलेमेंसे हार उतार लिया और ज्यों ही वह उस मणिमय हारको लेकर चला, हारकी जगमगाती हुई ज्योतिसे आकाश चमक उठा और महलसे निकलते ही दृढ़सूर्यको यमपाल नामके कोतवालने पकड़ लिया।

प्रभात हुआ और राजाके आज्ञानुसार यमपालने दृढ़सूर्य चोरको शूलीपर चढ़ा दिया। ठीक इसी समय धनदत्त सेठ जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना करके लौट रहा था। दृढ़सूर्यने इसको देखा और देखते ही कहने लगा—"हे धनदत्त सेठ, तुम कुलीन श्रावक हो, दयावान् हो और सज्जन हो। मुझे इस समय बड़े जोरकी प्यास लग रही है। यदि मुझे थोड़ा पानी पिला सको तो बड़ी कृपा होगी।"

जब धनदत्तने देखा कि दृढ़सूर्य शूलीपर चढ़ा हुआ है और प्यासके मारे उसका मन छटपटा रहा है तो उसका हृदय दयार्द्र हो उठा और वह दृढ़सूर्यसे कहने लगा—"देखो दृढ़सूर्य, मुझे समस्त प्राणियोंपर दया करने वाले गुरुराजकी बारह वर्ष तक सेवा करनेके बाद आज ही एक महान मन्त्र हाथ लगा है। सो यदि मैं तुम्हें पानी लेने जाता हूँ तो बारह वर्षकी सेवाके फलस्व-

रूप प्राप्त किया गया यह मन्त्र भूला जाता हूँ। इसलिए यदि तुम इस महामन्त्रको भावपूर्वक कण्ठस्थ रख सको तो मैं तुम्हें ठंडा पानी पिला सकता हूँ।"

दृढ़सूर्य बोला—हे प्राणियोंपर दया करने वाले सेठ ! आप वह मन्त्र मुझे जल्दी ही बतला दीजिए। धनदत्त सेठने इस मरणासन्न दृढ़सूर्यको महामन्त्र बतला दिया और आप पानी लेने चल दिया।

इस महामन्त्रका जाप करते करते ही दृढ़सूर्य मर गया और मरकर वह इस मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ जहाँ दिव्य दुन्दुभियोंकी गंभीर ध्वनि हो रही थी और सुन्दर देवाङ्गनाएं विद्यमान थीं। उधर धनदत्त चोरको पञ्च-नमस्कार मन्त्र देकर सेठ अनेक मुनियोंसे विराजमान चैत्यालयमें जा पहुँचा।

ज्यों ही धनपाल नरेशको खबर लगी कि धनदत्तका दृढ़सूर्य चोरके साथ सम्बन्ध है तो उसने धनदत्तके मकानको लूटना प्रारंभ कर दिया।

दृढ़सूर्यके जीवने प्रथम स्वर्गमें पहुँचकर अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवका पता लगाया तो उसे अपने पूर्वजन्मका समस्त वृत्तान्त मालूम हो गया और उस समय उसे यह भी मालूम हुआ कि धनपाल राजा धनदत्तके ऊपर महान् उपसर्ग कर रहा है। यह जान कर इसे बड़ा ही क्रोध हो आया और वह तुरन्त ही चलकर धनदत्तके मकानपर आ पहुंचा।

पूर्वभवके दृढ़सूर्यके जीव देवने धनदत्तके घर आये हुए धनपालके समस्त अनुचरोंको अपनी मायाके बलसे गिरा दिया। उसने एक आदमीके नाककान काट डाले, उसका सिर मूड़ दिया और इस प्रकारकी अवस्थामें उसे धनपालके पास भेज दिया।

यह आदमी सभा भवनमें बैठे हुए धनपालके निकट पहुंचा। इसका सारा शरीर भयसे कंप रहा था। धनपालने इस

आदमीको देखा और पूछा—भद्र, बतलाओ, तुम्हारी किसने यह दशा की है ? मैं उसे अभी हाल यमराजके यहाँ भेजता हूँ।

इस सुभटका मन भयसे बहुत ही व्याकुल हो रहा था। वह टूटे-फूट शब्दोंमें बोला—'राजन्, धनदत्तके मकानके दरवाजे-पर एक आदमी बैठा हुआ है। उसका शरीर स्याहीके समान काला है और आँखे गुमचीके समान लाल-लाल हैं। उसने अपनी लाठीसे आपके द्वारा भेजे गये समस्त पुरुषोंको मार डाला है और उसने ही मेरी यह अवस्था कर दी है।'

ज्यों ही राजाने यह समाचार सुना, उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। उसने शीघ्र ही अपनी चतुरङ्ग सेना भेज दी। जैसे ही यह सेना पूर्व भवके दृढ़सूर्य देवके पास आई, उसने तत्क्षण उसे पृथ्वी पर दे पछाड़ा।

जब राजाको खबर लगी कि उसकी समस्त चतुरङ्ग सेना मार डाली गई, तो वह तुरन्त ही अपनी निजी सैन्य साथ ले उसके निकट जा पहुँचा। दृढ़सूर्य देवने राजाकी इस सेनाको भी तत्क्षण मार गिराया। इस प्रकार ज्यों ही धनपालने अपनी सेनाको पृथ्वी पर गिरते हुए देखा, उसका मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा और वह शीघ्र ही युद्धस्थलसे भाग निकला।

धनपालका सारा शरीर भयसे कांप रहा था। वह शीघ्र ही जिन मन्दिर पहुँचा और धनदत्त सेठको उसने नमस्कार किया। ज्यों ही वह धनदत्तसे इस घटना चक्रको सुनानेके लिए तैयार हुआ, इतनेमें वह देव भी जिनमन्दिर जा पहुँचा।

ज्यों ही देवने देखा कि धनपाल धनदत्तकी शरणमें जा पहुंचा है तो वह क्रोधसे अपने ओठ चबाता हुआ सेठसे कहने लगा। सेठजी ! आप अपने सामनें बैठ हुए इस राजाको शीघ्र ही छोड़ दीजिए, जिससे मैं आपके सामने ही अपने हाथसे इसे दण्ड दूं।

धनदत्त बोला–अरे भाई, बतलाओ तो तुम कौन हो और किस कारण राजासे इतने क्रुद्ध हो रहे हो ?

देवने कहा–"सेठ जी, मैं संसार-प्रसिद्ध दृढ़सूर्य नामका चोर हूँ। मैं इस राजाके महलमें हार चुराने घुसा था। हार लेकर जब वहाँसे निकला तो कोतवालने मुझे पकड़ लिया। मैं शूलीपर चढ़ा दिया गया। मुझे उस समय बड़ी ही तीव्र प्यास लग रही थी और उसके मारे मेरा मन छटपटा रहा था। सो आपके पाससे मुझे पञ्चनमस्कार मन्त्र मिला। मैंने इस पञ्चनमस्कार मन्त्रका ध्यान करते करते ही अपने प्राण छोड़े और आपके समागमके कारण मैं सौधर्म स्वर्गमें महर्द्धिक देव हो गया। श्रेष्ठिन्, जब मुझे अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवका वृत्तान्त मालूम हुआ और यह मालूम हुआ कि राजा आपसे रुष्ट होकर आपकी समस्त धन-सम्पत्ति लुटवा रहा है और आपको पीड़ा पहुँचाना चाहता है तो मैं आपके गुणोंसे आकर्षित होकर उस पीड़ाको दूर करनेके लिए यहां आया।"

देव कहता गया–"सेठ जी, मैंने इस राजाकी समस्त सेना मार डाली है,और अब इस राजाको मारनेको लिए यहाँ आया हूँ। अतएव आप इसे छोड़ दीजिए, मैं इसे अभी हाल सजा देता हूँ।"

देवताकी यह बात सुनकर धनदत्तको बड़ा ही विस्मय हुआ। वह देवसे कहने लगा– सज्जनोत्तम, अव तुम हमारे इस स्वामी-को छोड़ दो। तुमने हमारे प्रति खूब वात्सल्य दर्शाया।

धनदत्त सेठके इच्छानुसार देवने राजाको अभयदान दे दिया और उसने अपने देवत्वके बलसे समस्त सेनाको भी पूर्ववत् सजीव कर दिया, जिससे वह तुरन्त उठ बैठी।

जब धनपाल नरेशने यह अतिशय देखा तो उसे वड़ा ही वैराग्य हुआ। उसने अपनी सम्पूर्ण राज्य लक्ष्मी अपने पुत्रको सौंप दी और वह बड़ी ही भक्तिके साथ समस्त बन्धु-बान्धवोंसे

तथा सेठ धनदत्तसे पूछ कर जिनसेन मुनिराजके पास दीक्षित हो गया।

पूर्व भवके दृढ़सूर्य देवने धनदत्तकी सुवर्ण-कमलोंसे भक्ति पूर्वक पूजा की और वह स्वर्ग चला गया।

इस प्रकार दृढ़सूर्य चोरके शूलीपर चढ़ाने तथा पञ्च नमस्कार मन्त्रके स्मरण मात्रसे देवत्वकी प्राप्तिको बतलाने वाला यह कथानक समाप्त हुआ।

—:०:—

६३. अर्हद्दासकी कथा

भव्य जीवों, यहां एक विभिन्न प्रकारसे तथा संक्षेपसे अर्हद्दासका कथानक लिखा जाता है: जिसे आप लोग भाव-पूर्वक सुनिए—

शूरसेन देशमें उत्तर मथुरा नामकी नगरी है। इस नगरीमें उदितोदय नामका राजा रहता था। इसकी महादेवीका नाम उदिता था। उदिता बहुत ही रूपवती और सौभाग्यवती थी। इन दोनोंके एक पुत्र था, जिसका नाम प्रमुदितोदय था।

इस राजाने अपने प्रतापसे समस्त शत्रुनरेशोंको अपने अधीन कर लिया था। उदितोदयके एक मन्त्री था, जिसका नाम सुबुद्धि था और जो मन्त्रकलामें बहुत ही निपुण था।

तथा इस राजाका एक सेठ था, जिसका नाम जिनदास था। वह राजाको बहुत ही प्रिय था। जिनदासकी आठ पत्नियां थीं। उनके नाम इस प्रकार थे:—पहलीका नाम मित्रश्री था। दूसरीका नाम कुन्दश्री था। तीसरीका नाम विष्णुश्री था, जिसकी कान्ति लक्ष्मीके समान थी। चौथीका नाम नागश्री था, जो नागकुमारीकी तरह सुन्दर थी। पांचवींका नाम पद्मलता था। छठीका नाम कनकलता था। सातवींका नाम विद्युल्लता था। और आठवीं पत्नीका नाम कुन्दलता था।

इस नगरीमें एक स्वर्णखुर नामका महान् चोर रहता था। वह प्रतिदिन बड़ी-बड़ी चोरियां करता और उसीसे अपना निर्वाह करता था।

इस प्रकार सब लोग अपनी-अपनी मर्यादानुसार काल यापन कर रहे थे कि इतनेमें कामियोंके मनको प्रसन्न करने वाला कौमुदी महोत्सव आ उपस्थित हुआ।

कार्तिक महीनाके शुक्लपक्षमें अष्टमीसे लेंकर पूर्णिमा तक ही कौमुदी महोत्सवका माहात्म्य बतलाया गया है। सो इस महोत्सवके अवसरपर अष्टमीसे लेकर पूर्णिमा तक उत्तर मथुरा पुरीकी समस्त नारियां प्रमद वनमें जातीं और राज पुरुषोंसे रक्षित होकर खूब ही स्वच्छन्द क्रीड़ा किया करतीं।

जब कौमुदी महोत्सवका समय निकट आगया तो अपने सुयशके कारण समस्त संसारमें सुप्रसिद्ध और नीतिज्ञ राजाने अपने नगरमें कौमुदी महोत्सव मनानेकी मुनादी पिटवा दी और सूचना करा दी कि इन क्रीड़ा करती हुई नारियोंके बीचमें जो कोई पुरुष प्रवेश करेगा, भले ही वह हमारा लड़का ही क्यों न हो, उसे प्राण दण्ड दिया जावेगा। और इस समय पुरुषोंका कर्त्तव्य होगा कि वे नगरके अन्दर ही रहें और यहाँका कार्यक्रम सम्पन्न करें।

उदितोदय राजाने इस प्रकार कौमुदी महोत्सवकी घोषणा तो करा दी, परन्तु उसे महादेवीका विरह सताने लगा। उसका मन कामसे विह्वल हो गया और वह मन्त्रीसे कहने लगा—"मन्त्रिन्! मेरे मनमें कौतुक उत्पन्न हो रहा है कि मैं प्रमद वनमें जाकर कौमुदी महोत्सवके अवसरपर क्रीड़ा करती हुई स्त्रियोंको देखूं।"

जब महामति सुबुद्धि मन्त्रीने राजाकी यह बात सुनी और उसे महादेवीके दर्शन करनेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित पाया तो वह कहने लगा—"राजन्, आपने स्वयं ही इस प्रकारकी

घोषणा कराई है कि किसी भी पुरुषको इन स्त्रियोंके बीचमें नहीं जाना चाहिए। यदि आप स्वयं ही वहां पहुँच जावेंगे तो आप अपनी प्रतिज्ञाको अपने आप ही भङ्ग करेंगे और इस तरह आपका बड़ा ही अपयश फैलेगा। राजन्! आपने प्रतिज्ञा की है, आप अनेक गुणोंके समुद्र हैं और समस्त राजाओंमें प्रधान हैं। इस लिए आपका प्रमदवनमें स्त्रियोंके बीच जाना किसी भी तरह समुचित नहीं है।"

राजाने मन्त्रीकी यह हितकर वात सुनी, फिर भी वह कहने लगा—महामतिशाली मन्त्रिन्, मुझसे महादेवीका विरह सहन नहीं किया जा सकता। मै अवश्य ही वहाँ जाऊँगा।

राजाका अविचल आग्रह देख कर मंत्री बोला—राजन्, मैं आपको एक घटना सुनाता हूँ। आप इसे ध्यानसे सुनिए।

"कुरुजाङ्गल देशमें हस्तिनागपुर नामका एक नगर था। इस नगरका राजा सुयोधन था। सुयोधनके एक पत्नी थी, जिसका नाम धनदत्ता था। इसके एक मन्त्री था, जिसका नाम सुमित्र था। एक पुरोहित था, जिसका नाम सोमशर्मा था। और एक कोतवाल था, जिसका नाम यमपाश था।

एक दिनकी बात है। सुयोधन अपने कुछ शत्रुओंपर चढ़ाई करनेके लिए परदेश गया और यमपाशको राजकार्यका भार सौंप गया। जब वह शत्रुओंको जीतकर वापिस आया तो समस्त पुरवासी जनसमूह उसके दर्शन करनेक लिए आया।

जब राजाने अपने सामने बैठी विशाल जनता देखी तो वह महाजनोंसे पूछने लगा—महाजनो, आपलोग अच्छी तरहसे रहे ना? कभी किसी प्रकारकी तकलीफ तो नहीं हुई?

राजाकी बात सुनकर सभी महाजन कहने लगे—राजन्, आपके आरक्षक यमपाशके प्रसादसे हम सब लोग बड़े ही आनन्दके साथ रहे।

पुरवासी महाजनोंकी बात सुन कर सुयोधन महाराजको बड़ा क्रोध आया। वह सोचने लगा—'देखो, समस्त ही पुरवासी जनता और महाजन आरक्षक यमपाशकी ही गुणगाथा गाते हुए उसके प्रसादसे ही अपनी कुशलता बतला रहे ह, हमारे प्रसाद और उपकारका तो इन लोगोंको बिलकुल ही ध्यान नहीं रहा है।'

इस प्रकार यमपाशके साथ ईर्ष्या रखनेके कारण राजाने पुरोहित और मन्त्रीको मिलाकर कोतवालके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। इन तीनोंने मिल कर रातमें राजखजाना खोद डाला और इसमेंसे मूल्यवान् रत्न निकाल कर अन्यत्र रख दिया। तदनन्तर राजाने यमपाश कोतवालको बुलवाया और उससे खजानेके लूट जानेका वृत्तान्त सुनाया।

यमपाशको यह समाचार सुनकर बहुत ही डर लगा। वह तुरन्त ही खजानेके स्थानपर पहुँचा और उसे वहाँ रक्खी हुई अंगूठी, यज्ञोपवीत और मणिमय खड़ाऊँ दिखलाई दी। वहाँ इन तीनों चीजोंको देख कर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसने इन तीनों वस्तुओंको उठा लिया और भयभीत होता हुआ अपने मकानपर चला आया।

इसके बाद राजाने पुनः यमपाशको अपने पास बुलवाया और क्रोधसे लाल-लाल आँखें दिखलाते हुए वह कहने लगा—"रे दुष्ट, तू दूसरोंके मकानों और रत्नोंकी तो बड़ी सावधानीके साथ रक्षा करता है, परन्तु हमारे महल और धनकी इतनी सावधानीके साथ क्यों रक्षा नहीं करता है? अब तेरी कुशल इसीमें है कि तू सात दिनके भीतर चोरी गये हुए द्रव्यको और चोरको हमारे सामने उपस्थित कर दे। यदि तूने यह नहीं किया और इसमें जरा भी असावधानी की तो मैं तुझे अपनी इस तलवारसे सजा दूंगा।"

राजाकी यह आज्ञा सुन कर कोतवालका मन असमंजस-में पड़ गया। उसने राजासे कहा–'अच्छी बात है। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' और इतना कह कर वह राजाके पाससे चल दिया।

राजाके निकटसे चल कर यमपाश नगरीके महाजनों-आदिके पास पहुंचा। उसका सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था। उसने इन महाजनोंसे कहा कि मैंने चोरका पता लगा लिया है। आप लोग बड़े ही स्नेही हैं, सज्जनोंकी सेवामें तत्पर रहते हैं और दयालु हैं। इसलिए आप लोगोंका कर्तव्य है कि आप इस असह्य संकटके समय हमारी सहायता करें। इस अवसरपर यमपाशने जब राजकुमार, मन्त्रिपुत्र, पुरोहित-पुत्र और नगरके सेठ महाजनोंको राजाकी मणिमय खड़ाऊं पुरोहितका यज्ञोपवीत और मन्त्रीकी अंगूठी दिखलाई तो सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। तदनन्तर कुशल और विशुद्ध हृदय यमपाश इन लोगोंसे कहने लगा–

"आप लोग देखिए, राजाने खुद ही अपने घरकी चोरी की है, और मेरे ऊपर रुष्ट होने के कारण मुझे व्यर्थ ही इस जालमें फंसाकर मारना चाहते हैं।"

जब सब लोगोंने यमपाशके मुखसे इस रहस्यको सुना तो वे सब उससे कहने लगे–"कोतवाल, तुम जरा भी न डरो। हम सब लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। तुम विश्वास रक्खो, यदि राजा स्वयं ही शान्त नहीं हो जाते हैं तो हम सब लोगोंको मिल कर उन्हे दण्ड देना पड़ेगा।"

इस प्रकार यमपाशने समस्त महाजनों आदिको अपना आशय समझा दिया और वह प्रसन्नताके साथ विनीत वेषमें राजाके आज्ञानुसार राजसभामें पहुँचा।

सुयोधन नरेशने ज्यों ही यमपाशको राजसभामें उपस्थित

होते देखा, उसने यमपाशसे कहा—क्यों कोतवाल, क्या चोरका पता लगा ? यदि लगा हो तो मुझे शीघ्र ही बतलाओ।

कोतवाल बोला—स्वामिन्, मैंने इधर-उधर खूब ही छान-बीन की; परन्तु मुझे चोरका पता नहीं चला। एक पुरुष सुभाषित पढ़ रहा था और एक आख्यान भी सुना रहा था, सो मेरा बहुतसा समय इसी आख्यानके सुननेमें निकल गया।

राजा कहने लगा—कोतवाल वह कैसा आख्यान था ? कोतवाल उसे इस प्रकार सुनाने लगा:—

"स्थिता वयं चिरंकालं पादपे निरुपद्रवे ।
मूलात् समुत्थिता वल्ली जातं शरणतो भयम् ।।"

"हम लोग चिरकाल तक उपद्रवसे शून्य वृक्षपर रहे, परन्तु कुछ दिनोंके पश्चात् वृक्षके मूल भागसे एक लता उत्पन्न हुई और अब रक्षकसे ही भय खड़ा हो गया।"

एक वृक्षपर रहने वाले पक्षिगण इस प्रकार कह रहे थे, जिसकी कथा इस प्रकार है:—

"एक वनमें सरोवरके किनारे एक सरल वृक्ष था, जिस-पर अनेक सुन्दर पक्षी निवास करते थे। और ये बहुत ही कलरव किया करते थे।

एक बार एक वृद्ध हंसने जो इन पक्षियोंका नायक था, देखा कि इस वृक्ष के नीचे एक सुकुमार लताका अंकुर उग रहा है। इस अंकुरको देखकर हंस इन पक्षियोंसे कहने लगा—आप लोगोंको चाहिए कि आप सब बहुश्रुत और अनुभवी बूढ़ोंकी बातको सदा ही स्थिरचित्तसे सुनें। इस वृक्षके नीचेसे यह जो कोमल अंकुर उग रहा है, हम सबको मिलकर इसे चोंच और नखोंसे नष्ट कर देना चाहिये।

वृद्धकी यह परिणाममें हितकर बात सुनकर युवा पक्षी हँस पड़े और वृद्ध हंससे कहने लगे—अरे वृद्ध, तुम वृद्ध हो

गये हो और मौतसे डरते हो। तुम्हारी मति मारी गई है इसीलिए तुम यह बात कह रहे हो। क्या लताका यह अंकुर, इतना बढ़ जायगा कि हमारी सामर्थ्यसे भी वाहर हो जायगा ?

जब वृद्धहंसने यह उपहासपूर्ण बात सुनी तो वह मौन होकर और अपने अङ्गोंको संकोच कर रह गया।

काल-क्रमसे वह अंकुर वढ़ता हुआ लताके रूपमें परिणत होगया। लता वृक्षसे लिपट गई और एक दिन एक बहेलिया इसके सहारे उस उन्नत वृक्षपर चढ़ गया। उसने तुरन्त ही समस्त हंसोंको बांध लिया और बड़ी ही प्रसन्नताके साथ उन्हें पृथ्वीपर गिराने लगा। इस समय समस्त पक्षियोंके शरीर भयके कारण एकदम कम्पित हो रहे थे। वृद्ध हंसने इन हंसोंसे कहा कि अभी तुम लोग अपने शरीर बिलकुल शिथिल कर दो। जब यह वहेलिया तुम सबको एक एक करके जमीनपर गिरा चुके तो सब एक साथ उड़कर चल देना। यही हुआ। ज्यों ही बहेलियाने इन्हें एक एक करके गिराया, ये सब चुपचाप पड़े रहे और जब सब पक्षियोंको गिरा चुका तो वे धूर्त वृद्ध हंसकी सूचनानुसार तुरन्त ही आकाशमें उड़ गये।"

यमपाश कोतवाल सुयोधन राजासे कहने लगा—राजन्, वस्तुतः मैं यही आख्यान सुनता रहा और इसके सुनने तथा समझनेमें ही मेरा सारा समय निकल गया।

इस प्रकार कोतवालका पहला दिन तो समाप्त हुआ। दूसरा दिन हुआ। राजा सुयोधन सभामें आया। यमपाश भी मनमें विस्मय छिपाये सभामें पहुँचा। जव राजाने कोतवालको सामने उपस्थित देखा तो वह कोतवालसे पूछने लगा—क्या तुमने आज चोरका पता लगा पाया है ? यदि लगा सके हो तो मुझे वतलाओ ?

यमपाशने उत्तर दिया—राजन्, मैंने बहुत ही खोज की,

परन्तु चोरका पता नहीं चल सका। इसके सिवाय एक कुम्हार एक आख्यान सुना रहा था। सो उसके सुननेमें ही बहुत समय निकल गया। कुम्भकार कह रहा था—

"जिस मिट्टीके पिण्डसे मैं दीन दुखी प्राणियोंके लिए सदैव भिक्षा देता रहा, जिस मृत्पिण्डसे मैंने देवताओंको बलि दी, जिस पिण्डसे मैंने अपने घर आये हुए महान् स्नेही स्वजनोंका प्रीतिपूर्वक सम्मान किया, और जिसे बहुत दूरसे लाकर मैंने बड़े ही क्लेशसे तैयार किया, खेद, आज उसीने मेरी कमर तोड़ दी! आज मुझे रक्षकसे ही भय होगया।

इसी समय किसी मित्रने बुद्धिमान् कुम्हारसे पूछा-मित्र, बतलाओ तो किस चीजने तुम्हारी कमर तोड़ दी? वह उससे कहने लगा-मित्र, जिस मृत्पिण्डसे मैं जीविका चलाता हूँ उसीने मेरी कमर तोड़ दी है।

यमपाश कोतवाल सुयोधन महाराजसे कहने लगा—हे समस्त प्राणियोंके शरण्य और समस्त जनताके प्रेम-पात्र राजन्, कल कुम्भकारकी यह राम कहानी सुनता रहगया।

तीसरा दिन आया। यमपाश पुनः पुलकित मनके साथ राज-सभामें पहुँचा। राजाने आज भी कोतवालसे चोरके मिलनेका समाचार पूछा। इस बार भी यमपाशने नकारात्मक उत्तर दिया। और वह आजके सुने हुए आख्यानको राजासे इस प्रकार सुनाने लगा—

"पिता जिसका गला दबावे, माता जिसे विष दे और राजा जिसे लूटनेके लिए तैयार हो वह किसकी शरणमें जावे?"

घटनाका सम्बन्ध निम्न प्रकार है—

"भरत क्षेत्रमें धर्मपुर नामका सुन्दर नगर था। इस नगरके राजाका नाम वरधर्म था और इसकी पत्नीका नाम वरधर्मा।

वरधर्मके एक मन्त्री था, जिसका नाम जयदेव था। जयदेवकी पत्नीका नाम जयदेवी था और ये दोनों ही पारस्परिक प्रेमके साथ बड़े ही सुखसे अपना जीवन-यापन करते थे।

एक दिनकी बात है। महान् बलशाली राजा और मन्त्री दोनों ही एक शक्ति सम्पन्न राजाको जीतनेके लिए बड़ी भारी सेनाके साथ परदेशके लिए रवाना हुए। राजाने थोड़े ही दिनोंके भीतर उस शत्रुको अपने वशमें कर लिया और तत्पश्चात् वह शीघ्र ही ध्वजाओंकी पंक्तिसे सुशोभित नगरको लौट आया।

वह ज्यों ही चित्र-सज्जित दीवाल वाले नगरके प्रधान द्वारसे प्रवेश करने लगा, वह विशाल द्वार एकदम अर्रा पड़ा। ज्यों ही राजाने इस नगरके द्वारको गिरते हुए देखा, उसने इसे बड़ा भारी अपशकुन समझा और वह नगरमें न जाकर उसके बाहर ही एक स्थानपर ठहर गया।

राजाने इस द्वारको फिरसे उठवाया, परन्तु वह इस बार भी गिर गया। यह देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ और वह मन्त्री जयदेवसे कहने लगा—मन्त्रिन्, इस समय तुम हमें कोई सुन्दर उपाय बतलाओ, जिससे यह उन्नत नगर द्वार स्थिर बना रह सके।

मन्त्री बोला—राजन्! आप अपने मनको इस चिन्तासे विह्वल क्यों कर रहे हैं? इस नगर द्वारके स्थिर बने रहनेका हमारी समझमें केवल एक ही उपाय है। और वह यह है कि आप एक पुरुषकी हत्या करके इस कोटके दरवाजेपर उसकी बलि चढ़ावें।

राजा यह सुनकर चुप रह गया। इस बीच ही पुरवासी जनता आ पहुँची और उसे इस घटनाका पता चला तो वह राजासे कहने लगी-राजन, इस सम्बन्धमें आप बिलकुल चुप रहिए। हम लोग सब ठीक किये लेते हैं। हम लोगोंमेंसे जो भी इस

बलिकी खातिर मनुष्य देगा, उसे हम लोग बड़े ही आदरके साथ एक लाख दीनार देंगे।

इस तरह पुरवासी जनताके अनुरोधसे सारे नगरमें यह घोषणा करा दी गई कि जो नगर द्वारकी बलिके लिए एक आदमी देगा, उसे एक लाख दीनारें दी जावेंगी। इस घोषणाको सब लोगोंने पसन्द किया।

परंच, इसी धर्मपुर नामके नगरमें एक गोचरदत्त नामका ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा ही कठोर भाषी था और दारिद्रच-से मारा हुआ था। इसकी पत्नीका नाम दत्ता था। इन दोनोंके सात पुत्र थे। पहलेका नाम सुदत्त था, दूसरेका नाम शिव-दत्त था, तीसरेका नाम गङ्गदत्त था, चौथेका नाम वसुदत्त था, पाँचवेका नाम सूर्यदत्त था, छठेका नाम विष्णुदत्त था और सातवेंका नाम इन्द्रदत्त था।

ज्यों ही गोचरदत्तकी पत्नीने यह घोषणा सुनी, उसका मन बड़ा ही प्रसन्न हुआ। वह दारिद्रचसे पीड़ित थी, अतएव अपने पतिसे कहने लगी—यद्यपि सभी पुत्र अपने प्रिय हैं; परन्तु इनमेंसे किसी एकको भी देकर एक लाख दीनारें प्राप्त की जा सकती हैं।

गोचरदत्त ब्राह्मणने जैसे ही अपनी पत्नीकी यह बात सुनी और उसका मन धनके प्रति आकर्षित देखा, वह भी बड़ा ही प्रसन्न हुआ और अपनी पत्नीसे कहने लगा—प्रिये, इस समय हम जैसे टकियोंको द्रव्यसे मतलब है, पुत्रसे इतना मतलब नहीं है क्योंकि पुत्र तो और भी हो जावेंगे। प्रिये, इस-लिए तुम एक पुत्र देकर धन ले आओ। इस प्रकार पतिकी स्वी-कृति लेकर दत्ता वहाँ जा पहुँची, जहां घोषणा सुनाई जा रही थी। वह इन घोषणा करने वालोंसे कहने लगी—मैं अपना एक पुत्र आप लोगोंके लिए देनेको तैयार हूँ। जब घोषणा करने

वालोंने ब्राह्मणीकी यह बात सुनी तो वे बोले—अच्छी बात है लाओ पुत्र ?

दत्ताने इन घोषणा करने वाले नागरिकोंको अपना सब से छोटा पुत्र इन्द्रदत्त दे दिया और आप एक लाख दीनारें लेकर अपने घर आगईं।

नागरिकोंने भी जब इन्द्रदत्तको स्वयं उसके माता-पिता द्वारा सौंपते पाया तो उन्होंने भी इसे स्वीकार कर लिया और वे इसे लेकर राजाके निकट चल दिये। इस प्रकार इन्द्र-दत्तके पिताने इसके गलेमें फांसी लगा दी और माताने विष पिला दिया। इस तरह माता, पिता और नागरिक इस लड़के-को लिए जा रहे थे। ऐसी स्थितिमें भी इन्द्रदत्त हँसता जा रहा था।

जब किसी एक पुरुषने इन्द्रदत्तको हंसते हुए देखा तो वह उससे पूछने लगा-पुत्र, तुम इस प्रकारसे हंसते हुए क्यों जा रहे हो ? क्या तुम्हें पता नहीं है, आज नागरिक नगर-द्वारपर तुम्हें मारकर बलि देंगे ?

इन्द्रदत्त कहने लगा—तात, बालकको जब माँसे डर लगता है तो वह अपना डर मिटानेके लिए पिताके पास जाता है। और जब पितासे डर लगता है तो उसे दूर करनेके लिए वह माताके पास जाता है। तथा जब माता-पितासे उसे भयकी आशङ्का रहती है तो वह राजाके पास इस बुद्धिसे जाता है कि वह उसका भय दूर करेगा। और तात, जब माता, पिता तथा राजासे भी बालकको डर लगने लगता है तो वह समस्त पुर-वासियोंकी महत् शरणमें पहुँचता है। परन्तु जब माता-पिता बालकका गला दबा रहे हों और राजा तथा पुरवासी जनता ही उसके प्राण लेनेको तैयार हो रही हो, तब मुझ जैसे बालकको डरनेकी क्या जरूरत है ?

ज्यों ही इस व्यक्तिने बालकका यह मार्मिक उत्तार सुना, उसका हृदय भर आया। उसने राजाके पास जाकर इस बालककी यह मनोव्यथा सुनाई। राजाने इसे तत्काल छुड़वा दिया। और उसी समय आकाशमें देवता दुन्दुभियां बजाने लगे।

इधर जब संतुष्ट हुए राजाने इन्दुदत्ताको उन्मुक्त कर दिया तो नगरका द्वार भी अपने आप तैयार होगया और उसके फिरसे गिरनेकी नौवत नहीं आई।"

जब सुयोधन राजाने यमपाशके मुँहसे यह कथानक सुना तो राजाको जरा आश्चर्य हुआ किन्तु वह चुप रहा।

चौथा दिन आया और यमपाश कोतवाल पुनः राजसभामें प्रविष्ट हुआ। सुयोधनने ज्यों ही उसे अपने सामने उपस्थित पाया, वह कोतवालसे कहने लगा—यमपाश, क्या नगरमें इधर-उधर घूमते हुए आज भी वह दुराचारी चोर तुम्हारे हाथ लग सका है? यदि लगा हो तो शीघ्र ही मुझे बतलाओ?

यमपाश कहने लगा—राजन्, चोरका तो आज भी कहीं पता नहीं चला है। हां, मैंने घूमते हुए एक कथानक अवश्य सुना है। सो आप चाहें तो उसे सुन लीजिए। वह इस प्रकार है—

"जहांके सम्पूर्ण पानीमें विष मिला हुआ हो, दुष्टोंके हाथ मृत्यु होती हो और राजा स्वच्छन्द प्रकृतिका हो, वहां सज्जन किस प्रकार रह सकते है?"

इतना कह कर यमपाश इस वक्तव्यसे सम्बन्धित कथानक सुनान लगा। और बोला—राजन्, यह कथानक बड़ा ही सुन्दर है, समस्त प्राणियोंका उपकार करने वाला है, सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध है और विद्वानोंके कानोंके लिए रसा-

यनके तुल्य है। यमपाश इतना कह कर ही रह गया और इस प्रकार चौथा दिन भी निकल गया।

पांचवा दिन आया और यमपाश फिर राजाकी सेवामें हाजिर हुआ। इस बार भी वह सभाके बीच एक कथानक सुनाने लगा। वह बोला "जो गंगा समस्त देश देशान्तरमें प्रसिद्ध है और हम सब लोंगोंके मनको विस्मय जनक है, देखो तो वही गङ्गा प्राण-नाशक हो रही है?"

"जिससे बीज उत्पन्न होते हैं और वृक्ष सींचे जाते हैं, हमें उसके बीच ही मरना होगा? खेद, रक्षक ही भक्षक होगया है।" यमपाश इस वक्तव्यसे सम्बन्धित घटना इस प्रकार सुनाने लगा–

"पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें एक वसुपाल नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम वसुमती था। इसी वसुपाल राजाके दरबारमें एक कवि था। इस कविका नाम चित्रकवि था। चित्रकवि आशुकवि था। वह वातकी बातमें सुन्दर रचना तैयार करके रखदेता था। उसकी प्रतिभा भी बहुत ही विलक्षण थी।

एक दिनकी बात है। सभासद लोग इसकी रचनापर बड़े ही आश्चर्यान्वित हुए। उन लोगोंने चित्रकविके साथ हंसी करनी चाही और ईर्ष्यावश उसे गङ्गामें फेंक दिया। इस प्रकार ज्यों ही यह कवि वेगके साथ गङ्गाके प्रवाहमें बहता जा रहा था, सभ्योंने उससे एक सुभाषित सुनानेको कहा।

चित्रकविने जव सभ्योंकी यह बात सुनी तो उसने विद्वानोंके मनको मुग्ध करने वाला और शब्द तथा अर्थसे रमणीय निम्न आशयका सुभाषित सुनाया–

"जिसके द्वारा बीज उगते हैं और वृक्ष सींचे जाते हैं, मैं उसीके वीच मरूंगा। खेद, रक्षक ही भक्षक बन गया है।"

छठवां दिन आया तो यमपाश सुयोधनकी सेवामें उपस्थित हुआ। वह इस वार भी निम्न कथानक सुनाने लगा—

"जहां चपल चित्त वाले बन्दर बगीचेके रक्षक हों, मद्य पीने वाले ही मद्य-निषेधके प्रचारक हों और भेड़िये वकरियोंकी रक्षा करने वाले हों, इस प्रकार एकसे एक अनर्थके साधन उपस्थित हों, और सभी अपना अपना प्रयोजन सिद्ध करनेम लगे हों, वहां कार्य मूलसे ही नष्ट हुआ समझना चाहिए।

इस वक्तव्यकी घटना इस प्रकार है :—

"पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें एक सुभद्र नामका राजा रहता था। एक बार एक मनुष्यने कुतूहल वश इस राजासे पूछा—राजन्, आपको सब ही राजा आकर नमस्कार करते हैं और आप सव राजाओंके रक्षक भी हैं। सो राजन्, आप यह बतलाइए कि दुनियांमें बगीचोंकी रक्षा करनेके लिए किसे नियुक्त करना चाहिए? यदि बन्दर महाशय ही सदा उद्यानकी रक्षा करें, मद्यपायी ही मद्य-निषेधका प्रयत्न करे और भेड़िया बकरियोंके बचानेका प्रयत्न करे तो साराका सारा संसार ही विनष्ट हुआ समझ लेना चाहिए।"

सातवां दिन हुआ तो यमपाश पुनः राजाकी सेवामें हाजिर हुआ और राजासे बोला—

"जब बहूने अपनी सासकी साड़ी एरण्डके वृक्षपर रक्खी हुई देखी तो वह अपने पतिदेवसे कहने लगी—प्रियतम, लता तो जड़से ही नष्ट होगई है। अब तुम्हे जो रुचे सो करो।"

यमपाश इस वक्तव्यसे सम्बन्धित घटना सुनाने लगा—

"उत्स वोंसे सुन्दर उज्जयिनी नगरीमें एक शुद्धात्मा व्यापारी रहता था। इसका नाम यशोभद्र था और यह बहुत बड़ा धनी था।

एक बार अपनी मातासे आज्ञा लेकर जब वह उज्जयिनीसे व्यापारियोंके साथ विदेश जाने लगा तो उसने अपनी स्त्रियोंको भी साथमें ले लिया और ज्यों ही वह सन्ध्याके समय परदेशसे लौट कर आया, उसी एरण्ड वृक्षपर टंगी हुई अपनी मांकी साड़ी दिखलाई दी। यह देखते ही क्रोधके कारण यशोभद्रकी आंखोमें खून उतर आया। उसने अपनी स्त्रियोंसे कहा-तुम लोग, अभी यहीं ठहरो, मैं जाकर देखता हूँ क्या मामला है?

ज्यों ही कोतवाल यमपाशने यह कथानक सुनाया, सुयोधन महाराजकी भ्रृकुटियाँ तन गईं और उसे बहुत तेज गुस्सा आगया। वह कोतवालसे कहने लगा—अरे दुष्ट, तूने ये भद्दे भद्द किस्से सुनाकर छः दिन तो किसी तरह निकाल दिये। अब यह सांतवा दिन है। सो तू आज शीघ्र ही मेरे सामने चोरको उपस्थित कर। यदि तूने आज भी चोरको उपस्थित नहीं किया तो विश्वास रख, मैं आज अवश्य ही तुझे प्राण दण्ड दूंगा।

सुयोधनकी राज-सभामें युवराज, मन्त्रीका पुत्र, और पुरोहितका पुत्र आदि सब ही लोग उपस्थित थे। इस लिए ज्योंही यमपाशने राजाकी क्रोध पूर्ण आज्ञा सुनी, सहसा समस्त उपस्थित सभासदोंके सामने उसने मणिमय खड़ाऊँ, अंगूठी और यज्ञोपवीत लाकर रखदिया और कहने लगा—सभ्यों, जहां मन्त्री और पुरोहितको साझेदार बनाकर राजा ही चोर हो, वहाँ सब लोगोंको वनके लिए ही प्रस्थान कर देना चाहिए। इस समय हम लोगोंका रक्षक ही भक्षक बन गया है।

ज्योंही सभ्योंने यमपाशकी बात सुनी, उन्हें उसकी सत्यतापर विश्वास हो गया। सबको मालूम होगया कि सुयोधन राजा अन्यायी और मन्त्री तथा पुरोहित भी धूर्त

और अधर्मी हैं। यह जान कर समस्त सामन्तोंने और युवराजने तुरन्त ही इन तीनोंको पिटवा कर अपने देशसे निकलवा दिया। मन्त्रिपुत्र, सामन्त और यमपाशने युवराजकी भक्ति की और आदर किया और इस प्रकार वह चिरकाल तक अपने विस्तृत साम्राज्यका संचालन करने लगा।

सुबुद्धि नामका मन्त्री राजा उदितोदयको यह कथानक सुना कर कहने लगा–राजन्, इसी प्रकार आपका भी कर्त्तव्य है कि आप आर्योचित मर्यादाका उल्लंघन न करें और प्रमद वनमें स्त्रियोंके बीच न जावें।

उदितोदयने सुबुद्धि मन्त्रीकी बातपर ध्यान दिया और उसके कहनेके अनुसार वह प्रमद वनमें जानेसे रुक गया। परन्तु मन्त्रीसे कहने लगा–मन्त्रिन्, मैं आपकी बात माने लेता हूँ और स्त्रियोंके बीच नहीं जाता हूँ; किन्तु अपने नगरमें जो कुछ मनोहर और नेत्रोंको प्रिय लगने वाली सुन्दर छटा है, चलो चल कर उसीका निरीक्षण करें।

राजाकी इच्छा देख कर मन्त्री भी नगरकी अनुपम शोभा देखनेके लिए राजाके साथ राज-भवनसे चल दिया और दोनों नगरमें घूमने लगे। ज्यों ही ये दोनों कुछ आगे बढ़े, इन्हे रूप्यखुरका लड़का स्वर्णखुर अपनी लीलासे धीरे-धीरे चलता हुआ आगे दिखलाई दिया। इस स्वर्णखुरको देखकर इन्हें बड़ा विस्मय हुआ। इस लिए ये दोनों भी मार्गके कौतुक पूर्ण दृश्योंको देखते हुए स्वर्णखुरके पीछे-पीछे चलने लगे।

चलते चलते इनलोगोंने देखा कि स्वर्णखुर नामका चोर अर्हद्दास सेठके मकानके बाहरी कोटसे जाकर उसके अन्दरके एक सघन वृक्षपर चढ़ गया है। यह देख ये दोनों भी स्वर्णखुरके रास्तेसे ही चलकर शीघ्र ही उस वृक्षके नीचे चुप चाप खड़े हो गये।

ठीक इसी समय आठ दिनके उपवासी प्रसन्न हृदय अर्हद्दास सेठ अपनी अतिशय रूपवती पत्नियोंसे कहने लगे—देखो, आज इस कार्तिककी शुक्ल पूर्णिमाके दिन नगरकी सभी स्त्रियाँ तो नन्दन वनकी तरह सुन्दर प्रमद वनमें कौमुदी महोत्सव मनानेके लिए गयी हुई हैं; परन्तु हम लोगोंने आठ दिन तक उपवास और धर्म-साधन करके जो पुण्य कमाया है उसके कारण हमारी इच्छा है कि हम सब सर्वोत्तम श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयकी बन्दना करनेके लिए चलें।

ज्यों ही सेठकी पत्नियोंने सेठ जीकी यह बात सुनी, उनके शरीरमें भक्तिसे रोमाञ्च हो आये और उनके मन आनन्दसे भर गये। वे सेठजीसे कहने लगीं—प्राणनाथ, हमलोग जल्दी ही भवबाधासे विमुक्त जिन भगवानकी बन्दनाके लिए चलें, जिससे हम सबके समस्त पाप-पुञ्ज धुल जावें और हमारी आत्मा विशुद्ध हो जावे।

अर्हद्दास सेठने जब अपनी पत्नियोंका भी यह आग्रह देखा तो उसके चित्तमें बड़ा ही संतोष हुआ। उसने अपनी आठों ही पत्नियोंको अपने साथ ले लिया और सबलोग सहस्रकूट चैत्यालयमें पहुंचे और उन्होंने संसारका उच्छेद करनेवाली जिनेन्द्र भगवान्की स्तुति की। फिर सबलोग एक स्थानपर बैठ गये। इतनेमें अर्हद्दास सेठने कुतूहल वश अपने सामने बैठी हुई पत्नियोंसे पूछा—हमारे मनमें एक कुतूहल उत्पन्न हो रहा है, क्या आप लोग उसे शान्त कर सकेंगीं? यदि हां तो आप लोग ठीक-ठीक बतलाइए कि आप लोगोंका सम्यक्त्व किस-किस कारणसे दृढ़ हुआ है?

ज़ब सेठकी पत्नियोंने सेठजीकी यह बात सुनी तो वे कहने लगीं—स्वामिन्, सबसे पहले आप ही बतलाइए कि आपको किस निमित्तसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई? इसके बाद

इसी परिपाटीसे हमलोग भी अपने अपने सम्यक्त्वकी प्राप्ति और उसकी दृढ़ताका कारण बतलावेंगी।

ज्यों ही शुद्धात्मा अर्हद्दासने अपनी पत्नियोंका यह सुन्दर और समुचित उत्तर सुना, वह मनमें बड़ा ही प्रसन्न हुआ और अपने सम्यक्त्वकी दृढ़ताके कारणको सुनाने लगा। उसने कहा—प्रियतमाओ, आपलोग शुद्ध मनसे एक घड़ी भरके लिए अपने चित्तको सावधान करके मेरी बात सुनें—

"इसी मथुरा नगरीमें उदितोदय नामका राजा रहता है। यह राजा बहुत ही बलवान् है। इसके मन्त्रीका नाम सुबुद्धि है। सुबुद्धि सचमुच बड़ा ही बुद्धिमान् है और उसे सब ही विद्वान् आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।

इसी नगरीमें एक सुवर्णखुर नामका चोर रहता है, जिसे अनेक प्रकारकी विद्याएँ सिद्ध हैं और यह वृक्षपर चढ़ कर कौमुदी महोत्सवका दृश्य देखता है।

अर्हद्दास कहता गया—देखो, इस नामावलीको ध्यानमें रखना। मथुरा नामकी सुन्दर नगरी, राजगृह नामका सुन्दर नगर, हस्तिनागपुर, कौशाम्बी नगरी, बनारस नगरी, चम्पापुरी, समृद्ध उज्जयिनी नगरी और धन-धान्य तथा जलाशयोंसे मण्डित सूर्यकौशाम्बी नगरी। इसके अतिरिक्त यह नामावली भी याद रखना। जिनदास सेठ, उसकी पत्नी जिनदत्ता, शरीरकी सौम्यप्रभावाली सोमश्री, कमलोंकी शोभा विजित करनेवाली पद्मश्री, प्रियभाषी तथा जनप्रिय सोमशर्मा, सूर्यके समान तेजस्विनी मित्रश्री, रूपवती खण्डश्री, सुन्दर आकारवाली विष्णुश्री, नागकुमारीके समान सुन्दर नागश्री, मनोहर पद्मलता सर्वोत्तम कनकलता, और विद्युल्लताके समान रमणीय विद्युल्लता।"

अर्हद्दासने इस सूत्रात्मक नामावलीको सुनाया और इसके

पश्चात् वह अपनी पत्नियोंसें अप सम्यक्त्वकी दृढ़ताके कारण भूत शूलीके द्वारा मारे जानेवालेकें आख्यानको इस प्रकार सुनाने लगा–

"इसी नगरीमें प्रमोदवाहन नामका राजा रहता था। प्रमोदवाहनकी पत्नीका नाम यशोमती था। इन दोनोंके एक उदितोदय नामका पुत्र हुआ। उदितोदयमें अनेक गुणसमूह एकत्रित होगये थें और वह बड़ा ही बलवान् है। इसकी पत्नीका नाम महोदया है, जिसका शरीर रूप-राशिसे खूब ही निखर रहा है।

इस राजाके मन्त्रीका नाम सुबुद्धि है और इसकी पत्नी-का नाम प्रभा। प्रभा बहुत ही कान्तिमती है। इन दोनोंके एक सुबुद्धि नामका पुत्र हुआ जो ज्ञान और विज्ञानमें खूब ही बढ़ा-चढ़ा है।

सुवर्ण राशिसे समृद्ध इसी नगरीमें एक रूप्यखुर नाम-का चोर रहता था, जिसकी पत्नीका नाम रूप्यखुरा था। इन दोनोंके एक सुवर्णखुर नामका पुत्र हुआ, जो बड़ा ही तेजस्वी है। सुवर्णखुरको अनेक विद्याएँ तथा अञ्जन सिद्ध है और वह इनके कारण चोरीसे अपनी जीविका निर्वाह किया करता है।

इसी नगरमें एक जिनदत्त नामका सेठ रहता था, जो बड़ा ही धनी था। इसकी पत्नीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता सदा ही जिनभक्तिमें तत्पर रहा करती थी। इन दोनों गुणज्ञ दम्पतिके एक अर्हद्दास नाम का पुत्र हुआ, जो मैं हूँ और जिसकी आप सब आठ स्त्रियां हैं।"

अर्हद्दास जैसे जैसे इस कथानकको सुना रहा था वैसे-वैसे वृक्षपर चढ़े हुए सुवर्णखुरके मनमें तथा वृक्षकें नीचे

खड़े हुए राजा और मन्त्रीके मनमें बड़ा ही विस्मय बढ़ रहा था और ये सब मन ही मन बड़े ही आनन्दित हो रहे थे।

इसके बाद अर्हद्दास कहने लगा—"वह रूप्यखुर नामका चोर नगरमें चोरी करके अपनी जीविका चलाता था, जुआ खेलता था और अपने दोनों नेत्रोंमे अंजन आँज कर राजाकी भोजन शालामें जाता तथा राजाके साथ प्रतिदिन भोजन किया करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि राजा दिन प्रतिदिन दुर्बल होता गया और उसके शरीरमें केवल हड्डी और चर्म ही शेष रह गया।

जब मन्त्रियोंने राजाको दिन प्रतिदिन अधिकाधिक रूपसे दुर्बल होतें हुए पाया तो उन्हें पता चला कि अवश्य ही कोई मायावी राजाके साथ भोजन करता है और यह जान कर वे उस धूर्तको खोज निकालनेका प्रयत्न करने लगे।

जब राजाके भोजनका समय हुआ तो राजाकी भोजन-शालाम बड़ी ही सावधानीके साथ अकौवाके फूल फैला दिये गये, घड़ोंमें विषैला धुंवा करवा दिया गया और कुछ पुरुषों-को हाथमें तलवार देकर इधर-उधर खड़ा कर दिया गया।

ज्यों ही राजा भोजन करने बैठा, रूप्यखुर चोरने भोजन-शालामें प्रवेश किया और ज्यों ही वह राजाके साथ भोजन करनेके लिए जल्दी-जल्दी जाने लगा, अकौवाके फूल चरर-मरर हुए और उससे पता चल गया कि चोर आगया है। एक आदमीने उसी समय तुरन्त ही विषैले धुंवाँसे भरे हुए घड़ोंके मुंह उघड़वा दिये और इससे भोजनागारमें सर्वत्र धुवां भर गया। यह धुवाँ रूप्यखुरकी आँखोंमें लगा और इससे उसे बड़ी व्यथा होने लगी। तुरन्त ही उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गई और उसकी आंखोंमें अंजा हुआ कज्जल निकल गया। ज्यों ही काजल आँखोंसे हटा रूप्यखुर सबके सामने प्रकट

होगया। और राजाके द्वारा नियुक्त पुरुषोंके द्वारा वह पकड़ लिया गया।

इन रक्षा-पुरुषोंने रूप्यखुरको खूब कसकर बाँध लिया। वे इसे राजाके आज्ञानुसार नगरसे बाहर ले गये और वहाँ ले जाकर इसे शूलीपर चढ़ा दिया। राजाने समस्त दिशाओंमें आयुधधारी कुछ पुरुषोंको छिपा दिया और उन्हे आज्ञा दी कि जो कोई व्यक्ति रूप्यखुरसे बात करे तुम लोग उसे तुरन्त ही पकड़ लेना। हम उसकी समस्त धन-सम्पत्ति लुटवा लेंगे और उसे कठोर दण्ड देंगे।

प्रभात कालके समय जब रूप्यखुर शूलीपर चढ़ा हुआ था और उसे जोरकी प्यास सता रही थी, सेठ जिनदत्त जिनेन्द्र भगवान् तथा मुनियोंकी भक्ति पूर्वक बन्दना करके और धर्म-श्रवण करके बड़ी ही प्रसन्नताके साथ अपने घरकी ओर लौट रहे थे कि इतनेमें ब्याकुल हृदय रूप्यखुरने इन्हें देखा और देखते ही कहने लगा—"सेठ जी, आप सच्चे श्रावक हैं, समस्त प्राणियोंपर दयाशील हैं और आपकी कीर्ति समस्त भुवन तथा दिगन्तरालमें व्याप्त हो रही है। इस समय मेरा मन प्याससे एकदम छटपटा रहा है। यदि आप मुझे पानी पिला दें तो बड़ी कृपा होगी। मैं अब मरा ही जारहा हूँ।" जिनदत्तने रूप्यखुरकी यह बात सुनी और इसे शूलीपर चढ़ा देखा और देखा कि रूप्यखुरके प्राण कण्ठगत हो चुके हैं तो वह कहने लगा—"भद्र, मैंने बारह बर्षकी सेवा करके तो एक समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला मन्त्र प्राप्त कर पाया है। यदि पानी लेने जाता हूँ तो यह मन्त्र भूला जाता हूँ। इसलिए हे वत्स, एक काम करो। जब तक मैं पानी लेकर आऊं तुम संसारका नाश करनेवाले इस महामन्त्रको कण्ठस्थ रखना।"

रूप्यखुर बोला—"अच्छी बात है सेठ जी, आप इस मनोरथ-

को पूर्ण करनेवाले मन्त्रको मुझे दे दीजिए और आप जल ले आइए। मैं इसे बराबर पवित्र भावोंके साथ कण्ठस्थ रक्खूँगा।"

इसके पश्चात् जिनदत्तने रूप्यखुरको पञ्चनमस्कार मन्त्र दिया और उसने मस्तकपर अञ्जलि रखकर भक्ति भावके साथ उसे ग्रहण कर लिया। और वह उस मन्त्रका भक्ति पूर्वक ध्यान करता हुआ ही मर गया तथा मरकर सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हो गया।

इधर जिनदत्त सेठ ज्यों ही घरसे पानी लेकर वापिस लौटा और उसने देखा कि चोर मस्तकसे हाथ जोड़े हुए पञ्च-नमस्कार मन्त्रको जपते-जपते ही मर गया है तो उसने जान लिया कि वह स्वर्ग ही गया है। सेठ अपने घर चला आया और इसके बाद क्षान्ति गुहामें ठहरे हुए समाधिगुप्त नामके विद्वान् आचार्यके पास चला गया।

इस बीच ही राजाके द्वारा नियुक्त पुरुषोंने जिनदत्तको चोरके साथ बातचीत करते हुए देख लिया था, सो उन्होंने जाकर यह समाचार राजाको सुना दिया।

ज्योंही राजाने इन लोगोंके मुंहसे यह समाचार सुना, उसे बहुत ही क्रोध आया। उसने अपने रक्षा पुरुषोंको आज्ञा दी कि जाकर धनदत्तको बांधलाओ और उसका सम्पर्ण धन लूट लो।

ज्योंही राजाके इन भयंकर सुभटोंने राजाका यह आदेश सुना उन्हें बहुत ही सन्तोष हुआ और उन्होंने इस राजाज्ञाको ऐसा ही समझा जैसे वह किसी देवताकी आज्ञा हो। वे लोग राजाकी उक्त आज्ञा पाकर वहाँसे चल पड़े। पीछेसे राजा भी साथ हो लिया।

इधर पूर्वभवके रूप्यखुर चोरको अवधि ज्ञानके द्वारा जिनदत्तके ऊपर आये हुए महान् उपसर्गका पता चला और उसने निश्चय किया कि मेरे कारण ही जिनदत्तके ऊपर उपसर्ग आया है। सो वह देव तत्काल ही समस्त प्राणियोंको डरा देने वाले बेतालका भयंकर रूप बना जिनदत्तके मकानके दरवाजे-पर आ खड़ा हुआ।

ज्योंही देवने देखा कि राजा बड़े भारी सुभटोंको साथमें लेकर जिनदत्तके मकानकी ओर बढ़ा आ रहा है तो वह सामने जा उपस्थित हुआ।

जब राजाने हाथमें लकड़ी लिए इस भयंकर वेषधारी देवको देखा तो उसके मनमें आया कि अब मरनेमें कोई कसर नहीं रही। इतनेमें ही इस भयंकर देवने जोरसे गर्जना की और वह हाथमें दण्डा लिए हुए रोषके साथ राजाकी ओर झपटा और उससे कहने लगा—अरे दुराचारी, घोर पापी और मूर्ख राजन्! तुम जीतेजी यहाँसे नहीं भाग सकते। मैं अभी तुम्हें इस दण्डेसे सजा देता हूँ।

इस देवसे राजाको इतना डर लगा कि उसे अपने वस्त्र और बालोंकी भी सुधि न रही और भागकर वह उस क्षान्ति गुहामे पहुँचा, जहाँ आचार्य संघ और सेठ जिनदत्त विराजमान थे। उसने सेठसे कहा—सेठजी! सेठजी! मुझे बचाइए। और इतना कह कर वह सेठजीके पास जा बैठा।

इतनेमें ही अत्यन्त तेजोमूर्ति देवभी वहाँ जा पहुँचा और क्रोधसे आँखोंको लाल-लाल करके वह जिनदत्तसे कहने लगा—सेठ जी, आप इस दुष्ट, दुराचारी राजाकी क्यों रक्षा करते हैं? आप इसे छोड़ दीजिये मैं इसे अभी इसकी करनीकी सजा देता हूँ।

देवताकी बात सुन कर जिनदत्त कहने लगा—देव, आप अब इन्हें क्षमा कर दीजिए।

जब इस पूर्वभवके चोर देवने जिनदत्तकी यह बात सुनी तो उसने जिनदत्तकी तीन प्रदक्षिणा दीं और उसे भक्ति पूर्वक प्रणाम किया। तदनन्तर वह उनसे कहने लगा—सेठ जी, आप ही हमारे परम गुरु हो। यह कह उसने आचार्यको तथा साधुओंके संघको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और वह बड़ी ही विनयके साथ सेठजीके पास बैठ गया।

जब राजाने मुनि-परिषदमें बैठे हुए और कान्तिसे चमकते हुए शरीर धारी देवको देखा तो उसका मन बहुत ही आश्चर्यान्वित हुआ और वह इस देवसे कहने लगा—क्यों देव, क्या आपके स्वर्गलोकमें ऐसा ही विनय-क्रम है जो आप पहले साधु-संघको नमस्कार न करके श्रावकको नमस्कार करते हो?

गुरु भक्ति-परायण देवने जब राजाकी यह बात सुनी और उसके मनको कौतुकसे पूर्ण पाया तो वह राजासे कहने लगा—"राजेन्द्र, विद्वत्सम्मत विनयका मुझे भी पता है। मुझे भी मालूम है कि पहले जिनेन्द्र भगवान् और साधुओंको नमस्कार किया जाता है और तदनन्तर मूलगुण, अणुव्रत तथा शिक्षाव्रतका पालन करने वाले श्रावकोंको इच्छाकार किया जाता है। किन्तु जिनदत्त सेठ हमारे गुरु हैं और महान् मित्र हैं। इसी लिए मैंने सबसे पहले इन्हें नमस्कार किया है।"

यह सुनकर राजा बोला—देव, आप मुझे यह बतलाइए कि यह सेठ किस प्रकारसे आपके गुरु हैं? इतना कहकर राजाका मन इस रहस्यको जाननेके लिए उत्सुक हो उठा। यह देखकर वह देव बड़ी ही प्रसन्नताके साथ इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाने लगा—

"राजन्! मैं रूप्यखुर नामका चोर हूँ और यह जिनदत्त नामके सेठ हैं। मैं चोरी करता हुआ पकड़ा गया और आपने मुझे शूलीपर चढ़वा दिया। सेठने मुझे पञ्च नमस्कार

मन्त्र दिया और इसके पुण्य प्रभावसे मैं स्वर्गमें देव हुआ। राजन्, यही कारण है जो जिनदत्तको मैंने अपना गुरु बतलाया है और इसी कारणसे मैंने मुनि-संघको छोड़कर पहले जिनदत्तको नमन किया है।"

देवताकी बात सुनकर राजाको बड़ा ही कुतुहल हुआ। देवके सातिशय रूपने राजाके नेत्रोंको आकर्षित करलिया और उसका मन बहुत ही पुलकित हो उठा।

राजा, मन्त्री और पुरोहितने जब इस आश्चर्यको देखा तो उन्होने अपने अपने पुत्रोंको राज्यश्री आदि वैभव सौंप कर दिगम्बर दीक्षा ले ली। किन्हीं पुरुषोंने सम्यक्त्वका लाभ लिया और किन्हींने श्रावकके व्रतोंको धारण किया। कोई मध्यस्थ रहे और कोई जिनधर्मकी प्रशंसा मात्र करके ही रहगये।

इस समय देवने भी सम्यक्त्वका लाभ लिया और पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—

श्रेष्ठिन्, आपके चरण-कमलकी कृपासे ही मैंने इस जैन-धर्मका लाभ लिया है। मैं अब कृतकृत्य हूँ और अपनेको बड़ा ही पुण्यात्मा समझता हूँ। यह कहकर उसने जिनदत्त सेठको भक्ति-पूर्वक बार-बार नमस्कार किया और वह सेठके गुणोंका स्मरण करता हुआ सौधर्म स्वर्गको चला गया।"

जिनदत्तके सुपुत्र अर्हद्दास सामने बैठी हुई अपनी पत्नियोंसे कहने लगे कि मैं इस आश्चर्य पूर्ण घटनाको सुनकर ही दृढ़ श्रद्धानी बना।

सेठकी बात सुनकर इसकी समस्त पत्नियां कहने लगीं—प्राणनाथ, आपका कहना बिल्कुल यथार्थ है और आपके इस रोचक कथनको हम लोगोंने बड़े ही आदरके साथ सुना है। हम सब आपके इस कथनका अहर्निश श्रद्धान करेंगीं, उसमें रुचि रक्खेगीं और उसपर सदैव प्रत्यय रक्खेंगीं।

परन्तु इन स्त्रियोंमेंसे कुन्दलता कहने लगी—श्रेष्ठिन्! आपने जो कथानक सुनाया है, उसे न तो आपने ही ठीकतौरसे कहा है और न मैंने ही उसे रुचिसे सुना है। न आपने उस कथानकको अच्छी तरह बतलाया है और न अच्छी तरह उसे देखा ही है। मुझे आपके इस कथनपर न श्रद्धा है न थोड़ा भी प्रत्यय ही है। आपका यह कथानक न किसीको रुचिकर हो सकता है और न म किसीसे इस कथनकी चर्चा ही करूँ गी। इसके सिवाय मैं अपने मन, वचन और कायसे इस कथानकका स्पर्श तक नही करूँगी।"

वृक्षके नीचे बैठा हुआ राजा, कुन्दलताकी इस बातको सुन रहा था। सो इस बातको सुन कर उसके मनमें बड़ा ही विस्मय हुआ और कुन्दलताके प्रति रोष भी। वह सोचने लगा—इतना अतिशय तो मैंने भी देखा है कि मेरे पिता प्रमोद वाहन मुझे राज्य देकर महान् निर्ग्रन्थ श्रमण हो गये। यह कुन्दलता देवी अत्यन्त दुष्ट है और मदसे विह्वल है। यही कारण है जो यह कह रही है कि मैं मन, वचन और कायसे भी सेठके कथनका प्रत्यय नहीं करती। राजा सोचता गया—मैंने इस प्रकारका आश्चर्य सुना है, देखा है और अनुभव किया है। फिर भी यह कुन्दलता कितनी मूर्ख है जो सेठके कथनपर जरा भी विश्वास नहीं कर रही है। मैं सेठकी इस नितान्त दुष्ट पत्नीको कल अवश्य ही इस धृष्टताकी सजा दूंगा।

वृक्षपर चढ़ा हुआ सुवर्णखुर चोर और वृक्षके नीचे बैठा हुआ सुबुद्धि मन्त्री भी अपने मनमें विचारने लगे—देखो तो यह सेठकी पत्नी कितनी धृष्ट है? पता नहीं, यह सेठकी बातपर क्यों प्रत्यय नहीं कर रही है?

इस प्रकार शूलीपर चढ़ाये गये रूप्यखुर चोरकी मृत्युके दृष्टान्तसे सम्बद्ध अर्हद्दासका यह कथानक समाप्त हुआ।

---

६४. जिनदत्ता और मित्रश्रीकी कथा

अर्हद्दास सेठने अपनी पहली पत्नी मित्रश्रीसे पूछा–प्रिये, अब तुम बतलाओ कि तुम्हारा सम्यक्त्व किस कारणसे स्थिर हुआ ? अर्हद्दास इतना कह कर रह गये और उनका मन मित्रश्रीकी बात सुननेको उत्सुक हो उठा।

अर्हद्दासके मनको प्रिय लगनेवाली मित्रश्री सेठानीने ज्यों ही सेठकी यह बात सुनी, वह बोली–

श्रेष्ठिन्, मगध नामके महान् देशमें राजगृह नामका एक समृद्ध नगर है। उसमें नरशूर नामका राजा रहता था और इसकी पत्नीका नाम स्वर्णलेखा था। इसी नगरमें एक ऋषभदास नामका सेठ रहता था, जो बहुत ही धनी था। इसकी पत्नीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता सौन्दर्यमें समस्त स्त्रियोंमें सर्वोत्तम थी। इन दोनों दम्पतियोंमें बड़ा ही स्नेह था और दोनों ही सुख-सागरके मध्यमें गोते लगाते हुए आनन्दसे जीवन बिता रहे थे।

एक दिनकी बात है। सती जिनदत्ताने जब देखा कि उसके कोई सन्तान नहीं है तो वह अपने पतिदेवसे कहने लगी–प्राणनाथ, आप सन्तानके निमित्त किसी अन्य कन्या के साथ विवाह कर लीजिए; क्योंकि पुत्रके बिना धर्म नष्ट हो जाता है और धर्मके नष्ट हो जानेपर सब कुछ नष्ट हो जाता है।

इसी नगरमें एक जिनदास नामका सेठ रहता था, जो बड़ा ही जनप्रिय था। जिनदासकी पत्नीका नाम जिनदासी था और इन दोनोंके एक पुत्री थी, जिसका नाम जिनदत्ता था।

जिनदासकी एक अन्य पत्नी थी, जिसका नाम बन्धुमती था और जो नितान्त मिथ्यादृष्टी थी। इसके एक कनकश्री

नामकी कन्या थी, जिसका शरीर सोनेके समान सुन्दर था।

इधर जब ऋषभदासकी छोटी पत्नीकी मृत्यु हो गई तो जिनदत्ताने बड़े ही प्रयत्नसे कनकश्रीका विवाह ऋषभदासके साथ कर दिया। ऋषभदासने भी कनकश्रीके साथ विधिवत् विवाह कर लिया और उसको सहर्ष सम्पूर्ण सम्पन्न घर सौंप दिया। और स्वयं जिनदत्ताके साथ सदैव धर्म चर्चा करता हुआ अपना अधिकांश समय जिन मन्दिरमें व्यतीत करने लगा। मध्याह्नके समय दोनों घर आकर उत्तम भोजन करते और फिर जिनालयमें पहुँचकर धर्मचर्चा करनेमें व्यस्त हो जाते।

एक दिनकी बात है। बन्धुश्री अपनी पुत्रीके स्नेहके कारण कनकश्रीके घर आई और उससे पूछने लगी—पुत्रि, तुम्हारा पति तुम्हारे साथ स्नेह पूर्वक रहता है या नहीं?

अपनी माताके मुखसे यह बात सुनकर कनकश्री बहुत ही क्रुद्ध हुई। उसकी आँखोंसे आँसू ढुलक पड़े और वह मातासे कहने लगी—माता, जब तुम मूर्ख, दुष्ट, वृद्ध और सौतवाले आदमीको मुझे सौंप चुकीं फिर भी मुझसे पति-स्नेहकी बात पूछ रही हो? माता, तुम विश्वास रक्खो मैं विवाहके दिन ही पतिदेवके साथ सोयी थी और इसके पश्चात् मैं स्वप्नमें भी नहीं जान पायी कि पतिदेव क्या वस्तु हैं। मैं दिन भर अधीन और क्रीत दासीकी तरह गृह-कार्यमें जुती रहती हूँ और फिर रातमें टूटी खटियापर अकेली ही चुपचाप पड़ी रहती हूँ। परन्तु वे दोनों ही दम्पति प्रसन्नताके साथ जिन मन्दिर जाते हैं और मध्याह्नके समय घर आकर भोजन करते हैं। और इसके पश्चात् वे दोनों अपने इसी भवनमें मनमें काम-विलासको लिये हुए और अनेक प्रकारकी क्रीडा-गोष्ठी करते हुए अपना जीवन-यापन करते हैं।

मेरा यह हाल है कि मैं दिन भर गृहस्थीकी सभी क्रियाओं-में व्यस्त रहती हूँ और रातके समय अकेली पड़ी पड़ी अपने जीवनकी निन्दा करती हुई जिन्दगी बिताती रहती हूँ। हे माता, तुम मनस्विनी हो, अतः मेरी बातपर विश्वास करो कि मैंने महीनेमें, पक्षमें, दिनमें और रातमें कभी भी पतिदेवके समागम सुखका अनुभव नहीं किया है। यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है।

अपनी पुत्रीकी यह दुःख भरी कहानी सुनकर बन्धुमती बोली—पुत्री! वस्तुतः दुष्ट जिनदत्ताने ही हमें ठग लिया है। उसने मुझसे यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं निश्चयसे तुम्हारी पुत्रीको अपने पतिकी प्रेम-पात्र बना दूंगी। इसके सिवाय उसने यह भी कहा था कि मैं ब्रह्मचर्य व्रत ले लूँगी और जरा भी पति के सुखका अनुभव नहीं करूंगी तथा राग रहित होकर जिन-मन्दिरमें ही पतिके साथ रहा करूँगी। हे पुत्री! जब जिनदत्ताने मुझे इस प्रकारका वचन दिया और उसका पति भी तुम्हारे आदेशके पालन करनेके लिये तैयार हो गया तो ही मैंने तुम्हें देना स्वीकार किया था। अब जब तक जिनदत्ता मरती नहीं है, तब तक तुम कुछ दिन और बिताओ। बन्धुश्रीको अपनी पुत्रीकी इस शोचनीय अवस्थापर बड़ा क्रोध आया और उसका चित्त क्रूर हो उठा। वह अपनी पुत्री-को आश्वासन देकर अपने घर लौट गई। घर पहुँचते ही वह जिनदत्ताके वधका विचार करती हुई समय बिताने लगी।

एक दिनकी बात है। एक चण्डमारि नामका कापालिक जो यमदूत जैसा मालूम देता था, घूमता-घामता हुआ बन्धश्री-के घर भिक्षा लेने आया। बन्धुश्रीने जिनदत्ताके अपकारकी भावनासे उसे खूब ही घीकी पूड़िया तथा मीठा आहार कराया।

जब बन्धुश्रीने चण्डमारिका इस प्रकार अतिशय आदर सत्कार किया तो उससे बन्धुश्रीका अभिप्राय छिपा नहीं रह

सका और वह धूर्त बड़े ही मीठे शब्दोंमें उससे कहने लगा—"हे भद्रे! विद्या, मन्त्र, योग्य औषधि, उत्तम वशीकरण, उच्चाटन, मारण, स्तम्भन, मोहन, अञ्जन आदि जो भी संसारमें प्रसिद्ध वस्तुएँ हैं, मैं उन सबको जानता हूँ तथा संसारमें अन्य कोई व्यक्ति इस प्रकारका नहीं है जो इनका जानकार हो। सो यदि तुम्हारा कोई रहस्यपूर्ण गुप्त कार्य हो तो मुझे बतलाओ। मैं उसे बहुत ही शीघ्र कर सकता हूँ।

कापालिकका यह कथन सुनकर बन्धुश्रीका मुख-मण्डल प्रसन्न हो उठा। वह उससे बोली—"हे पुत्र, तुम्हारे होते हुए मुझे संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। फिर भी एक बात अवश्य है। मैंने जिनदत्ताका अत्यन्त आग्रह देखकर तुम्हारी बहिन कनकश्रीका विवाह ऋषभदास सेठके साथ कर दिया था; परन्तु खेद है कि जिनदत्ताने धोखा दिया और आजकल वह बड़े ही कष्टसे अपने दिन काट रही है। अब तुमसे मेरा यही निवेदन है कि तुम मेरी बात मान कर जिनदत्ताको मार डालो जिससे तुम्हारी बहिन कनकश्री प्रसन्न मनकें साथ जीवन यापन करने लगे।

बन्धुश्रीकी यह बात सुनकर कापालिक बोला—अच्छी बात है माता! मारना तो हमारे कुलका भूषण है। मैं कृष्ण चतुर्दशीकी रातमें अवश्य ही वेताल विद्याको सिद्ध करने जाऊँगा, सो तुम मुझे पुष्प और धूप आदि लाकर दे देना।

बन्धुश्रीने भी कृष्ण चतुर्दशीके दिन कापालिकके लिये पुष्प, दीप और धूप आदि ले जाकर शीघ्र ही उसके सामने रख दिए। कापालिकने उस दिन उपवास किया और वह इस सब पुष्प आदि सामग्रीको लेकर रातमें भयंकर श्मशान भूमिमें जा पहुँचा।

उसने मनुष्यका शव लिया और उसे अपने सामने रख कर वह वेताल-विद्या सिद्ध करनेमें लग गया। कुछ समयकी

साधनाके पश्चात् वेताल विद्या सिद्ध हो गई और वह हाथमें भयंकर तलवार लेकर कापालिकके सामने आई और उससे कहने लगी—बोलो कापालिक, मेरे लिये क्या आदेश है ?

ज्यों ही स्मशानभूमिमें बैठे हुए चण्डमारि कापालिकने वेताल विद्याकी बात सुनी और उसे अपने सामने उपस्थित पाया तो वह वेताल विद्यासे कहने लगा—हे वेताल महाविद्ये ! मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम शीघ्र जिन चैत्यालयमें जाओ और वहाँ जाकर पापिनी जिनदत्ताको मार आओ।

भयंकर वेताल विद्याने कापालिककी आज्ञा पाकर हाथमें खड्ग लिया और शब्द करती हुई वह जिन चैत्यालय तक पहुँची। किन्तु वाहर ही ठहर कर रह गई। ऋषभदास और जिनदत्ता दोनोंने ही कृष्ण चतुर्दशीका उपवास किया था और इस समय दोनों ही मन्दिरमें धर्म-साधन कर रहे थे। सो ज्यों ही इन लोगोंने इस वेताल विद्याकी यह भयंकर गर्जना सुनी, इनके चित्त भयभीत हो गये और दोनों ही भगवान्‌के निकट कायोत्सर्ग करने लगे।

वेताल विद्याने चैत्यालयके अन्दर जानेका बड़ा ही प्रयत्न किया, परन्तु वह चैत्यालयके भीतर न जा सकी और अकृतार्थ होकर कापालिकके पास लौट आई।

कापालिकने इस बार फिर वेताल विद्याको सिद्ध किया। और इसे हाथमें तलवार लिये हुए जिनदत्ताको मारने भेजा। परन्तु पहलेकी तरह वेताल विद्या प्रयत्न करनेपर भी चैत्यालयके अन्दर न जा सकी और तुरन्त वापिस लौटकर कापालिकके पास आ गई।

तीसरी बार फिर कापालिकने इसे सिद्ध किया और इस बार फिर वह वेताल विद्या हाथमें तलवार लेकर उसके सामने आई। उसने पुनः इस बार भी वेताल विद्याको जिनदत्ताको मारने भेजा। वह जिन चैत्यालय तक पहुँची; परन्तु इस

वार भी चैत्यालयके अन्दर न जा सकी और शक्तिहीन होकर चण्डमारिके निकट वापिस चली आई।

चौथी वार फिर कापालिकने तलवारके साथ इसे सिद्ध किया। वह सिद्ध होकर इसके सामने उपस्थित हो गई। इस बार कापालिक वेताल विद्यासे कहने लगा—विद्ये, मैं आदेश करता हूँ कि जिनदत्ता और कनकश्रीमेंसे जो दुराचारणी हो उसे मार डालो और अपना काम सम्पूर्ण करके यहाँ आ जाओ।

इस बार ज्यों ही वेताल विद्याने कापालिकका यह आदेश सुना, वह तत्काल वहाँसे चल दी और सोती हुई कनकश्रीको मार कर तुरन्त ही चण्डमारिके पास आ पहुँची। जब कापालिकने वेताल विद्याके कृपाणको खूनसे लाल देखा वह तुरन्त अपने घर चल दिया। और अपनी सफलताका समाचार वन्धुश्रीके पास भिजवा दिया।

प्रभात काल हुआ। बन्धुश्रीको इस समाचारसे बहुत ही संतोष हुआ कि जिनदत्ताकी मृत्यु हो चुकी। वह तुरन्त ही अपने दामाद ऋषभदास सेठके यहाँ पहुँची। वहाँ पहुँच कर जब उसे पता चला कि उसकी पुत्री ही दिवंगत हुई है तो वह फूट-फूट कर रोने लगी और कहने लगी—अरे लोगों, सुनों, जिनदत्ताने मेरी पुत्री कनकश्रीको मार डाला।

वन्धुश्रीने शीघ्र ही राजासे भी यह समाचार कहा। ज्यों ही राजाने यह वृत्तान्त सुना, उसने तुरन्त ही अपने रक्षा-पुरुषोंको आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर जिनदत्ताके पति ऋषभदासको बांध कर यहाँ ले आओ और उसकी समस्त धन-सम्पत्ति भी छीन लाओ।

रक्षा पुरुष राजाकी आज्ञा पाते ही वहाँसे चल दिये और ऋषभदास सेठके मकानपर जा पहुँचे। परन्तु ज्यों ही शासन

देवताको इस बातका पता चला, उसने तुरन्त ही इन लोगों-को कीलित कर दिया।

इधर जब जिनदत्ताके पति ऋषभदासको यह खबर लगी तो उसने इसे अपने ऊपर आया हुआ एक महान् उपसर्ग समझा और वह इसकी शान्तिके लिये चैत्यालयमें जाकर कायोत्सर्ग करने लगा।

तदनन्तर शासन देवता कापालिकके मठमें पहुंची। उसने कापालिकका मद चूर किया और वहाँसे कापालिकको बांध कर उसने राजाके महलके दरवाजेपर लाकर डाल दिया। देवताके बन्धनसे चण्डमारि कापालिकको इतनी तीव्र वेदना हुई कि उसके कारण उसका मन एकदम व्याकुल होगया और वह नगरके मध्यमें पड़ा पड़ा बड़ी ही दीनता पूर्वक रोने-चिल्लाने लगा। वह कहने लगा—ओ महाजनो, मैं बिलकुल निर्दोष और निरपराधी हूँ आप लोग एकचित्त होकर मेरी बात सुन लीजिए।

"महाजनों, मैने बन्धुश्रीके कहनेसे ही जिनदत्ताको मारने-के लिए वेताल विद्या सिद्ध की थी। जब वह विद्या सिद्ध होकर मेरे सामने उपस्थित हुई तो मैंने इसे तीन बार जिनदत्ताके वधके लिए भेजा, परन्तु जिनदत्ताके चैत्यालयमें रहनेके कारण वह उसका वध नहीं कर सकी और जब अकृतार्थ होकर मेरे पास वापिस आई तो मैंने इसे आदेश दिया कि जिनदत्ता और कनकश्रीमें जो कोई दुराचारिणी हो तुम उसे ही मारकर मेरे पास आओ। इस प्रकार कहकर जब मैंने चौथी बार वेताल विद्याको अपने पाससे रवाना किया तो उसने जाकर कनकश्रीको मार डाला और इस तरह अपना काम करके वह मेरे पास आगई।"

शासन देवताने चंडमारि कापालिकके मुँहसे बार बार

इस घटनाको कहलवाया और कापालिक भी इस बृत्तान्तको बार बार सुनाता हुआ नगरमें चक्कर काटने लगा।

इधर पापिनी बन्धुश्रीको भी भूत, यक्ष और पिशाचोंने खूब ही पीटा और वह भी निम्न प्रकारसे कहती हुई नगर में घूमने लगी। वह कहने लगी—"भो भो महाजनो, आप लोग मेरी स्पष्ट बातको सुन लीजिए। कनकश्रीकी जो यह मृत्यु हुई है, उसमें जिनदत्ताका जरा भी दोष नहीं है। इसमें मेरा ही दोष है। महाजनो! मुझ अभागिनने ही कापालिकसे प्रवल प्रेरणा की थी कि तुम अपनी विद्याके बलसे जिनदत्ताको मार डालो। परन्तु दुर्भाग्य, कि कापालिकने तो इसे जिनदत्ताको मारनेकी गरजसे भेजा था और मारी गई हमारी मधुरभाषिणी कनकश्री पुत्री। जब सबेरे मैं जिनदत्तके यहां पहुँची और मैंने कनकश्रीको मरा हुआ पाया तो मैंने यह समाचार गढ़ा कि जिनदत्ताने कनकश्रीको मार डाला है। वस्तुत: जिनदत्ताने कनकश्रीको नहीं मारा है। वह वेताल विद्याके द्वारा ही दिवंगत हुई है। जिनदत्ता पुण्यात्मा और निर्दोष थी सो चण्डमारिकी विद्या इसका कुछ भी विगाड़ नहीं कर सकी।"

इस प्रकार कापालिक तथा बन्धुश्रीकी बातसे राजाको और नगर निवासी जनताको यह अच्छी तरह मालम होगया कि जिनदत्ता विलकुल निर्दोष और पवित्र है। तदनन्तर नगरकी देवियोंने भी मिलकर इस शीलमूर्ति जिनदत्ताकी बड़े भारी वैभव और उत्सवके साथ पूजा की।

मित्रश्री सेठ अर्हद्दाससे कहने लगी—श्रेष्ठिन्, इस आश्चर्य पूर्ण दृश्यको देखकर अनेक मनुष्योंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया और अनेक मनुष्य उसके प्रगाढ भक्त बन गये। नरशूर राजा, मन्त्री और पुरोहित आदिक समाधिगुप्त मुनिराजके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके, उनके निकट उन्होंने दैगम्बरी दीक्षा

लेली। नाथ, जिनदत्ताके इस अतिशयको देख कर ही मेरे सम्यक्त्वमें दृढ़ता आई है।"

जब मित्रश्रीके इस सार पूर्ण कथनको सेठकी अन्य धर्मात्मा पत्नियोंने सुना तो वे कहने लगीं-बहिन, तुमने बहुत ही अच्छी घटना देखी और सुनी। तुम्हारा कथन बिलकुल सच्चा है। हम लोग इस कथनका श्रद्धान करती हैं और प्रत्यय करती हैं। हम लोगोंको यह कथन रुचिकर भी लगा और हृदयकी अनुभूतिने उसका स्पर्श भी किया। परन्तु सेठकी सबसे छोटी पत्नी कुन्दलता कहने लगी—मित्रश्री, तुमने इस घटनाको न तो ठीक तरहसे देखा है और न ठीक तरहसे तुमने उसे कहा है। मेरी तुम्हारे इस कथनपर न कुछ श्रद्धा है और न मैं इसपर प्रत्यय ही रखती हूँ। इसके सिवाय तुम्हारा कथानक न मेरे मनको रुचिकर हुआ है और न मेरे अनुभवमें यह उतरता है कि संसारमें इस प्रकारकी घटना भी घटित हो सकती है।

जब राजा उदितोदयने कुन्दलताकी यह बात सुनी तो उसकी आँखे क्रोधसे लाल होगईं और वह कहने लगा—मैं कल अवश्य ही इस कुन्दलताको दण्ड दूंगा।

इस प्रकार वेताल विद्यासे निर्भय जिनदत्ता और मित्रश्रीके सम्यक्त्वकी दृढताको सूचित करने वाला यह द्वितीय कथानक समाप्त हुआ।

---

६५. खण्डश्रीकी कथा

अबकी बार अर्हद्दास सेठने अपनी पत्नी खण्डश्रीसे पूछा—प्रिये! बतलाओ तो तुम्हारा सम्यक्त्व किस प्रकारसे स्थिर हुआ?

खण्डश्री अपने सम्यक्त्वकी दृढ़ताके कारणको इस प्रकार सुनाने लगी—

"कुरुजाङ्गल देशमें हस्तिनापुर नामका एक सुन्दर नगर है। इस नगरमें महीधर नामक राजा रहता था। इस राजाकी पत्नीका नाम महीधरी था।

इसी नगरमें एक सोमदत्त नामका ब्राह्मण रहता था, जिसकी पत्नीका नाम सोमिल्ला था। इन दोनोंके एक कन्या थी, जिसका नाम सौम्या था और जो बहुत ही मधुरभाषिणी तथा सौम्य भावसे सम्पन्न थी।

एक समयकी बात है। सोमदत्तको महती दरिद्रताने घेर लिया, जिसके कारण उसे बड़ा ही वैराग्य हुआ। वह सुगुप्त आचार्य महाराजके पास पहुंचा और उसने सौम्याके साथ पांच अणुव्रत ले लिये और श्रावक बन गया।

इसी नगरमें एक जिनदास नामका सेठ रहता था। जिनदास बहुत ही धनी था। इसके एक पत्नी थी, जिसका नाम ऋषभ दासी था। जिनदासने जब सोमदत्तकी भीषण दरिद्रता देखी तो वह धर्मवात्सल्यके कारण सोमदत्त तथा सौम्याको अपने घर ले आया।

एक दिनकी बात है। सोमदत्तको मालूम हुआ कि उसकी आयु बहुत ही थोड़ी रह गई है तो उसने अपनी कन्या सौम्या बुद्धिमान् जिनदासको सौंप दी। वह जिनदाससे कहने लगा—हे जनप्रिय जिनदास! मैं आपको यह कन्या सौंपे जा रहा हूँ। सो आप इसे किसी जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमलके भक्त सुपात्र श्रावकको दे देना। इतना कहकर सोमदत्तने शय्या पर लेंटे हुए ही समस्त आरंभ-परिग्रह छोड़ दिया और श्रमण होगया। उसने समाधि पूर्वक मृत्यु की और स्वर्गमें जाकर देव होगया।

इधर सौम्यमति सौम्या भी जिनदासकें घर रहने लगी और जिनालयमें प्रतिदिन प्रसन्न मनसे पूजा करती हुई अपना समय बिताने लगी। सौम्याके सुन्दर रूप और शीलको जो भी ब्राह्मण

देखता वह अपने पुत्रके लिए जिनदाससे इस मनस्विनी कन्याकी याचना करने लग जाता। इस प्रकार बहुतसे ब्राह्मणोंने इस सौम्या कन्याको मांगा, परन्तु जिनदासने उन्हें देना ठीक नहीं समझा और उसने समस्त ब्राह्मणोंको केवल यही उत्तर दिया कि मैं यह मनोहर कन्या उसी श्रावकको दूंगा, जो सुरूप होगा सुशील होगा और सुकुलीन होगा।

एक दिनकी बात है। सात व्यसनका सेवन करने वाला एक धूर्त कुछ जुवारियोंके साथ जुवा खेल रहा था। इसका नाम रुद्रदत्त था और जातिसे यह ब्राह्मण था। जुवा खेलते समय इसने सुन्दराङ्गी सौम्याको देखा और वह अपने साथी जुवारियोंसे कहने लगा—"देखो मित्रो, यह कन्या कितनी रूपवती, युवती और शुद्ध हृदय वाली है। मैं वहुत शीघ्र इसके साथ अपना विधिवत् विवाह करूँगा।"

जब अन्य जुवारियोंने रुद्रदत्तकी यह बात सुनी तो वे इससे कहने लगे—"मित्र ! क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि जिनदास सेठ यह कन्या किसी सुशील और कुलीन श्रावकको ही देना चाहते हैं ? जो जनप्रिय जिनदास सज्जन ब्राह्मणोंके बार बार प्रार्थना करनेपर भी अपनी यह कन्या उन्हें नहीं दे रहा है, वह सात व्यसनका सेवन करने वाले, चोर, पापी और जुवारीको किस प्रकार दे देगा ?"

रुद्रदत्तने जुवारियोंकी यह बात सुनकर प्रतिज्ञा की कि मैं अपना विवाह इस सौम्या कन्याके साथ ही करके रहूँगा। यह कर उस धूर्त रुद्रदत्तने वह देश छोड़ दिया और वह इस कन्याकी प्राप्तिके प्रयत्नमें देशान्तरके लिए प्रस्थान कर गया। कुछ समय तक वह देश देशान्तरोंमें घूमता रहा और फिर उसने क्षुल्लकका वेष वनाया और जिनदास सेठके चैत्यालयमें आ पहुँचा। जब जिनदासने इसे देखा तो उसने इससे इच्छाकार किया और बड़े ही संतोषके साथ उससे पूछा—

"हे धर्ममूर्ति क्षुल्लक महराज, आप किस स्थानसे पधार रहे हैं ?"

जिनदासकी बात सुनकर क्षुल्लक महाराज कहने लगे—"ओ महान् श्रावक, मैं अभी पूर्वदेशसे विहार करता हुआ आ रहा हूँ। मैंने समस्त सिद्ध क्षेत्रों और समस्त चैत्यालयोंकी भाव पूर्वक बन्दना की है और इस समय हमारी आत्मा भक्तिसे गद्‌गद हो रही है। अब मैं शान्ति, कुन्थु और अर नाथ तीर्थंकरोंकी जन्मभूमि तथा दीक्षा भूमिकी बन्दना करनेके लिए यहाँ आया हूँ। इसके सिवाय आपकी भक्ति देखनेकी भी बहुत दिनोंसे मनमें लालसा थी।"

क्षुल्लक महाराजकी यह बात सुनकर सेठका मन क्षुल्लक महाराजके गुणोंके प्रति आकर्षित हो उठा। वह सामने बैठे हुए रुद्रदत्तसे उसके पूर्व आश्रमको पूछने लगा।

सेठकी बात सुनकर रुद्रदत्त कहने लगा—"सेठ जी, इसी नगरमें एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था। उस सोमगोत्रीय सोमशर्माकी सोमशर्मा नामकी एक ब्राह्मणी थी। मैं इसी ब्राह्मणीका विनीतात्मा और विशुद्ध बुद्धिशाली रुद्रदत्त नामका पुत्र हूँ। सेठ जी, जब हमारे माता-पिताका स्वर्गवास होगया तो मैं संसारके तीर्थक्षेत्रोंकी वन्दनाके लिए निकल पड़ा और इस तीर्थाटनके समय मुझे समस्त प्राणियोंका वन्धु जैनधर्म हाथ लगा। जब मुझे जैनधर्मका लाभ होगया तो मैंने सोचा कि अब मुझे धनसे, गोत्रसे, स्वजनोंसे और माता-पितासे क्या प्रयोजन है ? और यह सोचकर मैं ब्रह्मचारी होगया और व्रत तथा शीलोंका पालन करने लगा। तबसे ही जिनेन्द भगवानकी पूजा-वन्दना करता हुआ अपना काल-यापन कर रहा हूँ।"

रुद्रदत्तकी यह बात सुनकर जिनदासके मनमें बहुत ही कौतुक हुआ और उसे रुद्रदत्त इस प्रकारका दिखलाई दिया

मानो वह मूर्तिमान् धर्म हो। वह रुद्रदत्तासे कहने लगा—"हे स्वामिन्! आपने जो यह ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है सो वह सदाके लिए लिया है अथवा किसी निश्चित अवधि तकके लिए? आप यह बात मुझे निश्चय पूर्वक बतलाइए।"

जिनदासकी बात सुनकर क्षुल्लक महाराज कहने लगे—"श्रेष्ठिन्! हमने इस ब्रह्मचर्य व्रतको सदाके लिए नहीं लिया है। परन्तु जब मैनें परमोत्तम जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया है तो अब मुझे संसार समुद्रमें डुबोने वाले मैथुनसे कोई मतलब नहीं रह गया है।"

क्षुल्लक वेषधारी रुद्रदत्तकी यह बात सुनकर जिनदासके मनमें अधिकाधिक कुतूहल बढ़ने लगा। उसने फिर रुद्रदत्तासे पूछा—महाराज यदि आपने सदाके लिए ब्रह्मचर्य व्रत नहीं लिया है तो हमारे घरमें एक बहुत ही सुन्दर ब्राह्मण कन्या है और उसे हम किसी भी मिथ्यादृष्टी पात्रको नहीं देना चाहते हैं। हमारी इच्छा उसे किसी सम्यग्दृष्टी श्रावकको देनेकी है। सो यदि आपकी इच्छा विवाह करनेकी हो तो मैं इस कन्याका विवाह आपके साथ कर सकता हूँ।"

जिनदास सेठकी बात सुनकर रुद्रदत्त कहने लगा—"श्रेष्ठिन्, किसी बड़े ही पुण्य योगसे तो मैंने यह जैनधर्म प्राप्त किया है! और इस समय सब प्रकारके गृह बन्धनसे निश्चिन्त होकर धर्म-साधन कर रहा हूँ। इस लिए अब तो चित्त नहीं चाहता कि फिरसे अपनेको संसारके जंजालमें फंसाऊँ!"

यद्यपि रुद्रदत्ताने इस प्रकार सेठसे अपने विवाह न करनेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु वह इसपर अन्त तक स्थिर न रह सका और जिनदासने रुद्रदत्ताके साथ सुन्दरी सौम्याका विधिवत् पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कर दिया।

इस प्रकार जिस दिन रुद्रदत्तने सौम्याके साथ अपना

विवाह संस्कार निष्पन्न किया उसी दिन वह हाथमें नवीन कङ्कण बांधे हुए जुवारियोंके निकट हंसता हुआ पहुंचा और उनसे बड़े ही आनन्दके साथ कहने लगा—मित्रों, आप लोगोंके बीच उस दिन मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, सौम्याके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लेनेसे आज भली भांति पूर्ण हो चुकी। इस प्रकार सौम्याके साथ विवाह करनेके पश्चात् रुद्रदत्त फिर जुवारियोंके साथ दिन रात द्यूत क्रीडा करने लगा और इसी प्रकार धूर्तताके साथ सानन्द अपना जीवन विताने लगा।

परंच, इसी नगरमें सुमित्रा नामकी एक वृद्धा वेश्या रहती थी। इसकी लड़कीका नाम कामलता था। कामलता बहुत सुन्दर थी और उसके साथ रुद्रदत्तका पहलेसे ही प्रगाढ़ स्नेह-सम्बन्ध चला आ रहा था, सो वह उसके साथ भांति भांतिके मनोरम भोगोंका भोग करने लगा।

जब सौम्याको मालूम हुआ कि उसे एक बहुत ही धूर्त और मायावी रुद्रदत्तने विवाह लिया है तो वह अपने मकान-के अन्दर रहती हुई ही अपने व्रत और शीलकी रक्षा करने लगी। सौम्याके पिताने उसे बहुत सा धन दिया था, सो उसने एक उत्तुङ्ग सहस्रकूट जिन चैत्यालयका निर्माण करवाया और तत्पश्चात् उसने माङ्गलिक गाजे वाजेके साथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई और इस महोत्सवमें सम्मिलित हुई समस्त जनताको एक प्रीतिभोज भी दिया। इस अवसरपर सौम्याने रुद्रदत्त, और कामलता आदि सबका स्नेहके साथ निमन्त्रण किया और उन्हें अपने घर भोजन कराया।

इस समय सुमित्राने एक बहुत ही भयंकर षड्यन्त्र रचा। उसने एक घड़ेमें फूल-माला तथा भयंकर और विषैला सांप बन्द किया और उसपर एक स्वच्छ वस्त्र लपेटा तथा उसपर दही, दूब अक्षत डाले। घड़ेको इस प्रकार वाहरसे बहुत ही सुन्दर और माङ्गलिक वनाकर सुमित्राने इसे दुष्ट मनसे लाल कमलके समान सुन्दर कामलताके हाथमें दे दिया।

इधर जब रुद्रदत्त आदि सब लोग अच्छी तरह भोजन कर चुके और पान-सुपारी लेकर जिन मन्दिर चले गये तो जिनेन्द्र भगवानकी भक्त सौम्याने बड़े ही सरल भावसे उस घड़ेको कामलताके हाथसे ले लिया। उसने घड़ेको खोला और उसके अन्दरसे पुष्पमाला उठाई तथा गुमचीके समान लालनेत्र और चपल जिह्वा वाला काला सांप भी उठाया। परन्तु सौम्याके हाथका स्पर्श होते ही वह भयंकर सांप तत्क्षण पुष्पमाला वन गया। सौम्या इस विशाल और सुगन्धित पुष्पमालाको लेकर जिन-मन्दिर पहुंची और बड़ी ही भक्तिके साथ उसने इस मालाके द्वारा भगवान्के चरण कमलकी अर्चना की। तदनन्तर उसने अपने घर आये हुए रुद्रदत्त आदि को खूब अच्छी तरहसे भोजन कराया और भोजनके अन्तमें उन्हें पान सुपारी दी। इसके साथ ही उसने कामलताके हाथपर उसकी मां द्वारा भेंट की गई माला उपहार स्वरूप रख दी। ज्यों ही कामलताने अपने हाथमें उस मालाको लिया, वह कृष्ण सर्पके रूपमें बदल गई और उसने कामलताको डस लिया।

जब कामलताकी माता सुमित्राने देखा कि उसकी पुत्रीको सांपने डस लिया है तो उसने उस सांपको कामलताके हाथसे हटाकर एक घड़ेमें बन्द कर दिया। इधर कामलताका सम्पूर्ण शरीर विषसे व्याप्त हो गया और वह कुछ क्षणोंके बाद ही वड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर गई।

जब कामलताकी माता सुमित्राने देखा कि उसकी पुत्रीका शरीर एकदम निश्चेष्ट हो गया है, तो उसकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे और वह जोर जोरसे चिल्लाने लगी—अरे लोगों, देखो, इस सौम्याने सौतिया डाहसे हमारी कामलताको अकारण ही साँपके द्वारा मरवा डाला है।

जब सौम्याने सुमित्राकी यह बात सुनी और कामलताको सांपके द्वारा डसा हुआ देखा तो वह उस घड़ेको लेकर राजाके

पास जा पहुँची। ज्यों ही राजाको कामलताकी मृत्युका समाचार मिला, उसने सौम्यासे पूछा–सौम्या, बतलाओ तो यह कामलता किस प्रकारसे मर गई है? सौम्या बोली– 'राजन्, कामलताकी मृत्यु किस प्रकार हुई, मुझे इसका कोई पता नहीं हैं। फिर भी राजन्, आप मेरी एक बात अवश्य ही सुन लीजिए। वह बात इस प्रकार है :–

"सुमित्रा और कामलता दोनों ही एक घड़ेमें कुछ मालाएँ रखकर लायी थीं। सो मैंने इन मालाओंके द्वारा बड़ी ही भक्तिके साथ जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की और जब यह कामलता जिनमन्दिरसे लौटकर माताके साथ जाने लगी तो मैंने एक माला जो भगवान्‌की पूजासे बची थी, कामलताको भेंटमें दे दी। राजन्! इस कार मैंने तो अपनी पूजासे बची हुई मालाको ही कामलताके लिए उपहार स्वरूप दिया। परन्तु सुमित्रा कह रही है कि तुमने सांपके द्वारा मेरी पुत्रीको मार डाला है। यदि यह मान लूँ कि कामलताको सांपने डस लिया है तो राजन् इसके रहस्यको सुमित्रा ही जानती है। मुझे इस सम्बन्धकी कोई भी रहस्यपूर्ण बात मालूम नहीं है।"

सौम्या कहती गयी–"राजन! मैं तो समस्त प्राणियोंके परम हितकारी जैनधर्मको ही जानती हूं और मुझ जैसी जिन-श्रद्धानीसे यह दुष्कर्म होना कदापि सम्भव नहीं है।"

इसी बीच सुमित्रा भी उस भयंकर सांपको घड़ेमें बन्द किये हुए राज सभामें आ पहुंची और उसने राजाको उस घड़ेका सांप दिखलाया और कहा–राजन्, हमारी पुत्री कामलता अपने पतिके लिए बहुत ही प्रिय थी और इस कारण सौम्या इससे ईर्ष्या रखती थी। सो इसने यह भयंकर सांप मंगवाकर उसके द्वारा हमारी कामलताको डसवा दिया और इसे मार डाला।

सुमित्राने यह कहकर तत्काल ही घड़ेके सांपको राजाके सामने छुड़वा दिया। साँपके छूटते ही सौम्याने उसे अपने कमलके समान कोमल हाथमें ले लिया। ज्यों ही सौम्याने इसे अपने हाथमें लिया वह तुरन्त पाँच वर्णके खिले सुन्दर फूलोंकी मालाके रूपमें परिणत हो गया। परन्तु ज्यों ही सुमित्राने पुन: इसे अपने हाथमें लिया, वह तत्क्षण समस्त प्राणियोंको डराने वाले विराट साँपके रूपमें परिणत हो गई।

इसके बाद सौम्याने निश्चेतन कामलताको अपने हाथसे स्पर्श किया तो तुरन्त ही उसके शरीरमें रमा हुआ विषका वेग शान्त हो गया और वह सभामें ही उठकर खड़ी हो गयी।

यह दृश्य देखकर राजाको बहुत ही आश्चर्य और कुतूहल हुआ। उसने सामने उपस्थित सुमित्रासे शपथ लिवाई और उससे सत्य सत्य वात सुनानेके लिए कहा।

राजाकी वात सुनकर सुमित्रा कहने लगी—"राजन् यदि आप सच्ची ही बात पूछते हैं तो वह यह है कि मैं सौम्याको मारनेके लिए सांपको घड़ेमें बन्द करके लायी थी। परन्तु आश्चर्य है कि इस सांपने सौम्याको नहीं डसा और धर्मने इसकी रक्षा कर ली, लेकिन इसके विपरीत मेरी पुत्री कामलताको इसने क्रोधमें आकर काट खाया।"

इस घटनाको देखकर नगरकी देवियां कहने लगीं—पवित्र हृदय सौम्याका शील धन्य हैं, सत्य धन्य है, धैर्य धन्य ह और इसकी जैन धर्मके प्रति जो परम भक्ति है, वह धन्य है। देवियोंने सौम्याके शील आदिकी इस प्रकार प्रशंसा करके राजाकी सभामें ही सौम्याके मस्तकके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की।

इस अतिशयको देखकर रुद्रदत, राजा और जिनदास आदि सबके सब दर्शक गण जैनधर्मके परम भक्त बनगये। इतना ही नहीं, इन्होंने अपने जीवनको, धनको, यौवनको और सम्पत्तिको सबको ही चपल और अस्थिर समझ

कर समस्त आरंभ परिग्रह छोड़ दिया तथा धर्मसेन आचार्यके निकट दिगम्बरी दीक्षा ले ली।

इसके सिवाय नागरिक जन और महिलाओंने, जो इस घटनाके साक्षी थे, तथा सुमित्रा और कामलता आदिने भक्तिके साथ श्रावकके व्रत ले लिये।

अपने पतिदेवसे इस आश्चर्य गर्भित कथानकको सुनाते सुनाते ही खण्डश्रीका शरीर भक्तिसे रोमाञ्चित हो उठा और वह अत्यन्त आश्चर्यके भावमें कहने लगी—"प्राणनाथ, जब मैंने इस प्रकार सौम्याके शीलकी प्रशंसा सुनी, देवियोंके द्वारा उसकी पूजा देखी, महान् भयंकर साँपको पुष्पमालाके रूपमें परिणत होते हुए देखा और स्थिरचित्त सौम्याकी जिन-भक्ति देखी तो प्रियतम, यह देखकर ही मेरे सम्यक्त्वमें स्थिरता आई।"

इस प्रकार सौम्या ब्राह्मणीको देखकर खण्डश्रीके दृढ़ सम्यक्त्वी होनेका कथानक समाप्त हुआ।

—०—

६६. विष्णुश्रीकी कथा

अब अर्हद्दास सेठने विष्णुश्रीसे पूछा—हे प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाओ? वह कहने लगी—

"श्रेष्ठिन्! बत्सकावती देशमें अजितंजय नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम महादेवी था, जो इसे बहुत ही प्रिय थी। तथा इस राजाके एक मन्त्री था, जिसका नाम सोमश्री था। सोमश्रीकी पत्नीका नाम विमलमती था। विमलमती बहुत ही रूपवती थी, युवती थी और कला तथा विज्ञानमें पारंगत थी।

इन दोनों पति-पत्नियोंमें मंत्री मिथ्यादृष्टी था। वह खूब धन-धान्यसे सम्पन्न था और मिथ्यादृष्टी साधुओंको निरन्तर वस्त्र भोजन देता रहता था।

एक दिनकी बात है। एक महीनेके उपवासी समाधिगुप्त नामके आचार्य पर्यटन करते हुए सोमश्रीके घर आये। ज्यों ही सोमश्रीने अपने घर भिक्षाके लिए आये हुए एक दुर्बल साधुको देखा, उसने तत्काल उठकर बड़ी ही श्रद्धा भक्तिके साथ उन मुनिराजको पड़गाहा और अच्छी तरहसे पका हुआ आहार भिक्षाके रूपमें विधिवत् उन्हें दिया।

जब विशुद्धात्मा मुनिराज आहार कर चुके और उसने मुनिराजकी भावपूर्वक बन्दना की तो वह यह कहकर उसके यहाँसे चलदिए कि "तुम अपने दानके फलको प्राप्त करो।"

इस प्रकार जब वह तपोमूर्ति साधु सोमश्रीके घरसे चले गये तो उसके घर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। अर्थात् आकाशसे धन वृष्टि हुई, पुष्प वृष्टि हुई, शीतल मन्द और सुगन्धित वायु बहने लगी, देवोंने दुंदुभियां बजाईं और देवताओंने बड़ी ही प्रसन्नताके साथ सबके मन और कानोंको सुखद "धन्य दान, धन्यदान" की जय ध्वनियां कीं।

जब मन्त्री सोमश्रीने मुनिदानके कारण अपने घरमें होनेवाली यह पञ्चाश्चर्यकी वर्षा देखी तो उसका मन बहुत ही विस्मित और प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—मैंने अग्नि-होत्र विधान करके, वेद-वेदाङ्गके पाठी अनेक ब्राह्मणोंको इच्छानुसार खूब ही दान दिया। इसके साथ ही परिव्राजक, शैव, और कापालिकोंको भी खूब ही आदरके साथ दान दिया; परन्तु इस प्रकारका आश्चर्य तो आजतक नहीं देखा। ठीक है पुण्यात्मा प्राणियोंके लिए संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है।

इस प्रकार विचार करते-करतें मन्त्रीका शरीर संतोषसे रोमाञ्चित हो उठा और उसकी आत्माम अद्भुत शान्ति जाग्रत हुई। ठीक है, जो विवेकशील होता है वह कभी न कभी प्रबुद्ध होता ही है। इस तरह मन्त्रीके हृदयमें जब खूब ही शान्तिका सँचार होगया और उसका मन भक्तिसे भर-गया तो वह समाधि गुप्त मुनिराजके पास पहुँचा और उन्हें नमस्कार करके पूछने लगा—महाराज, मैंने आजतक महातपस्वी ब्राह्मणोको सोना, घोड़े, तिल, हाथी, दास, दासी, रथ, पृथ्वी, घर, कन्या और कपिला गाय—इस तरह दसों ही प्रकारके दान खूब दिये, परन्तु मैंने आजतक भी इस प्रकार महान् अतिशय नहीं देखा।

सोमश्रीकी यह भोली बात सुन कर मुनिराज बोले-मन्त्रिन्, संसारमें ये दान प्रशस्त दान नहीं हैं। मनीषी जन चार प्रकारके दानको ही प्रशस्त दान बतलातें हैं। वे दान हैं:—आहारदान, अभयदान, शास्त्रदान और औषधदान। मन्त्रिन्, इस समय मैं तुम्हें विद्वज्जनसंम्मत आहार दान-का माहात्म्य बतलाता हूँ, सो तुम उसे एकचित्त होकर सावधानीके साथ सुनो।

"दक्षिणदेशमें विन्या नामकी एक बड़ी नदी है। इस नदीके तटपर एक विन्यातट नामका लोकप्रसिद्ध नगर था। इस नगरमें सोमप्रभ नामका राजा रहता था। इसकी पत्नी का नाम सोमप्रभा था। सोमप्रभा बहुत ही सुन्दर थी और राजाको बहुत ही प्रिय थी।

एक समयकी बात है। सोमप्रभ नरेशने बड़ी ही प्रसन्नताके साथ अपने नगरके निकटवर्ती प्रदेशमें सुवर्ण यज्ञ किया। जब यह यज्ञ प्रारंभ हो गया। तो राजा इस यज्ञके प्रारंभ, मध्य और अन्तमें ब्राह्मणोंको बार-बार सुवर्णका दान करने लगा।

सोमप्रभकी यज्ञशालाके निकट ही एक विश्वभूति नामका तपस्वी रहता था। यह तपस्वी शिशिरकालमें शिला वीन करके अपनी जीविका-निर्वाह किया करता था। ग्रीष्म-कालमें कपोत जैसी वृत्तिसे निर्वाह करता था और वर्षाकालमें चकवे जैसी वृत्तिसे निर्वाह करता था। यह तपस्वी कपोत वृत्तिसे सत्तु बनाकर और उनको पानीमें घोलकर उसके समान भाग वाले चार पिण्ड बनाता एक पिण्डको वह अग्निमें होम देता, दूसरेको अपने पासमें रखकर दान करनेके लिए अतिथियोंकी प्रतीक्षा किया करता।

एक दिनकी बात है। पिहितास्त्रव नामके मुनिराज एक महीनेका उपवास किये हुये आहारके लिए विहार करतें-करते विश्वभूतिके घर आ पहुंचे। पिहितास्त्रव मुनिराजको अपने घर आया हुआ देखकर विश्वभूतिके हृदयमें भक्तिका स्रोत उमड़ पड़ा। वह मुनिराजको देखते ही उठ खड़ा हुआ और उन्हें नमस्कार करके निवेदन करने लगा—आइए महाराज, ठहरिए। तपस्वीने इस प्रकार मुनिराजको ठहरा कर बड़ी ही श्रद्धा और भक्तिके साथ उन्हें सत्तूका एक पिण्ड बना कर दिया। जब मुनिराजने सत्तूके इस एक पिण्डको खा लिया तो उसने अपने लिए तथा अपनी पत्नीके लिए तैयार किये गये दो अन्य पिण्ड भी मुनिराजको आहारमें दे दिये। इस प्रकार जव मुनिराज सत्तूके तीनों पिण्ड लेकर अपना आहार समाप्त कर चुके तो उनके मनमें बड़ा संतोष हुआ। मुनिराजने आहार कर चुकनेपर विश्वभूतिको आशीर्वाद दिया और वे वड़ी ही मन्दगतिके साथ उसके मकानसे निकलकर चल दिए।

जब मुनिराज आहार करके चले गये तो विश्वभूतिके घर-पर पंचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। इस आश्चर्य पूर्ण दृश्यको राजा और नगर निवासी सभी ब्राह्मणोंने देखा तथा सबको यह देख कर बड़ा ही विस्मय हुआ। उन सबको ऐसा मालूम हुआ जैसे

विश्वभूतिने सुवर्णयज्ञ किया हो और इसीसे वे सबके सब उसके घर पहुंचे।

परन्तु ज्यों ही राजा और ब्राह्मण विश्वभूतिके घरमें बरसाये गये इन रत्नोंको उठाने लगे, त्यों ही वे सब काले अङ्गारोंके रूपमें परिणत हो गये। जब राजाने इन रत्नोंको अंगारे बनते देखा तो उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने विश्वभूतिके घर आये हुए ब्राह्मणोंसे पूछा—ब्राह्मणों, आप लोग हमें यह बतलाइए कि यदि सुवर्णयज्ञके माहात्म्यके कारण इन रत्नोंकी वर्षा हुई है तो अब ये सब रत्न हम लोगोंके स्पर्श करते ही अंगारे क्यों बने जा रहे है?

जब नकुलने राजाकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा— "राजन्, विश्वभूतिके घरपर जो वर्षा हुई है सो यह सुवर्ण-यज्ञके कारण नहीं हुई है। इस पञ्चवर्णकी उज्ज्वल धन-वृष्टिमें विश्वभूतिके द्वारा दिया गया मुनिदान ही कारण है। इसलिए आपको विश्वभूतिका यह धन नहीं लेना चाहिए। यह धन आहारदानसे उत्पन्न हुआ है और विश्वभूतिका पुण्य इसकी रक्षा कर रहा है।"

जब राजाने नकुलकी यह बात सुनी तो वह इस समृद्धि-सम्पन्न विश्वभूतिसे कहने लगा—विश्वभूति, मैं तुम्हें अपने सुवर्णयज्ञके आधे फलको दे सकता हूँ, यदि तुम मुझे भी अपने मुनिराजको दिये गये आहारदानका फल दे सको। सोमप्रभ राजा विश्वभूतिके इस दानसे बहुत ही संतुष्ट था, परन्तु विश्वभूतिने राजाकी यह बात तनिक भी स्वीकार न की।

इस प्रकार समाधिगुप्त नामके आचार्य सोमश्रीसे कहने लगे—मन्त्रिन्, इस उदाहरणसे तुम्हें स्पष्ट होगया होगा कि संसारमें सुवर्ण आदि दस प्रकारके दान भी साधारण आहा-रदानकी तुलना तक नहीं कर सकते।

समाधिगुप्त आचार्य पुनः कहने लगे—हे धर्मात्मा मन्त्रिन्, अब तुम्हें मैं संक्षेपमें अभयदान आदि दानोंके माहात्म्यको बतलाता हूँ, सो तुम सुनों। इस दानका इतना महान् माहात्म्य है कि मनुष्य यदि सोनेका सुमेरुपर्वत और सम्पूर्ण पृथ्वी भी दान दे तो वह एकको जीवन दान देनेके फलकी वरावरी नहीं कर सकता। कहा भी है—

"यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं कृत्स्नां चापि वसुन्धराम्।
एकस्य जीवितं दद्यात् फलेन न समं भवेत्॥"

अर्थात्—जो सोनेके सुमेरु पर्वत और सम्पूर्ण पृथ्वीका भी त्याग करे तो वह एक व्यक्तिको दिये हुए जीवन-दानकी तुलनामें नहीं आ सकता है।

समाधि-गुप्त मुनिराज कहने लगे—मन्त्रिन्, यह तो अभदानका माहात्म्य है। अब तुम्हें मैं शास्त्र-दानका माहात्म्य संक्षेपमें बतलाता हूँ—

"एक ब्राह्मण पाण्डुरीक साँपको ले जा रहा था। सो वह साँप कहने लगा—जो स्त्रियोंके गुप्त चरित्रको प्रकट करता है, वह दीर्घजीवी नहीं होता। तथा जो गुरु अपने शिष्यको एक अक्षर भी पढ़ाता है संसारमें इससे बढ़कर अन्य धन नहीं है, जिसे देकर इस ऋणसे मुक्त हुआ जा सके। कहा भी है:—

'नीयमानः स्वपर्णेन नागः पण्डुरिरब्रवीत्।
यः स्त्रीणां गुह्यमाख्याति तदन्तं तस्य जीवितम्॥
एकमप्यक्षरे यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वाऽनृणी भवेत्॥"

समाधि-गुप्त मुनिराज सोमश्रीसे कहने लगे—मन्त्रिन्, यह शास्त्र-दानका माहात्म्य है। अब मैं तुम्हें औषध-दानके माहात्म्यको बतलाता हूँ।

मन्त्रिन्, जो व्यक्ति रोगसे पीड़ित साधुओंको औषध दान करता है, वह सौ जन्म तक नीरोग रह कर

जीवित रहता है। मुनिराज कहने लगे—मन्त्रिन्, ये चार दान ही संसारमें प्रशस्त माने गये हैं और इनसे ही सद्‌गुणोंका लाभ माना गया है। इसके विपरीत जो अन्य गोधन आदिका दान है वह कभी भी प्रशस्त नहीं माना गया"।

इस प्रकार सोमश्रीने जब देय और अदेय वस्तुका फल सुना और जैनधर्मका उपदेश सुना तो उसकी आत्मा बहुत ही प्रसन्न हुई तथा उसका मन लोकधर्मंस विरक्त हो गया। उसने समाधि-गुप्त मुनिराजके निकट मद्य, मांस, मधु और पांच उदुम्बर फल छोड़ दिए तथा पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार प्रकारके शिक्षाव्रतोंके साथ शङ्कादि दोषसे रहित और मेरुके समान निश्चल सम्यक्त्वको स्वीकार कर-लिया। और इस तरह सोमश्री एक विशुद्धात्मा व्यक्ति बन गया। तदनन्तर सोमश्रीने समाधि गुप्त स्वामीको नमस्कार किया और वह बड़ी ही भक्तिके साथ उनकी सेवामें विनय करने लगा—महाराज, मैं जीवन पर्यन्त लोहके शस्त्रको ग्रहण नहीं करूंगा। सोमश्रीने इस प्रतिज्ञाके पश्चात् एक बार फिर समाधि-गुप्त मुनिराजको श्रद्धा पूर्वक नमस्कार किया और जैनधर्मसे विभूषित होकर वह बड़ी ही प्रसन्नताके साथ अपने घर आ गया।

घर आकर सोमश्रीने काठकी छुरी तथा काठकी ही तल-वार और म्यान बनवाई और इन्हें ही अपने साथ लेकर राज सभाम आने जाने लगा।

एक दिन कुछ पुरोहित लोगोंने ईर्ष्याबश राजासे यह बात कहदी। उन्होंने कहा—महाराज, आपका यह मन्त्री बहुत ही दुष्टात्मा है और आपके प्रति जरा भी सद्भाव नहीं रखता। यह काठकी छुरी तथा काठकी ही तलवारको काठके म्यानमें रखकर आपकी सेवा करता है।

जब राजाने यह समाचार सुना तो वह सोमश्रीसे दिल-

ही दिलमें बहुत नाराज हुआ। एक बार राजाने सभामें एक प्रसङ्ग छेड़ दिया और वह नील कमलके समान चमकती हुई अपनी तलवार देखने लगा। राजाके मनमें छल था अतः वह क्रमसे सभी राजाओंकी तलवारें देखने लगा। इसके पश्चात् उसने सोमश्रीसे कहा—भद्र, जरा तुम भी अपनी तलवार दिखलाना। देखें तुम्हारी तलवार कैसी है?

सोमश्रीने राजा अजितंजयको म्यानमें रक्खी हुई अपनी तलवार दे दी। राजाने भी सोमश्रीके हाथसे वह चमकती हुई तलवार ले ली और उसे म्यानसे खींचा। म्यानसे खींचते ही तलवारके प्रभापुञ्जने आकाश और पृथ्वीको जगमग कर दिया और उस समय वह इस प्रकार मालूम दी जैसे दिपता हुआ सूर्य हो।

ज्यों ही राजाने इस तलवारको खोला वह क्रुद्ध मनसे उन चुगलखोरोंके मुखोंकी ओर देखने लगा। राजाको इस चमकती हुई लौहकी तलवारपर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसने इस तलवारको हाथमें लेकर अपनी मेघके समान गंभीर वाणीसे समस्त सभ्योंसे कहा—"आप लोगोंमेंसे कुछ सभ्योंने मुझे यह बतलाया था कि सोमश्री काठकी ही छुरी लेकर मेरे यहाँ आता जाता है और मेरी सेवा करता है। उन सभ्योंने इसे महान् दुष्टात्मा और पापात्मा बतलाया था। सभ्यों, अब आप लोग सोमश्रीकी इस तलवारको अच्छी तरह-से देख लीजिए।"

महाराज अजितंजयकी बात सुनकर सोमश्री कहने लगा—"राजन्, मैंने अपने गुरु महाराजके निकट एक ऐसा ही व्रत लिया है। वह व्रत इस प्रकार है कि मैं समस्त अनर्थोंकी जड़ लोहके शस्त्रको जीवन भर मन, वचन और कायसे ग्रहण नहीं करूँगा। राजन्, मुझसे द्वेष रखनेवाले मन्त्री और पुरो-

हितने आपको जो गुप्त समाचार दिया है वह सत्य ही है असत्य नहीं ।"

सोमश्री कहता गया—"राजन्, वस्तुत: मैं काठकी छुरी और काठकी तलवारके द्वारा ही बहुत दिनोंसे रात-दिन आपकी सेवा करता आ रहा हूँ ।"

मंत्री सोमश्रीकी यह बात सुनकर अजितंजय राजाकी जैनधर्ममें और अधिक श्रद्धा होगई । राजाने उसका खूब सम्मान किया । इसके पश्चात् ही वहाँ नगर देवियाँ आ पहुँचीं । उन्होंने सोमश्रीको मणिजटित सुवर्णमय सिंहासनपर बिठलाया और स्वच्छ जलसे भरे हुए मणिमय तथा सुवर्णमय कलशोंसे उसका विधिवत् माङ्गलिक अभिषेक किया ।

इसके वाद नगरनिवासी समस्त जन-समूह भी आकर वहाँ एकत्रित होगया और उसने भी बड़ी भक्ति, उत्साह तथा उत्सवके साथ सोमश्रीकी पूजा की ।

विष्णुश्री कहने लगी—प्राण नाथ, सोमश्रीके इस धार्मिक माहात्म्यको देखकर कुछ मनुष्योंके मनमें मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषा जागृत हो उठी और वे जिनसेन गुरुके निकट दीक्षित हो गये । बहुतसे मनुष्योंने आश्चर्यान्वित होकर सम्यक्त्व प्राप्त किया और जैनधर्मका लाभ लिया । इस अतिशयको देखकर ही मेरे सम्यक्त्वमें स्थिरता आई है ।"

इस प्रकार मंत्री सोमश्रीके सम्यग्दर्शनके लाभ तथा
सुवर्णयज्ञ आदिकी अनेक कथाओंसे सम्बद्ध
विष्णुश्रीके दृढ सम्यक्त्वको बतलाने
वाला यह कथानक सम्पूर्ण हुआ

—o—

६७. नागश्रीकी कथा

तदनन्तर अर्हद्दास सेठने अपनी चौथी पत्नी नागश्रीसे पूछा– प्रिये अब तुम बतलाओ कि तुम्हारे सम्यक्त्वकी स्थिरताका क्या कारण है ? नागश्री बोली–अब मैं अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाती हूँ। आप सुनिए–

"काशी नामक सुरम्य देशमें वाराणसी नामकी नगरी है। इस नगरीमें जितशत्रु नामका राजा रहता था। जितशत्रुकी पत्नीका नाम स्वर्णचित्रा था, जो राजाको बहुत प्रिय थी। इन दोनोंके एक कन्या थी जिसका नाम मुण्डिका था। मुण्डिका अपने माता-पिताको बहुत ही प्रिय थी।

मुण्डिकाको बाल्य अवस्थामें मिट्टी खानेका व्यसन था। एक बार ऋषभश्री आर्यिकाने इसे मिट्टी खाते हुए देखा तो आर्यिका वात्सल्य वश मुण्डिकासे कहने लगी- पुत्री, इस मिट्टीके खानेमें बहुत दोष है। इसमें अनन्त पृथि-वीकायके जीवोंकी हिंसा होती है। इसलिए मिट्टी कदापि नहीं खानी चाहिए।

आर्यिकाकी बात सुनकर मुण्डिकाकी रुचि धर्माचरणकी ओर बढ़ी। उसने मिट्टी न खानेका नियम ले लिया। जबसे उसने मिट्टी खाना छोड़ दिया, उसका शरीर देवाङ्गनाओंके समान सुन्दर होगया। उसका इतना सौन्दर्य निखरा कि जो भी राजा इसे देखता, उसके प्रति आकर्षित हो जाता और उसकी याचना करने लगता। इस प्रकार अनेक राजा मुण्डिका-को देखकर मोहित हुए और इन लोगोंने उसकी याचना भी की, परन्तु जितशत्रुने इन सबको इनकार कर दिया।

एक समयकी बात है। भगदत्त नामके राजाने अपनी विशाल सेनाके साथ चारों ओरसे वाराणसीको घेर लिया। उसने जितशत्रुक पास दूत भेजा कि या तो वह उसे अपनी

मुण्डिका कन्या तथा आधा राज्य दे। नहीं तो उसकी बुरी तरहसे दुर्गति की जायगी।

दूत जितशत्रुके पास पहुंचा और उसने भगदत्ताकी आज्ञा उसे जा सुनाई। इस प्रकार जब जितशत्रुको मालूम हुआ कि भगदत्त उसकी कन्या चाहता है तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने दूतको बुरी तरहसे डांटा। उधर तिरस्कृत दूत अपने स्वामी भगदत्ताके पास पहुँचा। इधर जितशत्रु युद्ध करनेके लिए अपने नगरसे निकल पड़ा।

जब भगदत्तने दूतके मुखसे जितशत्रुकी बात सुनी तो वह भी सेनाके साथ जितशत्रुका सामना करनेके लिए चल पड़ा। इसके पश्चात् कन्याके पीछे दोनों ओरकी सेनाओंमें भयंकर संग्राम छिड़ गया और इसमें दोनों ओरके वीर सैनिकोंका संहार होने लगा। ठीक ही है, स्त्रियां युद्धका कारण हैं।

इस युद्धमें घोड़ेने घोड़ेको गिराया, हाथीने हाथीको गिराया, रथके सवारने रथके सवारको गिराया और पदातिने पदातिको गिराया। उस समय घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंकी चिग्घाड़, रथोंकी चीत्कार, पदातियोंकी गर्जना और पृथ्वी तथा आकाशको आपूर्ण करनेवाले रणके बाजोंके शब्दसे इतना विराट कोलाहल हो रहा था कि किसीकी बात परस्परमें एक दूसरेको बिलकुल ही सुनाई नहीं देती थी।

भगदत्तने जितशत्रुको पराजित करदिया और वह युद्धसे भाग निकला। यह सुनकर जितशत्रुका समस्त अन्तःपुर भयसे कांपने लगा और जितशत्रुकी समतिके अनुसार वह शत्रुसे डरकर भाग निकला। किन्तु बार बार कहनेपर भी मुण्डिका जानेके लिए तैयार नहीं हुई। वह अपने पितासे बोली—पिता जी, मैं तो यहीं रहकर अपने पूर्व जन्ममें किये शुभाशुभ कर्मोंके फलको भोगूंगी। आपको यहाँ डर लग रहा है, सो आप चले जाइए।

जब जितशत्रुने पुत्रीकी यह धीरता पूर्ण बात सुनी तो उसकी आँखोंमें आँसू आगये और वह कहने लगा—पुत्रि, तुम जैसी सर्वाङ्ग सुन्दर पुत्रीको यहाँ अकेली छोड़कर जाना कदापि ठीक न होगा। सोचो, तुम्हारा यह प्रस्ताव कहाँ तक समुचित है? मुझे तो इससे बड़ा डर लगता है।

यह सुनकर मुण्डिका स्थिरचित्तसे बोली-पिता जी! आप मेरी चिन्ता न कीजिए। व्रतसे अथवा पुण्यसे किसी न किसी प्रकार मेरी रक्षा हो ही जायगी। यद्यपि शत्रु महान् पराक्रमी है, प्रतापी है, अधिक सेना लिए हुए है और आपके तिरस्कार करने पर उतारू है। वह कभी भी अपने वैरभावको नहीं छोड़ सकता है। अतः यहाँ आपके प्राण संकट में हैं, सो आप अवश्य ही इस स्थानसे प्रस्थान कर दीजिए। इस प्रकार पुत्रीकी इच्छानुसार जितशत्रु वहांसे चल दिया।

सुन्दरी मुण्डिकाने जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार किया, प्रत्याख्यान किया और अपने अन्तःकरणको स्थिर किया। और इस प्रकार ध्यान करती हुई वह ज्यों ही भगदत्तकी दृष्टि-के सामने आई, त्योंही जलदेवीके समान गङ्गा नदीमें प्रवेश कर गई।

ज्यों ही धीर हृदय मुण्डिका गंगामें कूदी, तत्काल उसे एक सुन्दर द्वीप दिखाई दिया। इस प्रकार मुण्डिका तरंगों-से भीषण गंगा नदीमें प्रवेश करके भी जरा भी नहीं डरी और विश्वस्त होकर आनन्दके साथ उस द्वीपमें ठहरी रही।

इधर भगदत्त राजा मुण्डिकाकी रूप-माधुरीपर मोहित होकर ज्यों ही गंगामें प्रवेश करने लगा, गङ्गा देवीने उसे किनारे पर ही स्तम्भित कर दिया।

प्रभातकाल हुआ और समस्त जनताने देखा कि भगदत्त राजा गङ्गाके जलमें निश्चेष्ट खड़ा हुआ है। इस समाचारको सुनकर नगरकी सम्पूर्ण जनता एकत्रित हो गई और उधर

अन्तःपुरमें जब यह समाचार पहुँचा तो वह भी बहुत ही विह्वल होकर राजाके निकट जा पहुँचा। ज्यों ही भगदत्तकी स्त्रियोंने राजाकी यह अवस्था देखी, वे एक दम शोकाकुल हो उठीं। उनकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे, वे रोने-चिल्लाने लगीं और बड़ी ही दीनताके साथ पतिकी भीख मांगने लगीं।

मुण्डिकाने ज्योंही स्त्री मण्डलका रोना चिल्लाना सुना उसका हृदय करुणासे पिघल गया और वह महलसे बाहर निकलकर कहने लगी—जिस देव, देवी अथवा मनुष्यने मेरे प्रति यह अतिशय दिखलाया हो, वह अब इस राजाको तत्काल छोड़ दे।

मुण्डिकाके इतना कहते ही राजा तत्काल छूट गया। छूटते ही उसकी जानमें जान आई और उसका मन बड़ा विस्मित हुआ।

देवताओंने बड़ी ही भक्तिके साथ मुण्डिकाको सिंहासनपर विराजमान किया और उसका जलसे अभिषेक किया। और जब अभिषेक हो चुका तो देवताओंने मुण्डिकाकी बड़ी ही श्रद्धाके साथ पूजा की।

भगदत्त राजा भी यह सम्पूर्ण दृश्य देख रहा था। इस समय वह मानरूपी पर्वतसे गिर चुका था, विनीत बन गया था और उसका हृदय आश्चर्यसे आन्दोलित हो रहा था। वह मनमें सोचने लगा—इस सुन्दरी कन्याके रूपको धन्य है, शीलको धन्य है और धैर्यको धन्य है। ये तीनों ही वस्तुएं अन्य स्त्रियोंमें दुर्लभ हैं।

राजा भगदत्त अपने मनमें यह सोचता हुआ मुण्डिकाके निकट आया और उसे नमस्कार करके अपने अपराधकी क्षमा याचना करने लगा। इस प्रकार भगदत्तके द्वारा पहले पीड़ित होनेपर भी मुण्डिका इस राजा तथा इसके सामन्तोंके

द्वारा एवं नगर-निवासी समस्त जनताके द्वारा खूब ही सत्कृत हुई।

जब जितशत्रुको अपनी पुत्रीके इस माहात्म्यका पता लगा तो वह तुरन्त ही अपने अन्तःपुरको साथ लेकर मुण्डिकाके पास आ पहुंचा।

इसी समय भगदत्त राजाके मनमें एकदम वैराग्य भाव जागृत हुआ और उसने जितशत्रु महाराजसे अपने पापकी क्षमा याचना की। अव भगदत्त राजा जितेन्द्रिय हो चुका था और कामके ऊपर भी विजय प्राप्त कर चुका था। सो उसने विरक्त होकर अपने पुत्रको राज्य दे दिया और धर्मसेन मुनिराजके निकट दिगम्बरी दीक्षा ले ली। इसके साथ ही अन्य राजाओं-के मन भी भोगोंसे उदास हो गये और वे भी इन्हीं मुनिराजके निकट दीक्षित हो गये।

यह अतिशय देखकर कुछ लोगोंने भक्तिपूर्वक सम्यक्त्व धारण किया और कुछ लोग अणुव्रत लेकर जिनधर्म परायण श्रावक बन गये।

मुण्डिका आदि स्त्रियां भी अत्यन्त विरक्त हुईं और ऋषभश्री आर्यिकाके निकट दीक्षा लेकर आर्यिका हो गईं।

नागश्री अर्हद्दास सेठसे कहने लगी—सेठ जी, इस प्रकार मुण्डिकाके अतिशयको देखकर ही मेरा सम्यक्त्व दृढ़ हुआ है।"

इस प्रकार मुण्डिकाके मृत्तिका भक्षणके त्यागके फलको देखनेसे दृढ़ सम्यक्त्ववाली नागश्रीका यह पांचवां कथानक समाप्त हुआ।

---

६८. पद्मलताकी कथा

तदनन्तर सेठ अर्हद्दासने पांचवी पत्नी पद्मलतासे पूछा-प्रिये, तुम भी अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाओ। सेठकी बात सुनकर पद्मलता बोली-अच्छी बात है, सुनिए—

"अङ्ग नामके देशमें चम्पा नामकी नगरी है। इसमें दन्तिवाहन नामका राजा रहता था। इस राजाकी एक महादेवी थी जिसका नाम विनयशोका था। विनयशोका बड़ी ही विनयवती और सदाचारिणी थी तथा राजाके मनको बहुत ही प्रिय थी।

इसी नगरमें एक महान् समृद्ध सेठ रहता था, जिसका नाम ऋषभदत्त था। ऋषभदत्तकी पत्नीका नाम पद्मावती था। ये दोनों ही दम्पति परस्परमें बड़े ही प्रेमानुरक्त थे और इन दोनोंके कमलके समान सुन्दराङ्गी एक पद्मश्री नामकी कन्या थी। पद्मश्री सम्यग्दर्शनसे सुशोभित थी और बहुत ही गुणवती थी।

इसी नगरमें एक बुद्धदास नामका सेठ रहता था, जो बौद्ध उपासक था। इसकी पत्नीका नाम बुद्धश्री था और वह भी बौद्ध उपासिका थी। इन दोनोंके मन और नेत्रोंको हरण करने वाला एक बुद्धसंघ नामका पुत्र था। बुद्धसंघका शरीर रूपराशिसे निखर रहा था और वह बुद्ध भगवान्का बहुत ही भक्त था।

एक दिनकी बात है। बुद्धसंघ अपने आयतनोंको देखता हुआ विहार कर रहा था कि इतनेमें सर्वोत्तम आयतन स्वरूप जिन-मन्दिरमें जा पहुंचा। वहां इसने फूलोंसे जिन पूजा करती हुई पद्मश्रीको देखा तो वह इसे देखते ही कामसे विह्वल हो गया। इसके बाद बुद्धसंघ अपने घर पहुंचा-

और इसने स्नान-भोजन आदि सब कुछ छोड़ दिया तथा मौन लेकर शय्यापर जा लेटा।

जब बुद्धसंघकी माताने देखा कि उसका पुत्र बिलकुल चुपचाप होकर शय्यापर पड़ा हुआ है, और उसका सम्पूर्ण मुख-कमल मुरझाया हुआ है तो उसने बुद्धसंघसे पूछा—पुत्र, इस प्रकार भोजन, ताम्बूल, पुष्प, स्नान और काश्मीर केशर आदि छोड़कर तुम किस कारण शय्यापर पड़े हुए हो ?

ज्यों ही कामके बाणोंसे आहत बुद्धसंघने माताकी यह बात सुनी, वह गरम गरम श्वासोच्छ्वास निकालता हुआ माता से कहने लगा—माता, मेरा ध्रुव विश्वास है कि यदि मुझे ऋषभदत्ताकी पुत्री पद्मश्री मिलती है तो मेरा जीवन है और यदि मुझे उसकी प्राप्ति नहीं होती तो माता, मेरी यह सुदृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं कल अवश्य ही प्राण-घात कर लूंगा।

जब बुद्धसंघकी माताने अपने पुत्रकी यह बात सुनी तो वह उसकी प्रतिज्ञासे डर गयी और अपने पतिके पास जाकर पुत्रकी स्थिति और प्रतिज्ञाका सम्पूर्ण समाचार सुना दिया।

जब बुद्धसंघके पिताने अपनी स्त्रीसे उक्त समाचार सुनें तो वह अपने पुत्रसे कहने लगा—'पुत्र, हम लोग उपासक हैं और मांसभक्षी हैं। उधर पद्मश्रीका पिता ऋषभदत्त श्रावक है। और इस बातको सब ही लोग जानते हैं कि वह भगवान् जिनेन्द्रके सिवाय अन्य किसीकी भी भक्ति नहीं करता है। सो पुत्र, तुम ही बतलाओ वह जैन सेठ हम जैसे बौद्धोंके लिए अपनी कन्या किस प्रकार दे सकता है ? अथवा पुत्र, हमने एक उपाय खोज निकाला है, जिससे वह अवश्य ही अपनी पुत्रीका विवाह तुम्हारे साथ कर देगा। अतः तुम चिन्ता छोड़ दो और विश्वस्त हो जाओ।'

इस प्रकार विचार करके वे दोनों यशोधर मुनिराजके पास

पहुंचे और वहां पहुंचकर बड़ी ही प्रसन्नताके साथ यथोचित स्थानपर जा बैठे। उन दोनोंने मुनिराजके निकट जैनधर्मका उपदेश सुना, अणुव्रत स्वीकार किये और बहुत ही विनयमूर्ति बने हुए छली श्रावक बन गये। दोनोंने बौद्धधर्म छोड़ दिया और जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करने लगे। इसके अतिरिक्त साधुओंके लिए बार-बार आहारदान भी देने लगे। दोनों ही पर्वके प्रत्येक अवसरपर बड़ी ही प्रसन्नताके साथ उपवास करने लगे और इस प्रकार सेठ ऋषभदत्त भी धर्म-वात्सल्यके कारण इनसे बहुत स्नेह करने लगा।

एक दिनकी बात है। वृद्ध बुद्धदासने उपवास किया था और वह ऋषभदत्तके चैत्यालयमें ही उपोषित बैठा हुआ था। सो ऋषभदत्त सेठ इसे सहर्ष अपने घर पारणाके लिए ले गया। वहां सेठने बुद्धदासको खीर परोसी और उससे भोजन करने की प्रार्थना की; परन्तु बुद्धदास बड़ी विनयके साथ बोला—सेठ जी! यदि तुम अपनी पुत्री पद्मश्री मेरे पुत्र बुद्धसंघके लिए देना स्वीकार करो तो मैं भोजन करूंगा।

जब सेठने बुद्धदासकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—भद्र, हम अपनी कन्याएँ विद्वान् श्रावकोंको ही देते हैं। सो आप भी श्रावक हैं, अतः आपके पुत्रको अपनी कन्या देनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार जब ऋषभदत्तने अपनी पुत्री देना स्वीकार किया तो दोनों ही विधिवत् भोजन करने लगे।

इसके बाद ऋषभदत्तने वीतराग जिनेन्द्र भगवान्की पुष्प और धूप आदिसे महती सेवा की तथा शंख और अन्य माङ्गलिक गाजे-बाजेके साथ पद्मश्री तथा बुद्धसंघका विधिपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कर दिया।

इस प्रकार जब दोनों पिता-पुत्र पद्मश्रीको विधिवत् विवाह

लायें तो इन दोनोंने एक दिनका उपवास रक्खा। तत्पश्चात् एक बौद्ध भिक्षुने पद्मश्रीको भेद प्रभेदपूर्वक बौद्धधर्मका उपदेश दिया; परन्तु पद्मश्रीको अपने जैनधर्म पर अविचल श्रद्धा थी, सो उसे बौद्धर्म बिलकुल ही रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ।

बौद्ध भिक्षु पुनः पद्मश्रीसे कहने लगें—"हमारा बुद्धधर्म ही समस्त प्राणियोंका हितकारी है, सब जीवोंके प्रति करुणाशील और सुखदायी है। इसके सिवा हे पुत्रि, हम लोगोंका ज्ञान भी भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालवर्ती पदार्थोंका ज्ञाता है, और बौद्धलोग इस ज्ञानको प्राप्त करके संसारमें सुखी रहते हैं।

हे पुत्रि, मैं अपने सत्य और साधु ज्ञानके द्वारा लोकके समस्त पदार्थोंको, जो जिस रूपसे व्यवस्थित हैं, जानता हूँ। तुम्हारे पिताने व्यर्थ ही जैनधर्मको अङ्गीकार किया और इसीके कारण उसे भयंकर जंगलमें हरिण होना पड़ा।"

जब पद्मश्रीने भिक्षुओंकी यह बात सुनी तो वह कहने लगी—"भिक्षुओं, मुझे आप लोगोंके ज्ञानका अच्छी तरह पता है, जिसके कारण आपलोगोंको यह मालूम हो गया कि मेरे पिता अनेक वृक्षोंसे भरे वनमें हरिण हुए हैं।"

एक दिनकी बात है। पद्मश्रीने समस्त बौद्ध भिक्षुओंका अपने घरपर आमन्त्रण किया। समस्त भिक्षु अपने-अपने जूतें पहिने तथा छाते लिए हुए आये और वे क्रमानुसार बैठते गये। उन्होंने अपने अपने जूते पद्मश्रीके घरके एक कोनेमें रख दिए। पद्मश्रीने इन भिक्षुओंका एक-एक जूता मंगवा लिया और उनके बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करवा लिए। उसने जूतोंके इन टुकड़ोंको मिलाते हुए अनेक प्रकारके सुगन्धित और रसमय भोजन तैयार किये। जब सब प्रकारके व्यञ्जन तैयार हो गये तो पद्मश्रीने समस्त भिक्षुओंको वे व्यञ्जन खूब ही

परोसे और भिक्षुओंने भी अंगुलियोंके संकेतसे उन्हें और माँग माँग कर संतोषके साथ आहार किया।

जब सब ही भिक्षुक भोजन कर चुके तो उन सबने जूतोंके स्थान पर केवल एक-एक जूता ही मौजूद पाया। यह देख कर उन लोगोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे तुरन्त ही पद्मश्रीसे विनय पूर्वक पूछने लगे:—हे उपासिके, हम लोगोंने उस घरमें अपने जूते उतारे थे; परन्तु समझमें नहीं आता कि हम लोगोंका एक एक जूता कहां गायब हो गया? आप कृपा करके अपने मकानमें इनकी सावधानीके साथ तलाश करवा दीजिए और उन्हें हम लोगोंको देदीजिए, जिससे हम शीघ्र ही सहर्ष अपने डेरे पर जा सकें।

जब पद्मश्रीने इन भिक्षुओंके मुँहसे यह बात सुनी तो वह कहने लगी—"भिक्षुओं, आप लोगोंको पास तो वह ज्ञान है, जो समस्त वस्तुओंका प्रकाशक है। फिर जिस ज्ञानसे आपलोग यह बतला सकते हैं कि तुम्हारा पिता वनमें हरिणके रूपमें उत्पन्न हुआ है, उस ज्ञानसे आप लोग अपने जूतोंका पता नहीं लगा सकते?"

जैसे ही बौद्ध भिक्षुओंने पद्मश्रीकी यह बात सुनी वे उससे बहुत ही बिगड़े और उन्होंने यह समाचार बुद्धदाससे जा सुनाया। वे कहने लगे—देखो, उपासक! तुम्हारी बहूने हमलोगोंका निमन्त्रण किया और उसमें हमलोगोंका एक-एक जूता पकाकर हम लोगोंको ही भोजनमें मिलाकर खिला दिया।

जब बुद्धदासने यह समाचार सुना तो उसे बड़ा ही क्रोध आया, उसकी आँखोंमें खून उतर आया और राजाके पास जा कर उसने उसे बहुतसा धन भेट किया और अपनी बहू द्वारा बौद्ध भिक्षुओंके तिरस्कृत किये जानेका सब समाचार जा सुनाया। राजाको भी इस समाचारसे बहुत ही क्रोध

आया तथा उसने शीघ्र ही बुद्धसंघ और पद्मश्रीको अपने देशसे निकाल दिया ।

जब ये दोनों देशसे निकाल दिये गये तो रास्तेमें किन्हीं दो व्यापारियोंसे इनकी भेंट हो गई और वे दोनों बड़े ही दुखित हृदयसे इन व्यापारियोंके साथ परदेश चले गये ।

रास्तेमें इन व्यापारियोंने अनजानमें, अपने समस्त परिवारके साथ विषमिश्रित भोजन कर लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यापारी और उनके समस्त साथी जन दिवंगत हो गये । बुद्धसंघने भी इन लोगोंके साथ ही यह विषमय भोजन किया था, सो उसका सम्पूर्ण शरीर भी विषसे प्रभावित हो गया और वह मरे हुएकी तरह निश्चेष्ट हो गया ।

यह समाचार जब बुद्धदासके पास पहुंचा तो उसे बहुत ही शोक हुआ और वह अपने आदमियोंको लेकर उस प्रदेशमें आ पहुँचा । उसने आते ही मृतकल्प पुत्रको देखा तो जोर-जोरसे रोना और चिल्लाना शुरू कर दिया—'पद्मश्रीने हमारे पुत्रको विष देकर मार डाला है ! अरे भाइयो, इतना ही नहीं, पद्मश्रीने इस व्यापारी मण्डलको भी विष खिला कर अकारण ही मार डाला है ।' इस प्रकार बुद्धदासने यह असत्य समाचार सर्वत्र जा सुनाया ।

इतना ही नहीं । बुद्धदासने समस्त उपस्थित जनताके सामने अपने मरे हुए पुत्रको हाथसे उठाया और उसे पद्मश्रीके ऊपर फेंक दिया ।

जब बुद्धदास इस प्रकारसे अपनी दुर्जन-लीलाका प्रदर्शन कर चुका तो पद्मश्रीने जिनेन्द्र भगवान्का स्मरण किया और कहने लगी—यदि रात्रिभोजन व्रतका कुछ भी माहात्म्य हो तो मेरे पतिदेव अभी हाल ही उठ कर बैठ जावें और स्वस्थ हो जावें ।

पद्मश्रीने इतना कहा ही था कि बुद्धसंघ और वह व्यापारी मण्डल विष-मुक्त हो गया और तत्काल ही सब-लोग उठ बैठे।

देवताओंने इस समय आकाशमें स्थित होकर महान् वैभवके साथ पद्मश्रीकी खूबा ही पूजा की। जब वे लोग पद्म-श्रीकी खूब ही प्रसन्न मनके साथ पूजा कर चुके तो अदृश्य हो कर बार-बार कहने लगें—पद्मश्रीके शीलको धन्य है, पद्म-श्रीके सत्य अणुव्रतको धन्य है, उसकी जिनभक्तिको धन्य है और उसकी जिनधर्मकी रुचिको धन्य है।

जब दन्तिवाहन राजा और उसके मन्त्रियोंने यह आश्चर्य पूर्ण दृश्य देखा तो वे बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए। उस समय राजा, मन्त्री और कतिपय पुरवासियोंके मनमें बड़ा ही वैराग्य उदित हुआ। उन्होंने अपने पुत्रोंको समस्त राज्य-भार तथा सम्पत्ति सौंप कर समस्त परिग्रहको छोड़ दिया तथा श्रीधर मुनिराजके पास वे सबके सब दीक्षित हो गये।

बुद्धदास, बुद्धसंघ और समस्त व्यापारी मण्डल भी जैनधर्मकी शरणमें जा पहुंचे।

इस प्रकार पद्मलता अर्हद्दास सेठ तथा अन्य सेठानियोंसे कहने लगी—इस अतिशयको देख कर ही मेरा सम्यक्त्व सुदृढ़ हुआ ह।"

इस प्रकार पद्मश्रीके निश्चल सम्यक्त्व और रात्रिभोजन त्याग व्रतके माहात्म्यसे सुदृढ़ सम्यक्त्वशाली पद्मलताका यह छठवां कथानक समाप्त हुआ।

—o—

६७. कनकलताकी कथा

तदनन्तर सेठ अर्हद्दास कनकलतासे पूछने लगे—प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाओ ? यह सुन कर कनकलता भी निम्न प्रकार आख्यान सुनाने लगी—

"अवन्ती नामके महान् देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है। इस नगरीमें एक नरपाल नामका राजा रहता था। नरपाल बहुत ही समृद्ध था और विद्वानोंके लिए बड़ा ही प्रिय था। इस राजाके एक महादेवी थी, जिसका नाम कनकमाला था। कनकमालाका शरीर सुवर्णके समान सुन्दर था और वह राजाके मनको बहुत ही प्रिय थी।

इसी नगरीमें एक सेठ रहता था, जिसका नाम समुद्रदत्त था। वह जैन श्रावक था और रत्न सम्पत्तिका उसके यहाँ अटूट भण्डार था। समुद्रदत्तकी पत्नीका नाम सागरदत्ता था, जो बहुत ही सुन्दर थी। इन दोनोंके एक पुत्र था, जिसका नाम ओमक था और एक पुत्री थी, जिसका नाम जिनदत्ता था।

तथा वत्सकावती देशमें कौशाम्बी नामकी नगरी है। इस नगरीमें अर्हद्दास नामका धीर बुद्धिशाली सेठ रहता था। इसकी पत्नीका नाम जिनदासी था। इन दोनोंके ऋषभदास नामका एक पुत्र था, जो बहुत ही बुद्धिमान् था। सो समुद्रदत्तने अपनी कन्या जिनदत्ताका विवाह महान् उत्सवपूर्वक ऋषभदासके साथ कर दिया।

इधर समुद्रदत्तका पुत्र ओमक सप्त व्यसनोंका सेवन करने लगा और उज्जयिनीमें ही इधर-उधर घूमकर बार बार चोरियां करने लगा। एक बार ओमक किसीके घरमें चोरी करने घुसा था सो कोतवालने उसे पकड़ लिया, परन्तु सेठके लिहाजके कारण वह महान् चोर होनेपर भी छोड़ दिया गया।

ओमक एक बार फिर धनकी लालसासे किसी अन्यके

मकानमें घुसा तो अबकी बार राजाने ही उसे पकड़ लिया और वह इसके ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। राजाने तुरन्त ही समुद्रदत्त सेठको बुलाया और उससे कहा—"सेठ जी, देखो, आज मैंने ही स्वयं आपके लड़केको चोरी करते हुए पकड़ा है। यह अनेको बार इस प्रकार चोरी करते हुए पकड़ा गया है; परन्तु मैंने आपके लिहाजके कारण ही इसे छोड़ दिया। अब आप अपने लड़केको समझा दीजिए कि वह आगे चोरी न करे। यदि वह फिरसे चोरी करता हुआ पकड़ा गया तो आप ध्यान रखिए, मैं इसे अवश्य मरवा डालूंगा।"

राजाकी यह चेतावनी सुनकर सेठको ओमकके ऊपर बड़ा ही क्रोध आया और उसने तत्काल ही इस कुल-दूषणको उज्जयिनीसे निकाल दिया।

एक दिन वह कुछ व्यापारी-पुत्रोंके साथ अपनी बहिन जिनदत्ताके यहाँ जा पहुँचा। जिनदत्ताने इन व्यापारी-पुत्रोंका तो भोजन और वस्त्र आदिसे खूब ही सत्कार किया, परन्तु ओमककी खबर तक न ली। इस कारण ओमकको अपने मन-में बड़ा ही खेद हुआ और वह तुरन्त ही मुनिगुप्त मुनिराज-के निकट जा पहुँचा।

ओमकने मुनिराजको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और श्रद्धाके साथ धर्मका उपदेश सुना तथा उसने मुनिराजके निकट बड़ी ही विनयके साथ प्रतिज्ञा की कि मुझे जिस फलका नाम मालूम न होगा, मैं उस फलको कभी न खाऊँगा, भले ही वह फल चाहे जितना सुन्दर हो।

जब जिनदत्ताको मालूम हुआ कि उसका भाई ओमक मुनिराजके दर्शन करने गया है और उनके निकट उसने सम्य-ग्दर्शनको प्राप्त किया है तो, जिनदत्तान एक आदमीको अपने

भाईके पास भेजा और उसके द्वारा यह समाचार भिजवाया कि हे भैया, तुमने मुनिराजके निकट जो निर्मल सम्यक्त्वका लाभ लिया है और अज्ञातफल न खानेका नियम लिया सो तुमने यह बहुत ही उत्तम कार्य किया है। अब तुम तुरन्त ही मेरे पास चले आओ।

जब जिनदत्ताके द्वारा भेजा गया आदमी ओमकके पास पहुँचा और उसने जिनदत्ताका समस्त सन्देश कह सुनाया तो ओमकने मुनिराजको नमस्कार किया और वह वहिनके पास चल दिया। ज्यों ही जिनदत्ताने अपने भाईको आया हुआ देखा, वह तुरन्त ही उठ बैठी और बड़े ही स्नेहके साथ उससे कुशल प्रश्न पूंछने लगी। तदनन्तर जिनेन्द्रभक्त जिनदत्ताने इसे बहुत मधुर भोजन कराया, सुन्दर वस्त्र दिये, धन दिया और इसका खूब ही सम्मान किया।

इधर व्यापारियोंके उन पुत्रोंने कौशाम्वी नगरीमें खूब ही व्यापार किया और इसके पश्चात् वे बड़ी ही प्रसन्नताके साथ वहांसे चल पड़े। ओमक भी इन लोगोंके साथ ही चल दिया। चलते चलते इन लोगोंने राजमार्ग छोड़ दिया और एक पगडण्डी पकड़ ली। फलतः वें मार्ग भूलकर एक वीहड़ वनमें जा पहुँचे और इधर उधर भटकने लगे। इस प्रकार भटकते हुए इन लोगोंको बड़े जोरकी भूख लग आई। वे आहारकी तलाश करने लगे और उन्हे उस वनमें एक फला हुआ सुन्दर धतूरेका वृक्ष दिखलाई दिया, इसके फलोंकी सुगन्ध समस्त दिशाओंमें व्याप्त हो रही थी। जिस वृक्षको देखते ही मूढ़ व्यापारी-पुत्रोंने, जो भूख और प्याससे एकदम व्याकुल हो रहे थे, इसके मनोहर फल उठा लिए और अपनी भूख शान्त करनेके लिए उन्हें उदरस्थ कर गये। परिणाम यह हुआ कि वे सबके सब मूच्छित होगये। ओमकने अज्ञातफल न खानेका नियम लिया था सो वह अपने मनके ऊपर संयम रखनेके कारण नहीं मरा।

तदनन्तर एक देवीने वृद्धाका रूप धारण करके ओमकके व्रतकी परीक्षा करनी चाही। सो ज्यों ही उसने ओमकको अकेला जीवित देखा, वह ओमकसे कहने लगी—पुत्र, जब तुम्हें खूब जोरकी भूख और प्यास सता रही है और इस वनमें भोजनका कोई अन्य प्रवन्ध भी नहीं है तो इन फलोंको तुमने क्यों नहीं खाया ?

"माता, मैंने मुनिराजके निकट यह व्रत लिया है कि मैं कभी भी अज्ञात फलोंका भक्षण नहीं करूँगा। इसलिए मैंने अपने इस व्रतको खण्डित करना उचित नहीं समझा—ओमकने उत्तर दिया।

जब देवीने यह बात सुनी और उसे अपने व्रतके प्रति इस प्रकार दृढ़प्रतिज्ञ पाया तो उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई और उसने अपना रूप प्रकट कर दिया। तत्पश्चात् वह ओमकसे कहने लगी—पुत्र, मैं इस समय तुम्हारे ऊपर खूब ही प्रसन्न हूँ। तुम मनवांछित वर मांग सकते हो।

जब ओमकने देवीकी यह बात सुनी तो वह देवीसे कहने लगा—देवि, तुम हमारे इन समस्त मित्रोंको जीवित कर दो।

देवीने ओमककी यह बात सुनकर समस्त व्यापारीपुत्रोंको चैतन्य करदिया। इसके पश्चात् देवी ओमकसे कहने लगी—पुत्र, मेरा हृदय खूब ही संतुष्ट है। सो अब जब तुम उज्जयिनी पहुँच जाओगें, तब मैं फिरसे तुम्हारा सम्मान करूँगी। देवीने उन व्यापारीपुत्रोंको उज्जयिनीका मार्ग दिखला दिया और वह जल्दीसे अपने स्थानको चली गई।

इस घटनासे समस्त व्यापारीपुत्र बड़े ही प्रसन्न हुए। वे ओमकके साथ वहाँसे चल पड़े और उज्जयिनी नगरीमें आ गये।

जब देवीको मालूम हो गया कि ओमक कुमार उज्जयिनी नगरीमें पहुँच चुका है, तो वह बड़ी ही प्रसन्नताके साथ ओमक-

के पास आयी। उसने आते ही राजा तथा जनताकी उपस्थिति-में लोगोंके मनको विस्मयमें डालने वाली पूजासे ओमक कुमार-की खूब ही पूजा की। उस समय देवीने ओमक कुमारको ऊपर पांच वर्णके मणियोंकी, जो अपने प्रभा-पुञ्जसे सूर्यकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर रहे थे, वृष्टि की। इसके सिवाय आकाशसे पुष्प वृष्टि आदि अन्य अतिशय भी हुए। तथा आकाशमें स्थित देवोंने ओमकके दृढ़ व्रतित्वकी खूब ही प्रशंसा की।

जब राजा तथा जनताने इस देवकृत अतिशयको देखा तो उन्होंने भी ओमक कुमारकी महान् वैभव तथा श्रद्धासे पूजा की।

नरपाल आदिको इस घटनासे बड़ा ही वैराग्य हुआ। उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्रोंको दे दिया और वे धरसेन आचार्यके निकट दीक्षा लेकर साधु हो गये।

ओमक आदिको भी इस धार्मिक प्रभावनासे बड़ी प्रसन्नता हुई तथा बहुतसे व्यक्तियोंने सम्यक्त्व और जैनधर्मका लाभ लिया और सच्चे श्रावक बन गये।

इस प्रकार अर्हद्दास सेठकी पत्नी कनकलता उससे कहने लगी—श्रेष्ठिन्, ओमकको देवी द्वारा इस प्रकार पूजित होते देखकर मेरा सम्यक्त्व सुदृढ़ हुआ है।"

इस प्रकार अज्ञात फल भक्षणके परित्यागसे दृढ़ सम्यक्त्वी तथा देवता द्वारा पूजित ओमकके दर्शनसे कनक लताके सुदृढ़ सम्यक्त्वको बतलाने वाला यह सातवां कथानक सम्पूर्ण हुआ।

—०—

७०. विद्युल्लता आदिकी कथा

तदनन्तर सेठ अर्हद्दास अपनी सातवीं पत्नी विद्युल्लतासे पूछने लगे—प्रिये, अब तुम बतलाओ कि तुम्हारे सम्यक्त्वमें किस प्रकारसे दृढ़ता आई? यह कहकर सेठका मन विद्युल्लताका कथानक सुननेके लिए उत्सुक हो उठा। वह कहने लगी—

"अपने इस समृद्ध देशमें एक मनोरम सूर्य कौशाम्बी नामकी नगरी है। इस नगरीमें एक शकट नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम विजया था। विजया इस राजाकी महादेवी थी और वह बहुत ही प्रसिद्ध थी। इसी नगरीमें एक सेठ रहता था, जिसका नाम शूरदेव था।

एक बार शूरदेव कलिङ्ग देशसे एक जात्यश्व नामक महान् घोड़ा लाया, जो मनके समान बेगवान था। शूरदेवने यह घोड़ा शकट महाराजको भेंट किया और इसके उपलक्ष्यमें शकटने इसे बहुतसा धन दिया। शूरदेव भी राजाके इस असीम धनको प्राप्त करके महान् धनाढ्य बन गया और आनन्दके साथ अपना जीवन बिताने लगा।

एक दिनकी बात है। एक महीनेका उपवास किये हुए श्रीषेण नामके मुनिराज गृह पंक्तिके क्रमसे चर्या करते हुए शूरदेवके घर पधारे और ज्यों ही शूरदेवने मुनिराजको अपने घरकी ओर आते हुए देखा, वह तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ और उनको पड़गाह लिया। तत्पश्चात् उसने मुनिराजको पवित्र और उच्चासनपर बिठलाया, चरण-प्रक्षालन किया, उनकी पूजा की, नमस्कार किया और मनः शुद्धि, वचन शुद्धि और काय शुद्धि की तथा आहार शुद्धि पूर्वक शूरदेवने उन योगीको बड़ी ही भक्तिके साथ आहारदान दिया। मुनिराजको आहार देनेके पश्चात् ही शूरदेवके यहाँ पञ्चाश्चर्य हुए। ठीक है, सच्चे मुनिराजकी भक्तिसे क्या नहीं होता है?

इस नगरीमें एक सागर नामका अन्य सेठ रहता था। इसको पत्नीका नाम श्रीदत्ता था। इन दोनोंके एक समुद्रदत्त नामका पुत्र था। समुद्रदत्त अत्यन्त दरिद्र था। सो जब उसने शूर-देवके घरमें धनकी वृष्टि आदि पंचाश्चर्य देखें तो वह अपने मनमें सोचने लगा—मैं भी कलिङ्गदेशमें जाकर जात्यश्व ले आऊँ और इस प्रकारकी सुखद तथा असीम विभूतिको प्राप्त करूँ। यह सोच कर वह अपने समवयस्क वणिक् पुत्रोंके साथ धनकी इच्छासे देशान्तरके लिए चल पड़ा। तत्पश्चात् धनराशिके इच्छुक उन सबने एक स्थानपर मिल कर बड़े ही संतोषके साथ यह निश्चय किया कि हम सब लोग बड़े ही आनन्दके साथ अपना क्रय-विक्रय समाप्त करके पलाश नामक गांवमें एकत्रित हो जावेंगे। यह निश्चय करके वे एक दूसरेसे अलग होकर धनकी चिन्तामें अपनी-अपनी दिशामें चले गये।

समुद्रदत्त एक समृद्ध गाँवमें ठहर गया। इस गांवमें एक अशोक नामका गृहस्थ रहता था, जो बड़ा ही धनाढ्य था और उसके पास अपार गोधन था। अशोकको अपने घोड़ोंकी परिचर्याके लिए एक आदमीकी आवश्यकता थी। सो जब समुद्रदत्तको यह समाचार मालूम हुआ तो वह अशोकके पास जा पहुंचा। अशोकने उससे पूछा-भद्र, तुम मेरे पास किस लिए आये हो ?

समुद्रदत्त कहने लगा—मुझे पैसेकी आवश्यकता है और मुझे मालूम हुआ है कि आपको एक आदमीकी आवश्यकता है। सो यदि आपकी इच्छा हो तो मैं आपके यहां कार्य करनेको तैयार हूँ।

समुद्रदत्तकी बात सुन कर अशोक उससे कहने लगा—भद्र, अच्छी बात है। तुम हमारे यहाँ काम करने लगो; परन्तु तीन वर्ष व्यतीत होनेपर ही मैं प्रधान घोड़ोंको तुम्हारे अधीन करूँगा।

समुद्रदत्तने अशोककी यह बात मंजूर कर ली और वह उसके आज्ञानुसार ही घोड़ोंकी देख भाल करने लगा। प्रभातके समय वह घोड़ोंको जल और घास वाले वनमें ले जाता और दिन भर प्रसन्नताके साथ उनकी देख भाल करता तथा सन्ध्याके समय वह अनेक प्रकारके पके हुए फल तथा कोमल एवं सुगन्धित फूलोंको लेकर वनसे लौटता और उन्हें गृहपतिकी कन्या कमलश्रीकी भेंट किया करता। इस प्रकार कालक्रमके अनुसार फलोंकी भेंट तथा मधुर संभाषणसे कमलश्री और समुद्रदत्त-दोनोंमें प्रगाढ़ मैत्री हो गई।

एक बार अशोककी कन्या कमलश्रीने अपने मनमें सोचा कि यदि मेरा विवाह हुआ तो वह समुद्रदत्तके साथ ही होगा, अन्य मनुष्यके साथ नहीं हो सकता।

एक दिनकी बात है। समुद्रदत्ताने बड़े ही स्नेहिल मनसे कमलश्रीसे कहा—प्रिये, अब तो मैं अपनी जननीके समान प्रिय जन्म भूमिको लौटना चाहता हूँ। समुद्रदत्तकी बात सुन कर कमलश्रीने कहा प्रियतम, मैं भी तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूँ; हमारी अश्वशालामें दो जात्यश्व बंधे हुए हैं, सो उन्हें मेरी सम्मतिसे ले लो ओर फिर यहाँसे प्रस्थान करो।

कमलश्रीकी बात सुनकर समुद्रदत्त अश्वशालामें गया और उसने समस्त घोड़े लाकर कमलश्रीके सामने करदिए और उससे पूछने लगा—प्रिये, बतलाओ, इनमें प्रधान अश्व कौन हैं जिन्हें मैं ले लूँ।

समुद्रदत्ताकी बात सुनकर कमलश्री उसके प्रेममें अनुरक्त होकर घोड़ोंकी ओर संकेत करके कहने लगी—प्रियवर, इन घोड़ोंमें ये ही घोड़े श्रेष्ठ हैं और मनके समान तीव्र वेगवाले हैं। इनमेंसे एक बड़े ही वेगके साथ आकाशमें उड़ता है और दूसरा जलके ऊपर दौड़ता है। ये दोनों ही घोड़े बहुमूल्य और मनोहर हैं। तुम इन दोनोंको ही ले लो।

समुद्रदत्तने पुनः कमलश्रीसे पूछा—हे मनस्विनि, तुम यह बतलाओ कि ये घोड़े किस प्रकार सर्वोत्तम हैं और इनकी क्या पहिचान है ?

कमलश्रीने समुद्रदत्तका आशय समझ लिया और वह उत्तरमें कहने लगी—प्रियवर, एक तो वगुलाके समान सफेद हैं और दूसरा लाल है ; परन्तु उसके नेत्र सफेद हैं। जो घोड़ा सीधा हो, उदासीन हो, जिसके कान स्थिर हों, शरीर उत्तम हो, और जो वर्णसे सफद हो, वही आकाशगामी जात्यश्व है और यही घोड़ोंका नायक है। इसके विपरीत जिसके कान वहुत चंचल हों और जो सोता हुआ दिखलाई दे तथा वर्णसे जो लाल हो वह जलगामी जात्यश्व है। तुम इन दोनों ही सुन्दर जात्यश्वोंको ले लो।

जब इस प्रकार कमलश्रीन समुद्रदत्तके लिए इन जात्यश्व घोड़ोंकी पहिचान करा दी और समुद्रदत्तने इन्हें अच्छी तरह पहिचान लिया तो उसका मन कमलश्रीके गुणोंके प्रति पहलेसे भी अधिक आर्कषित हो गया और वह कमलश्रीसे कहने लगा-प्रिये, मैंने तुम्हारे उपदेशसे इन सर्वोत्तम घोड़ोंको पहिचान लिया है। अब तुम जो सलाह दो मैं उसका पालन करनेके लिए तैयार हूँ। इस समय इन दोनों प्रेमियोंने अपने अपने मनकी बात प्रकट की और फिर दोनों ही चुप रह कर पूर्ववत् अपने दिन बिताने लगे।

इसके बाद समुद्रदत्तके साथी वे समस्त व्यापारीपुत्र इधर उधर घूमकर सबके समागमकी प्रतीक्षा करते हुए पलाशग्राममें आ पहुँचे। तव तक समुद्रदत्तको काम करते हुए भी तीन बरस हो चुके थे। अतः वह अपने स्वामी अशोकसे कहने लगा—स्वामिन् ! अब तो मैं अपनी मातृस्वरूपा जन्म-भूमिको लौटना चाहता हूँ। और अब वहींपर अपना सब कारवार करूँगा।

अशोकने ज्यों ही समुद्रदत्तकी यह बात सुनी, उसका चित्त स्नेहसे गद्‌गद हो उठा और आँखोंसे आँसू गिरने लगे। फिर वह सम्हल कर समुद्रदत्तसे कहने लगा—वत्स, तुम जा तो रहे ही हो। अब तुम अश्वशालामेंसे समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न, अत्यन्त सुन्दर, तथा तुम्हारे मन और नेत्रोंको जो अच्छे मालूम दें वे दो घोड़े अपने लिए ले लो।

समुद्रदत्तने अश्वपति अशोककी यह बान सुनी तो वह कहने लगा—स्वामिन्! आप तो मुझे उन लाल और सफेद दो घोड़ोंमें से ही कोई एक घोड़ा दे दीजिए।

अशोकने जब समुद्रदत्तकी यह चातुर्यपूर्ण बात सुनी तो वह कहने लगा—वत्स, ये दोनों ही घोड़े दुष्ट हैं और बहुत ही दूर तक उछलते कूदते हैं। इनका वंश अच्छा नहीं है। ये आलसी हैं। बहुत ही बुरी तरहसे हिनहिनाते हैं देशान्तरमें पहुँचकर इनका बहुत ही कम मूल्य उठेगा। इसलिए तुम इन घोड़ोंकी मांग न करो और अश्व समूहमेंसे अन्य जो घोड़े तुम्हें सुन्दर, वहुमूल्य श्रौर मधुरभाषी मालूम पड़ें उनमेंसे किन्हीं दोको ले लो।

चतुर समुद्रदत्तने अशोककी यह बात सुनकर कहा—स्वामिन्, मैं उन पूर्वोक्त घोड़ोंको छोड़कर और कोइं घोड़ा नहीं लेना चाहता। मेरा निश्चय है।

ज्यों ही अशोकने परदेशीका यह निश्चय देखा, वह तुरन्त ही अपने घर आया और अपने समस्त स्वजनोंसे पूछने लगा—यह बतलाओ, इस परदेशीको घोड़ोंकी परीक्षाकी पद्धति किसने बतलाई है? अशोकने अपने सभी स्वजनोंसे इस प्रश्नको ब।र-बार पूछा; परन्तु जब किसीने भी उसके इस प्रश्नका उत्तर नहीं दिया तो वह एक दूसरेके मुखके देखनेसे समझ गया कि निश्चयस मेरी पुत्री कमलश्रीने ही इस विदेशीको

यह पद्धति बतलाई है । जब अशोकको इस बातका निश्चय हुआ तो उसके आश्चर्यंका ठिकाना न रहा ।

उसने समुद्रदत्ताको बुलाया और उसे वह घोड़ा तथा अपनी कन्या कमलश्री देनेका वचन दे दिया । तदनन्तर उसने सुन्दर दिन, शुभ योग, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें कमलश्री और समुद्रदत्तका विधिवत् पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कर दिया ।

विवाहके इस माङ्गलिक अवसरपर अशोकने समुद्रदत्त-को बहुत सा धन दिया और वे दोनों घोड़े भी दिये । इसके पश्चात् उसने दोनोंको आनन्दके साथ विदा कर दिया ।

समुद्रदत्त अपनी पत्नी तथा दोनों घोड़ोंको लेकर वणिक-पुत्रोंके साथ जा मिला और जब सबके साथ वह नदी पार करनेके लिए नावपर चढ़नेको तैयार हुआ तथा स्वयं जल-गामी जात्यश्वपर सवार होकर चलने लगा तो धूर्त नाविक-के मनमें कुटिलता उत्पन्न हुई और वह समुद्रदत्तसे कहने लगा—यदि तुम इन घोड़ोंमेंसे मुझे एक सुन्दर घोड़ा दो तो मैं तुम्हें नदीपार ले जा सकता हूं, अन्यथा नहीं ।

जब समुद्रदत्ताने नाविककी यह बात सुनी तो वह नाविक-से कहने लगा—नाविक, हमारी जो तुमसे पहले बात हो चुकी है, मैं तुम्हें उतनी ही मजदूरी दूंगा ।

जब नाविकने समुद्रदत्तकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—महाशय ! यदि आप मुझे घोड़ा नहीं देना चाहते हैं तो आप इसी क्षण मेरी नावसे उतर जाइए ।

नाविककी बात सुनकर समुद्रदत्त कहने लगा—अच्छी बात नाविक, मैं अभी तुम्हारी नावसे उतर जाता हूं। परन्तु तुम्हें घोड़ा नहीं दे सकता। इस प्रकार कहकर समुद्रदत्त तुरन्त ही नौकासे उतर पड़ा। अब उसने जलगामी घोड़ेकी लगाम अपने हाथमें ली और आकाशगामी घोड़े पर वे दोनों

सवार हुए और इस प्रकार शीघ्र ही अपनी सूर्यकौशम्बी नगरमें आ पहुंचे। वहां पहुंचनेपर समुद्रदत्तने जलगामी घोड़ा तो कमलश्रीको सौंपा और आकाशगामी घोड़ेपर स्वयं सवार हो कर वह शकट राजाके पास जा पहुंचा।

शकट राजाने जब इस घोड़ेको जात्यश्व पाया तो वह समुद्रदत्तसे बड़े ही स्नेहके साथ मिला। उसने उसे अपने शरीरके सब आभूषण दिये, अनङ्गसेना दी, सतखण्डा महल दिया और आधा राज्य देकर उसके पाससे वह जात्यश्व ले लिया। तथा इस घोड़ेंको पालित-पोषित करनेके लिए महात्मा ऋषभसेन श्रावकको सौंप दिया।

ऋषभसेन बड़ी सावधानीके साथ अपने ही हाथसे इस घोड़ेको ले गया और उसे अपने तलघरेमें बांध दिया।

सेठ ऋषभसेन पर्वके दिन उस सुन्दर अश्वपर सवार होकर विजयार्ध गिरिपर जाता और वहांके चैत्यालयोंकी बन्दना करता। वह इस पर्वतपर स्थित सिद्धकूट चैत्यालयके निकट उस घोड़ेसे उतर पड़ता और फिर मन्दिरकी प्रदक्षिणा दे कर उसके अन्दर विराजमान जिनप्रतिमा की स्तुति करता। घोड़ा भी बड़ी ही विनय और शान्तभावसे मन्दिरके प्राङ्गणमें खड़ा रहता। सेठ ऋषभसेन पूर्ववत् जिनस्तुति करता और फिरसे उस जात्यश्वपर सवार होकर सूर्यकौशाम्बी आ जाता।

एक दिनकी बात है—सूर्य कौशाम्बीमें एक विशाल मुनि-संघके साथ जिनदत्त आचार्य पधारे। जब ऋषभसेनको यह शुभ समाचार मिला तो वह बड़ी ही भक्तिके साथ मुनि-संघ की बन्दना करनेके लिए तैयार हुआ। वह अपने आकाश-गामी घोड़ेपर सवार हुआ और तुरन्त ही मन्दिरके निकट जा पहुँचा। ऋषभसेनने घोड़ेको बाहर बांध दिया और आप स्वयं मन्दिरके अन्दर मुनि-संघके दर्शन करने चला। पहले सेठने जिनमन्दिरकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं और फिर भीतर

जा कर जिनेन्द्र भगवान्‌की तथा मुनि-संघकी भक्ति पूर्वक स्तुति की। तत्पश्चात् सेठ ऋषभसेन अपने घोड़ेपर सवार हो बातकी बातमें अपने घर आ पहुंचा।

एक दूसरे दिनकी बात है—शकट राजाके पड़ौसके एक बलवान् जितशत्रु नामक राजाने सभा-भवनमें हाथ जोड़े खड़े हुए सभासदोंसे कहा—सभासदो, सूर्यकौशम्वी नगरीमें शकट राजाके एक जात्यश्व जातिका घोड़ा है, जो आकाशमें उड़ता है और ऋषभसेन सेठके घर बंधा रहता है। सो आप लोगों में से जो कोई उस गगन विहारी और मनके समान तीव्र वेग-वान घोडेको ला सके और मुझे दे सके मैं उसे बहुत ही धन दूंगा।

जितशत्रु महाराजकी यह बात सुन कर एक सहस्रभट नामका सुभट बड़ी ही विनयके साथ राजासे निवेदन करने लगा—राजन्, आप आज्ञा दें तो मैं सूर्यके रथका घोड़ा भी ला सकता हूँ। पृथ्वीपर का घोड़ा आपकी सेवामें हाजिर करना तो मेरे लिए कोई कठिन नहीं है।

सहस्रभट इतना कह कर राजा जितशत्रुके निकटसे चल दिया। उसने क्षुल्लक का वेष वनाया और वह सूर्यकौशाम्बी में जा पहुंचा।

ज्यों ही सेठ ऋषभसेनने इस क्षुल्लकको देखा, उसने धर्म-वात्सल्यके कारण उसे इच्छाकार की और उसे अपने चैत्यालयमें ठहरा दिया। वहाँ इस दुष्ट बुद्धिने बहाना बनाया कि उसकी आँखें दुखने लगी हैं, सो वह दिनरात रोता-चिल्लाता हुआ पड़ा रहने लगा। कतिपय सत्यभाषी सज्जनोंने सेठ ऋषभसेनसे कहा—सेठजी, यह क्षुल्लक धर्मका ढोंग रच रहा है। वस्तुतः यह बड़ा ही धूर्त है। परन्तु धर्म-प्रेमी सेठने यह सब सुनते-समझते हुए भी उसे अपने घरमें ही बना रहने दिया। और एक बार जब इस धूर्तने सेठसे जात्यश्व

घोड़ेको दिखलानेके लिए कहा तो सेठने उसे वह सुन्दर घोड़ा भी दिखला दिया।

जब इस चोरने जात्यश्व घोड़ेको देखा तो वह बहुत ही नम्र बन कर सेठसे कहने लगा—श्रेष्ठिन्, यदि आप आज्ञा दें तो मैं ही अब इसकी सावधानीके साथ देख-भाल किया करूँ।

सेठने जब इस क्षुल्लककी बात सुनी तो वह कहने लगा—अच्छी बात है। क्षुल्लक महाराज, आप ही इसकी आजसे देख-भाल कीजिए। इतना कह कर उसने क्षुल्लकको वह घोड़ा सौंप दिया और वह उसकी रक्षा करने लगा।

एक रात यह क्षुल्लक वेषधारी सहस्रभट इस घोड़ेको लेकर सूर्यकोशाम्बीसे चल पड़ा। परन्तु ज्यों ही यह घोड़ा वेगके साथ आकाशमें उड़ने लगा, उसने सहस्रभटको एक बहुत ही भयंकर स्थानमें गिरा दिया जिससे उसकी तत्काल ही मृत्यु हो गयी।

इधर घोड़ा विजयार्धगिरिके सिद्धकूट चैत्यालयमें जा पहुंचा। उसने बड़ी ही भक्तिके साथ इस चैत्यालयकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं और आकर उसके प्राङ्गणमें ठहर गया।

उस समय इस चैत्यालयमें चित्रगति और मनोगति नाम के दो चारण मुनि ठहरे हुए थे। सो ज्यों ही एक विद्याधरने सिद्धकूट चैत्यालयके प्राङ्गणमें खड़े हुए इस घोड़ेको देखा, उसका मन एकदम विस्मयसे भर गया और वह दिव्यज्ञानी चित्रगुप्त मुनिराजसे पूछने लगा—भगवन् ! आप मुझे यह बतलाइए कि उतुङ्ग चैत्यालयके प्राङ्गणमें यह किसका घोड़ा खड़ा हुआ है ?

जब दिव्यज्ञान रूपी नेत्रधारी मुनिराजने विद्याधरके चित्तको अत्यन्त आश्चर्यान्वित पाया और उसकी यह बात सुनी तो वे उससे कहने लगे-वत्स! सूर्यकौशाम्बी नगरीमें शकट नामका राजा रहता है। गगनविहारी जात्यश्व घोड़ा उसीका है।

राजाने इसे ऋषभसेन सेठके यहाँ छोड़ रक्खा है। परन्तु जितशत्रु राजाकी इस पर नजर लग गयी सो उसकी अनुमतिके अनुसार सहस्रभट नामका सुभट उसे छल पूर्वक वहाँसे उड़ा लाया और ज्यों ही वह इसपर सवार होकर आकाश मार्गसे जाने लगा त्यों ही घोड़ेने छलांग लेकर उसे गिरा दिया और वह मर गया। मुनिराज कहने लगे—हे विद्याधर, पहले यह इस सिद्धकूट चैत्यालयमें ऋषभसेन सेठके साथ आया था, सो अब भी वह स्थिर चित्तके साथ यहाँ आ खड़ा हुआ है। तुम इस समय तीनवार इस गगनविहारी घोड़ेको गलेमें सहलाओ। चारण मुनिराजकी बात सुनकर विद्याधरने तीन वार हाथसे घोड़ेके स्कन्ध प्रदेशको सहलाया और इसके पश्चात् वह इस घोड़ेपर सवार हो गया। घोड़ेने बड़े ही वेगके साथ उसे सूर्यकौशाम्बी नगरीमें ला रक्खा।

जब सेठ ऋषभसेनको मालूम पड़ा कि उसका गगनविहारी घोड़ा उस मायावी दुरात्माने हरण कर लिया है, तो वह अपने उद्यानके चैत्यालयमें दो प्रकारके प्रत्याख्यानको ले कर कायोत्सर्ग करने लगा।

इस बीच जब राजाको खबर लगी कि किसी धूर्तने सेठके यहांसे जात्यश्वको उड़ा दिया है तो वह इस असावधान और अपराधी सेठके प्रति बहुत ही क्रुद्ध हुआ। वह दसों दिशाओंको कंपित करने वाली गंभीर ध्वनिसे अपने निकटवर्ती मनुष्योंसे कहने लगा—रे मनुष्यो, तुम लोग अभी जा कर उस दुराचारी और प्रमादी ऋषभसेन सेठको मार डालो और उसकी समस्त धन-सम्पत्ति छीन कर मेरे पास ले आओ।

इस प्रकार राजाज्ञा पा कर ज्यों ही ये राज-पुरुष सेठ ऋषभसेनके निकट पहुंचे तब तक देवताने उन सबको जिन-मन्दिरमें ही स्तंभित कर दिया। इतनेमें वह जात्यश्व भी वहाँ

आ पहुँचा । उसने चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणाएं कीं और बड़ी ही विनयके साथ अपना मस्तक झुकाये हुए वह सेठके पास जा खड़ा हुआ ।

यह दृश्य देख कर आकाशमें स्थित देवगण बड़े ही आनन्द के साथ कहने लगे—दृढ़व्रती सेठ धन्य हो, तुम्हारी धार्मिक दृढ़ता धन्य है और तुम्हारी जिनेन्द्र भक्ति भी धन्य है। जैनधर्मका माहात्म्य भी इतना आश्चर्यकारी और लोकातिशायी है जो देवता तक इस प्रकारके उपसर्गोंका निवारण किया करते हैं ।

जब ऋषभसेन सेठका उपसर्ग दूर हो गया तो देवताओंके मनमें भी महान् आश्चर्य हुआ और उन लोगोंने बड़े ही भक्ति भाव और वैभवके साथ सेठकी पूजा की । इस प्रकार जब राजा और पुरवासी जनताने देखा कि ऋषभसेन सेठकी देव तक महत् श्रद्धा-भक्तिके साथ पूजन कर रहे हैं तो इन लोगोंके मनमें भी बड़ा विस्मय और आनन्द हुआ तथा सब ही ने मिलकर सेठसे क्षमा याचना की ।

इसके बाद राजाने, सेठने, मंत्रीने और बहुतसे नगर निवासियोंने भी शुद्ध हृदय हो कर जिनदत्त मुनिराजके निकट दीक्षा ले ली ।

गुणवान् सेठकी इस आश्चर्य पूर्ण घटनाको देख-कर समुद्रदत्तने कमलश्रीके साथ तथा अन्य बहुतसे नगर निवासियोंने विस्मित मनके साथ जैनधर्म तथा सम्यक्त्वका लाभ लिया और सच्चे श्रावक बन गये ।

इस घटनाको सुनते सुनते अर्हद्दास सेठका मन आश्चर्यसे परिपूर्ण होता जा रहा था, सो विद्युल्लताने जिनेन्द्र भगवानके चरण-कमलके प्रति भ्रमर स्वरूप और पत्नियोंसे घिरे हुए सेठसे कहा—श्रेष्ठिन्, देवताओंके द्वारा किये गये इस आश्चर्यपूर्ण दृश्यको देख कर ही मेरा सम्यक्त्व सुदृढ़ हुआ है ।

अर्हद्दासने विद्युल्लताके इस सुन्दर कथानकको सुना और सुन कर कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली तथा विनयशील अपनी स्त्रियोंसे वह कहने लगा—प्रियाओं ! आप लोगोंने बहुत ही उत्तम घटना सुनी देखी और कही तथा हम लोगोंने भी उसे सम्पूर्ण विश्वासके साथ सुना। इसके सिवाय हम लोगोंको यह श्रद्धा है कि यह घटना इस प्रकारकी ही होगी और उसका प्रत्यय भी है। तथा यह घटना हमें रुचिकर है।

जब अर्हद्दासकी अन्तिम पत्नी कुन्दलताने अर्हद्दासकी यह बात सुनी तो उसका मन बड़ा ही आश्चर्यन्वित हुआ और वह विद्युल्लतासे कहने लगी—बालिके, तुमने जो सेठको आश्चर्य पूर्ण कथानक सुनाया है सो उसे न तो तुमने ही सच्चा-सच्चा सुनाया है और न मैंने ही उसे ठीकसे सुना है। इसके सिवाय तुम्हारे इस कथानकपर न तो मुझे जरा भी श्रद्धा है, और न प्रत्यय ही। और न मुझे यह घटना जरा भी रुचिकर मालूम, हुई तथा मेरे अनुभवमें तो यह बिलकुल ही नहीं आ रही है। कुन्दलता कहती गयी—और इस व्याकुल चित्त सेठके वृत्तान्तको सुनकर न मेरा सम्यक्त्व ही दृढ़ हुआ है और न मेरी बुद्धि ही धर्ममें स्थिर हुई है।

जब वृक्षके नीचे बैठे हुए राजा और मन्त्रीने तथा वृक्ष पर चढ़े हुए चोरने कुन्दलताकी यह बात सुनी तो उनके मनमें बड़ा ही विस्मय हुआ और राजाने सोचा—"मैं प्रभात होते ही सेठकी इस पत्नी कुन्दलताको अवश्य ही अपने हाथसे दण्ड दूंगा। यह बड़ी ही दुष्ट स्त्री है। इसके सिवाय सेठकी उन अन्य पत्नियोंकी, जिनका चित्त इस घटनाको सुन कर विस्मित हुआ, मैं महान् वैभवके साथ खूब ही भक्ति और सम्मान करूंगा।

राजाने बहुत देर तक इस प्रकार अपने मनमें विचार किया और प्रभात होते ही वह वृक्षसे निकल कर शीघ्र ही अपने नगर में चला आया। इसके पश्चात् वह सेठके घर पहुँचा और रात

के आख्यान तथा उपवासकी कठिनाईको उससे पूछने लगा। इसके सिवाय वार्तालापके प्रसङ्गमें राजाने सेठके सामने ही उसकी पत्नियोंसे भी पूछा कि आप लोग कृपया यह बतलाइये कि जब आप बड़े ही स्नेह तथा धर्म बुद्धिके साथ अपने अपने आख्यान सुना रही थीं तो आप लोगोंमेंसे वह कौन महाशया थीं जो यह कह रही थीं कि—"इस घटनाको न तो तुमने अच्छी तरह दे ा है और न अच्छी तरहसे कहा ही है। यह घटना असम्बद्ध है सो मैंने इसे अच्छी तरहसे सुना भी नहीं है। और न मुझे इस घटनाके बारेमें कुछ भी श्रद्धा है और न प्रत्यय ही।" और जो यह भी कह रही थीं कि मुझे तुम्हारा यह कथानक बिलकुल ही रुचिकर नहीं लगा है और अनुभवमें तो कुछ भी नहीं उतर रहा है। सो देवियो, आप यह सब मुझे संक्षेप में बतलाइए कि यह बात क्या वह जान बूझकर कह रही थीं अथवा अनजान में ?"

जब कुन्दलताने राजाकी यह बात सुनी तो वह राजासे कहने लगी—महाराज, रातमें मैंने वह बात उक्त आख्यानोंको केवल आख्यान समझ कर ही कही थी।

कुन्दलताकी बात सुनकर राजा, मन्त्री और चोर तीनों ही विस्मित मनके साथ उससे कहने लगे—देवि, शूली पर चढ़ाये गयेके कथानकको तो हम लोगोंने अपनी आँखसे देखा है, सुना है और उसका हम सबको प्रत्यक्ष अनुभव भी है। फिर तुम किस प्रकार कह रही थी कि न यह कथानक ठीक तरहसे देखा गया है, न ठीक तरहसे सुना गया है और न ठीक तरहसे कहा ही गया है। और न मेरी इस पर कुछ श्रद्धा है न प्रत्यय है। तथा न यह बात मुझे कुछ भी रुचिकर है और न मेरे अनुभव में हो आ रही है ?

जब राजा, मन्त्री और चोर इतना कह कर रुक गये तो कुन्दलताने कहा—राजन्, ये सबकी सब जिनधर्ममें प्रवीण हैं।

जिनधर्मके माहात्म्यसे परिचित होनेके कारण इनके चित्त भी आश्चर्य पूर्ण हैं और इसी कारण ये सब अपने-अपने आख्यान सुना रहीं हैं, और कोलाहल कर रही हैं। परन्तु स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले जैनधर्मका माहात्म्य तो कर्मको नष्ट करनेवाले तपमें है जिसे वीर लोग भी नहीं करते। राजन्, मैंने केवल इसी प्रयोजनसे रातमें उन आख्यानोंके सम्बन्धमें कहा था कि न ये अच्छी तरह देखे गये हैं, न सुने गये हैं और न अच्छी तरहसे कहे ही गये हैं। राजन्, यद्यपि रातमें जैनधर्मके माहात्म्यके सम्बन्धमें काफी विवेचन हुआ है, परन्तु मैंने अब तक कुछ भी प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया था। आज मैंने उसका माहात्म्य देखा है अतः मैं उसे धारण करके निर्मल तपस्या करूँगी।

कुन्दलताकी बात सुन कर वे तीनों ही बहुत सन्तुष्ट हुए और उससे कहने लगे—भद्रे, तुमने वस्तुतः ठीक बात बतलायी है। वस्तुतः तुम ही दृढ़ सम्यक्त्वी और जिनधर्म परायणा हो, जिसको इतनी प्रशस्त गुणसम्पन्न बुद्धि उत्पन्न हुई।

अन्तमें राजाने इन कुन्दलता आदि समस्त स्त्रियोंके चन्द्रकी तरह निर्मल उदार तथा सुन्दर शीलकी खूब ही प्रशंसा की और तत्पश्चात् उदितोदय राजा, सुबुद्धि मन्त्री, अर्हद्दास सेठ और सुवर्णखुर चोरने अपनी अपनी सम्पत्ति अपने-अपने पुत्रोंको दे दी और सबके सब एक दम विरक्त हो कर आचार्य श्रीधरके निकट दीक्षित हो गये।

तदनन्तर उदितोदय महाराजकी महादेवियां और सेठकी मित्रश्री आदि पत्नियां भी ऋषभा आर्यिकाके निकट दीक्षित होकर आर्यिकाएँ हो गयीं।

बहुतसे अन्य जन भी इस घटनाको देखकर बड़े ही

विस्मित हुए और उन्होंने शुद्ध हृदय हो कर सम्यक्त्व सहित जैनधर्मको अङ्गीकार कर लिया।

इस प्रकार अर्हद्दास सेठकी मित्रश्री आदि
आठ पत्नियोंके दृढ़ सम्यक्त्वको
सूचित करने वाला यह
कथानक पूर्ण हुआ

---०---

७१. बलिके बकरेकी कथा

नासिक नगरकी पश्चिम दिशामें एक कुंकुम नामका देश था। यह देश बहुत ही जनाकीर्ण था। इसमें एक पलाश नामका गाँव था। यह गाँव भी धन धान्यसे सम्पन्न था।

इस गाँवके प्रधानका नाम सुदास था, जो बहुत ही धन-सम्पन्न था तथा इसकी पत्नीका नाम सुदासी था। सुदासी बहुत ही सुन्दर थी और सुदासके मन तथा नेत्रोंको बड़ी ही प्रिय थी।

इन दोनोंके एक वसुदास नामका पुत्र था। यह अपने माता-पिताके मनको बड़ा ही प्रिय था, बड़ा ही विनीत, रूपवान और जनप्रिय था।

एक बार सुदासने एक महान् सरोवर बनवाया, जिसमें कमल खिल रहे थे और और चक्रवाक आदि मधुर शब्द कर रहे थे। इस सरोवरके निकट ही उसने एक विशाल नन्दनवन बनवाया, जिसमें अनेक पक्षीगण चहचहाया करते थे और जो अनेक प्रकारके वृक्षोंसे मण्डित था।

इस नन्दनवनके बीचमें सुदासने एक गगनतलस्पर्शी और ध्वज़ासे सुशोभित उन्नत मन्दिर बनवाया और उसमें दुर्गादेवी-की मूर्ति प्रतिष्ठित की, जिसका मुख अत्यन्त विकराल था और ललाटकी भृकुटियां भयंकर थीं तथा जो जीवोंका संहार करने वाली मारीके समान मालूम देती थी।

सुदास प्रति छह महीनेमें अपने हाथसे मारेहुए भैंसों और बकरोंसे एक विशाल समूहके साथ दुर्गादेवीकी पूजा किया करता था।

एक दिनकी बात है। सुदास अचानक बहुत बीमार हो गया और उसे अपने जीवित रहने तककी आशा न रही। उसने एक आदमी भेज कर तुरन्त ही अपने पुत्र वसुदासको बुलवाया। सुदासके प्राण कण्ठगत हो चुके थे और वह चण्डिका-की भक्तिमें संलग्न था। ज्यों ही उसने अपने पुत्र वसुदासको सामने उपस्थित देखा, वह उससे कहने लगा—पुत्र, तुम प्रत्येक वर्षके प्रति छठे महीनेमें भैंसे आदिसे अवश्य ही चण्डिकाकी पूजा किया करना।

सुदासकी बात सुन कर वसुदास भी कहने लगा—अच्छी बात है, पिताजी, मैं अवश्य ही भैंसे-बकरे आदिसे चण्डिकाकी पूजा किया करूँगा।

सुदासने इस प्रकारसे जब अपने पुत्रको अपने ही मतके अनुकूल पाया तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह क्रूरहृदय चण्डीका ध्यान करते करते ही परलोक वासी हो गया। तथा अपने पूर्वजन्मके तीव्र पापके कारण इसी पलाश गाँवमें बकरा हुआ।

जब यह दीन बकरा छह महीनामें युवा हुआ तो वसुदासने अपने पिताके आज्ञानुसार इसे एक पीसे गये लेपसे मण्डित किया, पुष्प मालाएँ पहिनायीं और इसके पश्चात् उसने चण्डिका देवीके पाद-मूल में इसकी हत्या कर दी। इस बकरेका मांस

वसुदासके भोजन गृहमें पहुंचा वहाँ वह पकाया गया और वसुदासने बड़े ही संतोषके साथ उसका भक्षण किया। सुदासका जीव इस प्रकार लगातार सात जन्मोंमें बकरा हुआ और वसुदासने उसे अपने मृत पिताकी आज्ञाके अनुसार मार कर देवीकी बलि चढ़ाया और खाया।

कर्मयोगसे वसुदासके पिताका यह जीव फिर आठवें भवमें बकरा हुआ। वसुदासने इस बार भी इसे पीले लेपसे सज्जित किया, और पुष्प मालाएँ पहिना कर बलिके लिए चण्डिका देवीके पास ले जाने लगा। वसुदास इसे ले कर नन्दनवनमें पहुंचा कि बकरेको उस उद्यानमें विराजमान एक समाधिगुप्त नामके विद्वान् मुनिराज दिखलायी दिये। यह मुनिराज एक वृक्षके नीचे शान्त भावसे बैठे हुए थे, सो ज्यों ही बकरेने इन मुनिराजको देखा, उसे जातिस्मरण हो आया। वह मुनिराजके निकट जा पहुँचा और बहुत ही दीनता पूर्वक उनसे गिड़गिड़ाने लगा—हे महामति भगवन् ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर शीघ्र ही मुझे इस बन्धनसे मुक्त करा दीजिए, जिससे मैं स्वेच्छापूर्वक पृथ्वीपर विहार कर सकूँ।

जब मुनिराजने बकरेकी यह प्रार्थना सुनी तो वे कहने लगे—भद्र, मैं तुम्हें बन्धन-मुक्त करनेके लिए जरा भी समर्थ नहीं हूँ। तुमने पूर्व जन्ममें जो अशुभ कर्म किये हैं, पृथ्वीपर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो तुम्हें उनके फल-भोगसे मुक्त करा सके।

जब वसुदासने मुनिराजकी यह बात सुनी तो वह मुनिराजसे कहने लगा—भगवन, आप इस बकरेके साथ क्या बात कर रहे हैं? क्या मुझे भी बतला सकेंगे ? इतना कह कर वसुदासका मन मुनिराजका उत्तर सुननेके लिए उत्कण्ठित हो उठा।

मुनिराज भी बहुतसे जन-समूहसे घिरे हुए वसुदाससे

कहने लगे—"वसुदास, यह बकरा, तुम्हारे पिता का जीव है और तुम इसे सात बार मारकर चण्डिका देवीके पाद-मूलमें बलि चढ़ा चुके हो। अब आठवीं बार यह फिरसे बकरा ही हुआ है और इस बार भी तुम इसे देवीके पाद मलमें बलि चढ़ाने ले जा रहे हो। वसुदास देखो, इस बकरेका सम्पूर्ण शरीर भयसे किस प्रकार काँप रहा है और इसका चित्त किस प्रकार त्रस्त हो रहा है? इस बकरेने मुझे देखा और देखते ही यह मुझसे गद्‌गद वाणीमें कहने लगा—मुनिराज, आप समस्त प्राणियोंपर दया भाव रखते हैं और समस्त जनताके बन्धु हैं। इसलिए आप शीघ्र ही मुझे इस बन्धनसे मुक्त करा दीजिए। वसुदास, इस बकरेने मुझसे यह भी कहा—हे पतित पावन स्वामिन् आप मुझे बचाइए, संसारमें मेरा कोई रक्षक नहीं है। मै बड़ा पापी हूं और पूर्व जन्मके पापसे ही मुझे इस दुर्गतिमें जन्म लेना पड़ा है। इस प्रकार इस बकरेने यह कहते हुए अपने आक्रन्दनसे आकाशको मुखरित कर दिया और देखो तो इसका हृदय कितना व्याकुल हो रहा है। सो वसुदास, इसकी आर्तवाणी सुनकर मैंने इससे कहा है कि तू पूर्व जन्ममें बड़ा ही पापी, दुष्कर्मी और अभागा रहा है और तूने वैभवके लोभमें न जाने, कितने प्राणियोंका वध किया है। इस कारण मैं तुम्हारी इन दुष्कर्मोंके फल भोगसे एक क्षणके लिए भी रक्षा नहीं कर सकता।"

जब वसुदासने मुनिराजकी यह बात सुनी तो उसे बड़ा ही क्रोध हो आया और वह लाल-लाल आँखे किए सबके सामने मुनिराजसे कहने लगा—"मुनिराज! हमारे पिताने इस प्रकारका शुभ्र मन्दिर बनवाया है, सुन्दर उद्यान लगवाया है और कमलोंसे सुशोभित यह सरोवर निर्माण कराया है। उन्होंने अपने हाथसे अनेक जीवोंको मार करके देवताकी पूजा की है और वह कृतकृत्य हो कर शुद्ध मनके साथ मरे हैं। मुनिराज,

इस प्रकार हमारे पिताको दैवयोगसे यदि मोक्ष नहीं मिला है तो स्वर्ग तो उन्हें जरूर ही मिलना चाहिए। हमारे पिता बहुत ही धर्मात्मा थे। वे इतने पापी तो कभी भी न थे कि उन्हें पशु-गतिमें आकर बकरा होना पड़ता।

मुनिराज दिव्यज्ञानी थे और उनका समस्त शरीर धर्म-से सुशोभित था। उन्होंने वसुदासकी यह बात सुनी तो वे कहने लगे—वत्स, जीवोंकी हिंसा करनेवाले पापी प्राणियोंको कभी भी स्वर्ग नहीं मिल सकता है।

जब वसुदासने मुनिराज की यह बात सुनी तो वह मुनि-राजसे कहने लगा--व्यर्थके कोरे बकवादसे कोई अर्थ सिद्ध होने वाला नहीं है। हाँ, हमारे पिता जब मरने लगे थे सो उन्हें अपने धनके प्रति ममत्व भाव जागृत हो उठा था। इस लिए वे हम लोगोंको पृथ्वीमें गड़ा हुआ धन नही बतला गये। मुनि-राज, मुझे उस धनका कोई पता मालूम नहीं, सो मैंने उसे बहुत देखा-भाला, परन्तु वह मुझे हस्तगत नहीं हो सका और उसके प्राप्त न हो सकनेसे मेरे मनमें बहुत ही दुःख है। सो यदि यह उस गड़े हुए धनको मुझे दिखला दे तो मैं इसे अपना पिता मान सकता हूँ। आपके कहने मात्रसे नहीं।"

वसुदासकी बात सुन कर मुनिराज उस बकरेसे कहने लगे—भद्र! यदि तुम अपना गड़ा हुआ धन वसुदासको बतला दो तो यह तुम्हारा पुत्र वसुदास तुम्हें अभी हाल छोड़ देता है। और यदि तुम्हें अपने उस धनके प्रति अब भी लोभ बना हुआ है और अब भी उसे नहीं बतलाना चाहते हो तो यह तुम्हें कभी भी नहीं छोड़ सकता।

जब बकरेने मुनिकी यह बात सुनी तो वह अपनी ध्वनिमें मुनिराजसे कहने लगा—मुनिराज, यदि यह वसुदास मुझे छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा करे तो मैं इसे अभी हाल सारा धन

बतलानेके लिए तैयार हूँ। भला धन क्या प्राणोंसे भी प्यारा हो सकता है ?

वसुदास मुनिराज और बकरेके बीचकी बातसे बहुत ही आश्चर्यान्वित हो रहा था। सो मुनिराजने जब अपने दिव्य ज्ञानसे बकरेकी भाषाका अर्थ समझ लिया तो वह वसुदाससे कहने लगे—वसुदास, अपने पैरोंसे चलकर यह बकरा जिस स्थान पर पहुंचे और जिस स्थानको अपनी नाकसे सूंघे, बस समझ लेना तुम्हारा सम्पूर्ण धन वहीं पर गड़ा हुआ है। मुनिराज वसुदाससे इस प्रकार कहकर बकरेसे कहने लगे—बकरे, तुम अब अपने घर जाओ और धनके स्थानको नाकसे सूंघकर अपने पुत्रको बतला आओ।

जब मुनिराजने बकरेसे इस प्रकार कहा तो वह भी मुनिराजके आज्ञानुसार अपने महान् धन-सम्पन्न स्थानमें जा पहुंचा इस समय बहुतसे मनुष्य इस बकरेको घेरे हुए थे। बकरा बड़ी ही प्रसन्नताके साथ धनके स्थानपर पहुँचा। उसने अपने पैरकी खुरसे धनस्थानको खोदा और उसे सूंघकर वसुदासको बतला दिया।

वसुदासने उस स्थानको खोद करके जब उसमें रक्खे हुए अमूल्य रत्न, अपार चांदी-सोना, मोती-मूंगा आदि धनराशि देखी तो वह डर गया। उसके मनमें उत्कट वैराग्य भाव जागृत हुआ और वह इस प्रकार विचार करने लगा—देखो तो मेरे पिताका यह जन्म जन्मान्तर सम्बन्धी दिव्यज्ञान ! और इस साधुको भी देखो, जिसने यह सब समाचार जान लिया !

इस प्रकार विचार करके वसुदासने अपना यह समस्त धन अपने पुत्रको दे दिया और स्वयं समाधिगुप्त मुनिराजके निकट तप ले लिया। बकरेने मुनिराजके निकट सम्यक्त्व-पूर्वक पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ले

लिये। इस प्रकार गृहस्थ धर्मको स्वीकार करके वह मुनिराजके निकट ही प्रसन्नताके साथ रहने लगा।

जब सम्पूर्ण जनताने इस आश्चर्यपूर्ण घटनाको देखा तो सब लोग देवताके लिए बकरेकी बलि करनेसे डर गये। उन्होंने महत् दुःख देनेवाली जीव-हिंसा छोड़ दी और स्वर्ग तथा मोक्षको देनेवाला जैनधर्म स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार पलाशकूट गाँवमें उत्पन्न हुए वसुदासके द्वारा
देवीके लिए की जानेवाली हिंसासे सम्बन्धित
बकरेका कथानक सम्पूर्ण हुआ।

---o---

७२. मृगसेन धीवरकी कथा

अवन्ती नामके देशमें सिप्रा नदीके किनारे एक शिशप नामका गांव था। इस गाँवमें बहुतसे धीवर रहते थे।

इसी गाँवमें एक भवदेव नामका धीवर रहता था। उसकी पत्नीका नाम भवश्री था और इन दोनोंके एक मृगसेन नामका लड़का था।

तथा इसी गाँवमें एक सोमदास नामका दूसरा धीवर रहता था, जो हृदयसे बड़ा ही क्रूर था। इसकी पत्नीका नाम सेना था तथा इन दोनोंके एक घण्टा नामकी कन्या थी।

कुछ दिनोंके पश्चात् मृगसेनने इस घण्टाके साथ विधिवत् विवाह कर लिया। घण्टाने अपनी भक्तिसे पतिदेवका हृदय जीत लिया और वह आनन्दके साथ मृगसेनके घर रहने लगी।

इसी गाँवमें भगवान पार्श्वनाथका एक सुन्दर, विशाल और गगनतलस्पर्शी मन्दिर था। एक बार जयधन नामके मुनिराज संघके साथ विहार करते हुए इस पार्श्वनाथ मन्दिरमें आ पहुँचे।

मृगसेनने जब यह समाचार सुना तो वह भी मुनिराजके निकट पहुंचा और मुनिराजके मुखसे जैनधर्मका उपदेश सुना। उसने मुनिराजके पास यह नियम लिया कि वह सदा ही पहले पहल जालमें फँसी हुई मछलीको छोड़ दिया करेगा। जयधन महाराजके निकट यह व्रत ले कर और शीघ्र ही कन्धेपर जालको लटकाये वह नदीकी ओर चल दिया।

नदी पहुंच कर मृगसेनने उसके गहरे प्रवाहमें छपाकसे जाल डाल दिया और विश्वस्त हो कर मछलीके फंसनेकी प्रतीक्षा करने लगा। इतनेमें एक महान् वृद्ध मत्स्य जालमें फंसा, सो उसने नियमके अनुसार उसे छोड़ दिया। तदनन्तर इसने पुनः नदीमें जाल डाला और फिर वही वृद्ध मत्स्य जालमें आ फंसा। इसबार भी उसने इस मत्स्यको छोड़ दिया। इस प्रकार मृगसेनने बार-बार नदीमें जाल डाला, बार-बार वही वृद्ध मत्स्य जालमें फंसता और वह उसे छोड़ देता। अन्तमें इसने एक बार फिर नदीके जलमें जाल डाला तो दैवयोगसे वही पुराना मत्स्य फिर जालमें आ फंसा। मृगसेनने फिर इसे छोड़ दिया और अपना रिक्त जाल कन्धेपर लटका कर खाली हाथ घर आ पहुंचा।

जब उसकी घरवाली घण्टाने मृगसेनको खाली हाथ घर आया देखा तो वह बड़े ही रूखे स्वरमें बोली—अरे पापी, दुराचारी, घरमें खाली जाल ले कर क्यों आया है?

जब मृगसेनने अपनी पत्नी घण्टाकी यह कठोर वाणी सुनी तो उससे कहने लगा—प्रिये, मैंने मुनिराजके निकट एक इस प्रकारका व्रत लिया है कि पहली बार जाल डालने पर जो मछली जालमें फंसेगी, वह चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न होगी, मैं उसे अवश्य ही छोड़ दिया करूंगा। प्रिये, मैं यह व्रत ले कर शीघ्र ही अन्य साथी धीवरोंके साथ सिप्रा नदीमें मछलियां पकड़नेके लिए पहुँचा नदीके जलमें चार बार

जाल डाला; परन्तु चारों ही बार वही वृद्ध मत्स्य आ फंसा, जो पहली बार जालमें आ फंसा था। सो मैंने इस मत्स्यको छोड़ दिया, आज खाली जाल घर आनेका यही कारण है।

उसकी यह बात सुनकर मृगसेनकी पत्नी घण्टा क्रुद्ध होकर कहने लगी—तो आज मुझे भी बच्चोंके साथ ही भूखों मरना होगा। दुष्ट, पापी, तू इसी वक्त घरसे चला जा।

पत्नीकी यह कठोर वाणी सुनकर मृगसेन शीघ्र ही मकानसे चल पड़ा। रातका समय था। वह घरसे निकल कर एक सूने देवकुलमें जा सोया। वहां उसे सांपने काट खाया और वह तत्काल ही मर गया।

उधर मृगसेनकी पत्नीका जी जब भूखसे छटपटाने लगा तो वह मृगसेनको खोजती हुई देवकुलमें पहुंची और जाकर देखा तो उसे मरा हुआ पाया। जब उसने अपने पतिको इस प्रकार व्रतके पीछे ही अपनी जीवन लीला तक समाप्त करते हुए देखा तो वह भी कहने लगी कि अब मैं भी पतिदेवका ही व्रत स्वीकार करती हूँ। और इस प्रकार सोच करके उसने सांपके बिलमें हाथ डाल दिया। सो उस दुष्ट सांपने घण्टाको भी काट खाया और वह भी तत्काल ही मर गई। ठीक है, नियतिको कौन लांघ सकता है?

उज्जयिनी नामकी समृद्ध नगरीमें वृषभदत्त नामका राजा रहता था। वह बड़ा ही प्रतापी था और अनेक सामन्त इसकी सेवा किया करते थे। इसकी पत्नीका नाम वृषभदत्ता था। वृषभदत्ता बहुत ही रूपवती और युवती थी।

इस राजाका एक गुणपाल नामका सेठ था, जो बड़ा ही धनी था। इसकी पत्नीका नाम गुणश्री था। इसने अपने गुणोंसे भूतलको अनुरञ्जित कर रक्खा था। घण्टा नामकी धीवरी

मन्द कषायसे मरकर इन दोनोंके विषा नामकी मनोहर पुत्री हुई।

तथा इसी उज्जयिनी नगरीमें एक श्रीदत्त नामका बहुत धनाढ्य व्यापारी रहता था। इसकी पत्नीका नाम श्रीमती था। मृगसेन धीवर इन दोनोंके सोमदत्त नामका विनीत और रूपवान् पुत्र हुआ।

परन्तु ज्यों ही सोमदत्त माताके गर्भमें आया, इसके पिताकी मृत्यु हो गई। और ज्योंही यह उत्पन्न हुआ, इसकी माताकी मृत्यु हो गई। वह इतना अभागा निकला कि ज्यों-ज्यों वह बढ़ने लगा, पूर्व पापके कारण उसका समस्त कुल मूलसे ही क्षय होने लगा। इस प्रकार जब धीरे धीरे सम्पूर्ण कुलका क्षय हो गया और सोमदत्त भूखों मरने लगा तो वह पेट भरनेकी इच्छासे गुणपालके घर जा पहुंचा। वह गुणपाल सेठके भोजनकी थालियोंमें बचे हुए भोजनको प्रीतिपूर्वक खाने लगा और उसके घर पर रह कर ही अपना जीवन यापन करने लगा।

एक दिनकी बात है। दो संयमी मुनिराज विहार करते हुए उस स्थानपर आये। उनमेंसे छोटे मुनिराजने जब देखा कि यह सोमदत्त बालक शरीरसे अत्यन्त सुन्दर होनेपर भी माता-पिता तथा बन्धु बान्धवोंसे विहीन है और सेठकी जूठन खाता हुआ भी आदरके साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहा है तो उन्होंने बड़े मुनिराजसे कहा—जब इस प्रकारके सुन्दर और शुभलक्षण सम्पन्नकी भी यह दशा हो सकती है तो धिक्कार असार संसार को !

छोटे मुनिराजकी बात सुनकर बड़े मुनिराजने अवधिज्ञानसे सोमदत्तका सम्पूर्ण रहस्य जान लिया और वे कहने लगे—भद्र, यह बालक बहुत शीघ्र बुद्धिमान् गुणपालके समस्त धनका स्वामी होकर सेठ बनेगा।

जब गुणपालने जाते हुए मुनिराजकी यह बात सुनी तो

उसके मनमें बड़ा ही विस्मय हुआ और वह विचार करने लगा—क्या मेरा समस्त धन इस सोमदत्तका हो जायगा ? वह फिर सोचने लगा—संसारमें श्रमणोंकी बात कभी भी असत्य नहीं निकलती ।

यह सोचकर उस नर पिशाचका हृदय एकदम क्रूर हो उठा। उसने एक दुष्ट मनुष्यको बुलवाया और उससे कहा-यदि तू बालकको जंगलमें ले जाकर मार डालेगा तो मैं तुझे बहुत धन दूंगा।

वह मनुष्य गुणपालकी यह बात सुनकर उस बालकको शीघ्र ही एक सघन जंगलमें ले गया, और उसे एक नदीके तटवर्ती वटवृक्षके पास छोड़, घर आकर सेठसें कह-दिया कि मैंने उस बालकको मार डाला।

इधर बालक सोमदत्तने नदीमें स्नान किया, पानी पिया, फल खाये और वह वट वृक्षके नीचे आरामसे बैठा बठा ही सो गया ।

इतनेमें ही एक गोविन्द नामका धनी गोपाल वहां आया। उसने वटके नीचे सोतें हुए इस सुलक्षण बालकको देखा। वह इस बालकको सानन्द अपने साथ लिवा ले गया और उसे अपना पुत्र बतलाते हुए अपनी धनश्री पत्नीको सौंप दिया। धनश्रीने भी कामके समान सुन्दर कुमारको दही, दूध और घी आदिसे पुत्रकी तरह पाल पोसकर बड़ा किया और इस प्रकार सोमदत्त धीरे धीरे यौवनके द्वारमें प्रवेश करने लगा।

एक दिनकी बात है। गुणपाल सेठ गोविन्दके घर आया और उसके घर इस युवा सोमदत्तको देखकर उसका मन एक-दम विस्मयसे व्याकुल हो उठा। उसने तत्काल ही समझ लिया कि यह वही पुराना लड़का है, जिसे मैंने मार डालनक लिए मातङ्गको सौंपा था। यह सोचकर उसने गोपालसे पूछा—यह विनीत, रूपवान् , सौम्य, समुद्रकी तरह गंभीर और मूर्तिमान्

कामके समान सुन्दर पुत्र किसका है ? गोविन्द बोला—श्रेष्ठिन्, यह कुलदीपक मेरा पुत्र है ।

तदनन्तर सेठ गुणपाल प्रसन्न हृदय गोविन्दसे कहने लगा—गोविन्द, तुम एक दिनके लिये अपने इस पुत्रको हमारे यहाँ भेज दो । गोविन्दने सेठकी बात सुनकर अपने पुत्रको सोलह प्रकारके आभूषण पहनाकर और अमूल्य वस्त्रोंसे सुशोभित करके तैयार कर दिया । गुणपालने गोविन्दके सामने सोमदत्तके प्रति अपनी बड़ी हितैषिता दिखलाई और अपनी पत्नीके लिए एक पत्र देकर सोमदत्तको अपने घर भेज दिया । गुणपालने उस पत्रमें अपनी पत्नीको लिखा—प्रिये, तुम चतुराईके साथ इस पत्रवाहकको अवश्य ही विष दे देना ।

सोमदत्तने गुणपालके उस पत्रको ले लिया और वह बहुत शीघ्र वहाँसे चलकर उद्यान वनमें आया और एक वृक्षके नीचे सो गया । इतनेमें ही वहां वसन्ततिलका नामकी साक्षर वेश्या आ पहुँची । उसने इस रमणीय युवाके गलेमें बंधे हुए एक पत्रको देखा । सो वह अपने हाथसे उसके गलेमें बंधे हुए पत्रको खोलकर बाँचने लगी । वसन्तसेनाके नत्र इसके पहले ही युवा सोमदत्तकी रूपमाधुरीके प्यासे हो चुके थे ।

जब वसन्ततिलकाने इस पत्रको पढ़ा तो उसने सोचा कि यह रूपवान् युवा कभी भी नहीं मरना चाहिए । सो वसन्ततिलकाने उस लेखमें तत्काल संशोधन करके 'तावद्विषं प्रदातव्यं लेखवाहाय सत्वरम्'के स्थान पर'तावद्विषा प्रदातव्या लेखवाहाय मत्सुता' बना दिया । जिसका अभिप्राय यह था कि पत्रवाहकको तत्काल ही विषा नामक पुत्री विवाह देना।

वसन्ततिलकाने उस पत्रमें इतना संशोधन करके सोमदत्तके गलेमें जहाँका तहाँ बांध दिया और वह शीघ्र ही वहांसे चली गई ।

इसके बाद सोमदत्त वृक्षके नीचेसे सोकर उठा और अपनी

रूप सुधासे स्त्री-समूहको मोहित करता हुआ गुणपालके घर पहुँच गया। वहां पहुंचकर वह यथोचित स्थानपर जा बैठा और वड़ी ही प्रसन्नताके साथ उसने सेठ गुणपालका वह पत्र उसके पुत्र 'महाबलके सामने रख दिया।

बलशाली महाबलने उस पत्रको अपने हाथमें लें लिया और वह उसे अपनी माता तथा बन्धुजनोंके सामने पढ़ने लगा। उसने पढ़ा—हे महाबल, तुम माता, बन्धु-बान्धव तथा महान् जन-समूहके सामने बड़ी ही प्रसन्नताके साथ अपनी बहिन विषाका विवाह पत्रवाहकके साथ करदेना।

इस पत्रको पढ़कर महावलके शरीरमें रोमाञ्च हो आये। तथा उसने पत्रका आशय तुरन्त ही अपनी माँ तथा बन्धु-लोगोंको समझा दिया। तत्पश्चात् शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ योग और शुभ मुहूर्त्तमें महाबलने हाथी, घोड़े, रत्न, सुवर्णके आभूषण, वाद्ययन्त्र, वीणा और वस्त्र आदि माङ्गलिक वस्तुओं-के साथ अपनी बहन विषाको महाबलके साथ विवाह दिया।

जिस समय ये दोनों वधू-वर विवाहवेदीके सामने बैठे हुए थे कि गुणपाल अपने घरपर आ पहुँचा। उसने ज्यों ही इन दोनोंको वधू-वरके रूपमें देखा, क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयीं। सो वह धूलिसे धूसरित शरीर होनेपर भी क्रोधके मारे शय्यापर जा लेटा।

जब महाबलने पिताको शय्यापर पड़े हुए तथा क्रोधसे लाल देखा तो वह अपने पितासे बोला—पिताजी, मैंने तो आपकी सम्मतिसे ही यह विवाह सम्पन्न किया है, फिर आप क्यों मौन लेकर इस प्रकार पराये जनकी तरह पड़ गये ह? इतना कहकर महाबल गरम गरम श्वासें छोड़ने लगा तथा उसका मुख-कमल मुरझा गया। गुणपालने जब महाबलकी यह बात सुनी तो वह उससे कहने लगा—'महाबल, यह बतलाओ,

जबतक मैं घर नहीं आपाया, तुमने विषाका विवाह क्यों कर दिया ?

महाबल कहने लगा–पिताजी, मैंने आपके लेखसे ही बहिन विषाका विवाह किया है। पिताजी, इतना ही नहीं, मैंने यह विवाह समस्त सामन्तगणोंकी साक्षीमें किया है और वर-वधू दोनोंके लिए खूब धन भी दिया है।

गुणपालने जब अपने पुत्र महाबलकी यह बात सुनी तो उसे बड़ा ही दुःख हुआ और वह ठगा हुआसा होकर शय्या-पर ही पड़ा रहा।

जब सेठकी पत्नी गुणश्रीको अपने पतिदेवके चिन्तित होनेका समाचार मिला तो वह भी सेठके पास पहुंची। सेठको देखकर उसका मन बहुत ही विस्मित हुआ और वह उससे शोकका कारण पूछने लगी। गुणपाल सेठने जब गुणश्रीकी यह बात सुनी तो उसने अपनी स्त्रीसे पहलेका सब वृत्तान्त सुना दिया।

एक दिनकी बात है। गुणपालने सन्ध्याके समय अपने दामादको धूप और पुष्प आदि देकर अकेले ही नागमन्दिर भेज दिया। सो महाबलने सन्ध्याके समय पुष्प और धूप आदि लिए हुए अपने बहनोई सोमदत्तको अकेले नागमन्दिर जाते हुए देखकर उसके हाथसे बलि सामग्री ले ली तथा उसे बाजार-में बैठाकर वह स्वयं ही विनीत वेषमें नागमन्दिर चला गया।

सोमदत्तसे रुष्ट गुणपाल सेठने इस नागमन्दिरमें एक आदमी-को बैठा दिया था और उससे कह दिया था कि सन्ध्याके समय यहां जो कोई बलि लेकर आवे तू उसे तुरन्त ही मार डालना। सो ज्यों ही यह महाबल प्रसन्न मनसे उस नागमन्दिरके अन्दर प्रवेश करने लगा, उस मातङ्गने चमकती हुई तलवार-से उसका प्राणान्त कर दिया।

जब गुणपाल सेठने अपने दामादको नगरमें जीवित पाया

और अपने महाबल पुत्रको मरा हुआ देखा तो उसके दुःख-का पारावार न रहा किन्तु वह मौन होकर रह गया।

एक दिन गुणपाल सेठ बहुत ही दुखी होकर अपनी पत्नी-से बोला—प्रिये, यह दामाद हमारा शत्रु है। मैं इसे मारना चाहता हूं परन्तु मारनेका कुछ भी साधन समझमें नहीं आता। यदि किसी उपायसे इस दामादका विनाश हो सके तो मुझे वह उपाय बतलाओ।

गुणपालकी बात सुनकर गुणश्रीने तुरन्त ही सुगन्धसे दसों दिशाओंको सुगन्धित करने वाले विष मिश्रित लड्डू तैयार किए। तत्पश्चात् वह दुष्टा अपने पुत्री विषासे कहने लगी—पुत्री, तुम इन लड्डुओंको अपने पतिदेवको ही देना, अन्य किसी को न दे देना। इतना कहकर गुणश्री अपने घरसे चली गयी।

इतनेमें ही सेठ गुणपालको बड़े जोरकी भूख लगी। सो वह अपने पुत्री विषाके पास आया और कहने लगा—पुत्रि, मुझे राजाने किसी महान कार्यवश अभी हाल बुलाया है, घरमें जो कुछ भोजन हो, मुझे जल्दी ही दे दो।

ज्यों ही विषाने अपने पिताकी यह बात सुनी और उसको भूखसे व्याकुल देखा, तो उसने हितदृष्टिसे ही गुणपालको वे विष-मिश्रित लड्डू दे दिये। परन्तु विषाके द्वारा हितबुद्धिसे दिये गये इन लड्डुओंको खाकर गुणपालके समस्त शरीरमें विष व्याप्त हो गया और अन्तमें वह मर गया।

गुणश्रीने जब अपने पतिको मरा हुआ देखा तो वह बहुत ही विह्वल हुई। वह पति-वियोग सहन न कर सकी और विष मिश्रित लड्डू खाकर उसने भी आत्म हत्या कर ली।

जब ये दोनों ही मर चुके तो वृषभदत्त राजाने सोमदत्तको बुलवाया। और उसे अपनी पुत्री, आधा राज्य तथा गुणपालका

सम्पूर्ण धन दिया और राज-सेठका पद दिया। इस प्रकार राजा-से सम्मानित होकर सोमदत्त अपने नगरमें आनन्दके साथ इच्छित भोगोंको भोगने लगा।

सोमदत्तने एक बार सुकेतु आचार्यको विधिवत् आहार-दान दिया। फलतः उसके घर दुर्लभ पञ्चाश्चर्य हुए। सोमदत्त-ने इन आचार्यसे अपने पूर्वभव सुने। तत्पश्चात् उसने विरक्त होकर संक्लेशसे शून्य जैन तप अङ्गीकार कर लिया और विधिपूर्वक चार प्रकारकी आराधनाका आराधन करके सर्वा-र्थसिद्धिमें जा पहुंचा।

कोमल हृदय मृगसेन धीवरने चार बार पकड़ी जाने वाली एक मछलीके ऊपर दया की, सो उसके परिणामसे सोम-दत्तकी पर्यायमें चार बार उसका प्राणान्त होते होते बचा। सोमदत्तने इस दया भावके कारण राजत्वकी विभूति प्राप्त की और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्रत्व पद पाया।

इस प्रकार मृगसेन धीवरके एक मछलीके प्रति दयार्द्र होनेके कारण सोमदत्तकी पर्यायमें चार बार रक्षित होनेका निर्देश करने वाला यह कथानक समाप्त हुआ।

—०—०—

७३. यशोधर और चन्द्रमतीकी कथा

अवन्ती नामके देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है। इस नगरीमें कीर्त्योघ नामक राजा रहता था। कीर्त्योघकी पत्नी-का नाम चन्द्रमती था, जो बहुत सुन्दर थी। ये दोनों दम्पति बहुत दिनोंसे पुत्र जन्मके अभिलाषी थे, सो इनके एक यशोधर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। यशोधर बड़ा ही रूपवान् विनीत और अपराजित था। इसकी महादेवीका नाम अमृतमती था।

अमृतमतीका समस्त शरीर रूप राशिसे निखर रहा था। उसके नेत्र नील कमलके समान मनोहर थे और यशोधर राजाको वह बहुत ही प्रिय थी। इन दोनोंके एक यशोमति नामका कुमार हुआ। यशोमति बड़ा ही पराक्रमी विनीत सदाचारी और कुलदीप था।

एक दिनकी बात है। कीर्त्योघ महाराज दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे कि उन्हें अपने सिरमें एक सफेद बाल दिखलाई दिया। यह देखकर उन्हें संसारसे बड़ा डर लगा और उनके मनमें तीव्र वैराग्यभाव उदित हो उठा। उन्होंने अपनी राज्य-लक्ष्मी यशोधर कुमारको सौंप दी और वह अभिनन्दन मुनिराजके निकट दिगम्बरी दीक्षा लेकर मुनि हो गये।

यशोधरको समस्त सामन्त गण नमस्कार करते थे और उसका शासन सभी राजा महाराजा सिरसे स्वीकार करते थे। इस प्रकार यशोधर अपने राज्यको बड़ी ही कुशलताके साथ संचालित करने लगा और अमृतमती महादेवीके साथ इच्छानुसार भोगोंको भोगता हुआ आनन्दके साथ अपना जीवन बिताने लगा।

एक बार एक रातको राजा यशोधरने अपने पत्नी अमृत-मतीको एक कुबड़ेके साथ रमण करते हुए देख लिया सो इससे उसे बहुत ही वैराग्य हुआ। उसने सोचा कि मैं सबेरे राज्य सभामें अपनी मातासे एक इस प्रकारका मिथ्या स्वप्न गढ़ कर सुनाऊँगा, जिसके कारण मैं शीघ्र ही दीक्षा ले सकूँ। यह सोचकर उसने स्वप्नकी रूपरेखा तैयार कर ली। सबेरा होते ही वह राज-सभामें पहुँचा और अपनी माता चन्द्रमतीसे उस असत्य स्वप्नके सम्बन्धमें इस प्रकार कहने लगा—माता, आज मैंने रातके पिछले पहरमें एक स्वप्न देखा है कि मैं सतखण्ड प्रासादसे उतरता हुआ जमीनमें पत्थरोंके ढेरपर गिर गया हूँ। उसके बाद मेरी मिथ्या स्तुति करनेवाले तथा मायावी मनुष्योंने

मुझे उठा लिया और मेरी प्रशंसा भी की। इसके पश्चात् मुझे बड़ा भारी वैराग्य हुआ। मैंने यशोमति कुमारको राज्य पट्ट बांधा और स्वयं जैनेन्द्र तपको अङ्गीकार कर लिया।

यशोधर महाराजका यह स्वप्न सुनकर उसकी माता चन्द्रमती कहने लगी—पुत्र ! तुमने आज यह अच्छा स्वप्न नहीं देखा है। फिर भी तुम अपने हाथसे कुल देवताकी पूजा करो और शान्ति विधान करो। तुम्हें फिर किसी प्रकारकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। जब तुम इस प्रकारसे सम्पूर्ण शान्ति विधान कर चुकोगे तो तुम्हारी थोड़ीसी दीक्षा तो उस समय ही सम्पन्न हुई समझी जायगी।

जब यशोधर महाराजने अपनी माता चन्द्रमतीकी यह बात सुनी तो उसने अपने कल्याणकी कामनासे उसे स्वीकार कर लिया और उसने चन्द्रमतीके साथ आटेका बना हुआ मुर्गा मारकर देवताके पादमूलमें चढ़ा दिया।

इसके बाद महादेवी अमृतमतीने यशोधर महाराज और उसकी माताको लड्डुओंमें विष मिलाकर खिला दिया और वे दोनों तत्काल ही मर गये। इस पापके कारण यशोधर हिमालय पर्वतकी दक्षिणदिशामें अनेक वृक्षोंसे सघन, सिंह और व्याघ्रसे भयंकर एक उन्नत पर्वतपर मयूरीके गर्भसे मयूर रूपमें उत्पन्न हुआ। इसके उत्पन्न होते ही एक युवा मनुष्यने इसकी माताको मार डाला। तत्पश्चात् कोई आदमी उस पर्वतपर पहुँचा और उसने इस सर्वाङ्ग सुन्दर मयूर शावकको देखकर उठा लिया और लाकर इसे यशोमति कुमारको भेंट कर दिया।

यशोमति कुमारने भी जब इस मयूर शावकको देखा तो उसे बड़ा ही संतोष हुआ। उसने इसे ले लिया और वह यशोमतिके राज भवनमें क्रीड़ा करता हुआ रहने लगा।

यशोधरकी जो पूर्व जन्मकी माता चन्द्रमती थी, वह भी

मरकर करहाट (देश) में कुत्तेके रूपमें उत्पन्न हुई। कोई आदमी वहां पहुंचा और उसे यशोमतिको भेंटमें देनेकी इच्छासे ले आया। वह उस कुत्तेको लेकर उज्जयिनीमें आया और उसे यशोमति कुमारको भेंट कर दिया। यशोमति भी इस कुत्तेको देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने इसे सावधानीके साथ अपने अङ्गरक्षकको सौंप दिया। ये दोनों मोर और कुत्ता पूर्वभवके कारण यशोमतिको बहुत ही प्रिय लगते थे।

एक दिनकी बात है। मयूर प्रासादके शिखरपर बैठा हुआ था। सो उसे एक खिड़की दिखलाई दी और इसमेंसे ज्यों ही उसने रत्नदीपकोंकी प्रभासे जगमगाते हुए राजभवनके अन्दर दृष्टि डाली, त्योंही उसे जातिस्मरण हो आया। और वह ज्योंही अपने अन्तः पुरको देखने लगा उसे पूर्वोक्त कुब्जक-की गोदमें बैठी हुई अमृतमती महादेवी दिखलाई दी। जब इस प्रकार रति करते हुए इन दोनोंको उस मयूरने वहां देखा तो वह इन दोनोंके प्रति बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने अपने पैरके नखोंके आघातसे उन दोनों को खूब ही मारा और इधर रतिसे खिन्न इन दोनों प्रेमियोंने भी इसे मणिमय आभूषणोंसे मारा और यह डरकर उड़ता हुआ द्यूत क्रीड़ा करते हुए यशोमति नरेशके पास पहुँचने वाला ही था कि कुत्तेने इसे राजाके पास आते हुए देखकर तुरन्त ही पकड़ लिया और मार डाला।

यह देख कर यशोमतिने द्यूतके पांसोंसे कुत्तेके सिर-में दे मारा। कुत्ता निश्चेष्ट होकर पृथिवीपर गिर पड़ा और मर गया।

जब यशोमतिने इन दोनोंको मरा हुआ देखा तो उसने ऐसा करुण विलाप किया कि उसे सुन कर मुनिजनोंका मन भी दुखित हो सकता था। राजाने इन दोनोंकी मृत्युके कारण दीर्घ कालतक शोक मनाया और इन्हें चन्दनकी लकड़ीसे जलवा

दिया तथा इनकी हड्डियोंको गंगाके प्रवाहमें छुड़वा दिया। तत्पश्चात् यशोमतिने इस अवसरपर बहुत सा सोना, रत्न, चाँदी, गाय, वस्त्र आदि दानमें दिया जिससे इन दोनों प्राणियोंकी आत्मा स्वर्गमें सुखी बनी रहे।

सुवेल पर्वतकी दक्षिण दिशामें सिंह आदि भयंकर प्राणियोंसे भरा हुआ एक सघन वन है। सो वह मयूरका जीव इस वनके एक सरोवरमें महान् मगर हो गया। ज्योंही वह अपनी माँके पेटसे उत्पन्न हुआ, इसकी माताके स्तन सूख गये और इसे जरा भी अपनी मांका दूध पीनेको नहीं मिला। यह मकर इतना महान् पापी था कि एक बड़े भारी सरोवरमें पैदा होनेपर भी इसे साँपोंको मार-मार कर ही अपना पेट भरना पड़ता। उधर जो क्रूर चन्द्रमती कुत्तेके रूपमें मरी, वह भी इसी महान् सरोवरके बिलमें काला साँप हो गयी।

एक बारकी बात है। ज्यों ही यह काला सांप मेढ़कोंको खानेकें लिए उद्यत हुआ, मगरने इसे देखा और इसकी पूँछ पकड़ ली। यह देखकर साँप भी पीछेकी ओर मुड़ा और उसने एकदम क्रुद्ध होकर मगरके मुँहको अपने दाँतोंसे खूब ही डस लिया। इस प्रकार ये दोनों जब क्रोधके साथ आपसमें एक दूसरेको काट रहे थे कि इतनेमें एक व्याधने आकर तत्काल ही उस मगरको मार डाला। और वह काला साँप भी मगरकी दाढ़ोंसे घायल होकर मर गया।

मर कर वह मगर सिप्रा नदीके प्रवाहमें रोहित नामक मत्स्य हुआ और उधर काला साँप भी मरकर इसी नदीके प्रवाहमें भयंकर, लम्बा और कालके समान आकारधारी मगर हो गया।

एक बार रोहित नदीके निर्मल जलमें तैरता हुआ विहार कर रहा था कि उसे मगरने वेगसे पकड़ लिया। इतनेमें हीं राजाका अन्त:पुर भी नदीके जलमें क्रीड़ा करनेके लिए प्रविष्ट हुआ।

उस समय एक स्त्री क्रीड़ा करती हुई इस मछलीके ऊपर जा गिरी। सो उस मगरने मछलीको तो छोड़ दिया और क्रोधमें आकर इस स्त्रीका पैर पकड़ लिया। ज्योंही मगरने उसका पैर पकड़ा, वह बड़े जोरसे चिल्लाई—देखो, मुझे किसीने पकड़ लिया, पकड़ लिया।

तदनन्तर सभी डरतें-डरते राजाके पास पहुंचे और उन्होंन राजासे यह समाचार सुनाया कि महाराज, सिप्रा नदीमें आपकी प्रिय स्त्रीको एक भयंकर मगरने पकड़ लिया है।

ज्यों ही राजाने यह समाचार सुना, उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने तत्काल समस्त धीवरोंको बुलवाया और अपनी ध्वनिसे आकाशको गुञ्जाते हुए वह उन धीवरोंसे कहने लगा—

अरे धीवरों! सिप्रा नदीमें जितनी मछलियां हों उन सबको शीघ्र ही पकड़ कर यहाँ लाओ।

धीवरोंने राजाकी यह आज्ञा सुनते ही अपने अपने जाल हाथमें ले लिए और मनमें बड़े ही पुलकित होकर तुरन्त सिप्रा नदीकी ओर चल दिए।

उधर मगरसे छूट कर वह मत्स्य डरके मारे उसी क्षण नदीके उस प्रवाहसे भागकर बहुत आगे निकल आया। ठीक ही है—जान बची लाखो पाये।

इसके बाद उन धीवरोंने बड़े ही रोषसे अपने ओष्ठ चबाते हुए सिप्रा नदीके प्रवाहमें एक साथ ही अपने घने बुने हुए जालोंको डाला। जालोंके डालते ही धीवरोंने उस मगर-को पकड़ लिया। वे इसे पकड़ कर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने इसे ले जाकर यशोमति महाराजके सामने उपस्थित कर दिया।

ज्यों ही यशोमतिने मगरको अपने सामने उपस्थित पाया

उसने धीवरोंको आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही इस दुष्टको वध-स्थानपर लेजाओ और खूब मजबूतीसे बांध दो, जिससे यह बड़े ही दुखके साथ तिल तिल करके मरे।

धीवरोंने मगरको वहांसे लेजाकर कस कर बांध दिया। जिसके कारण उसकी बड़े ही दुःखके साथ मृत्यु हुई।

एक दूसरे दिनकी घटना है। धीवर पुनः सिप्रा नदी पहुंचे। उन्होंने उसके प्रवाहमें जाल डाले और इस बार उन्होंने रोहित मत्स्यको पकड़ लिया। वे इसे जीवित ही ले आये और यशोमति महाराजको भेंट कर दिया।

यशोमति राजाने जब इस मत्स्यको अपने सामने उपस्थित देखा तो उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने इसे तुरन्त ही अपनी अमृतमती माताके पास भेज दिया और कहला भेजा कि इस रोहित मत्स्यके सरस मांससे पितरोंकी तृप्तिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाये।

इस प्रकार वह मत्स्य अमृतमतीके सामने लाया गया। ज्यों ही इस मत्स्यने अमृतमतीको देखा और उसका वार्तालाप सुना उसे जातिस्मरण हो आया। परन्तु इतनेमें ही महादेवी-के आज्ञानुसार उसकी पूंछ काटकर भोजनके लिए रसोईं शालामें भेज दी गयी। इसके पश्चात् यशोमति कहने लगा—माता, अब जो कुछ शेष भाग बचा है, उससे हम दोनोंका मजेमें काम चल जायगा। यह सुनकर अमृतमतीने शेष भाग-को तपती हुई कढाईमें डाल दिया और वह मत्स्य तत्क्षण ही मर गया।

मगर मरकर अजशालामें बकरी हुआ और यह मीन मर कर उसके गर्भमें आगया और बकरेके रूपमें उत्पन्न हुआ।

जब यह बकरा धीरे धीरे बढ़ कर युवा हुआ तो अपनी माताके साथ ही प्रसङ्ग करने लगा और ज्यों ही इसके वीर्यके निकलनेका समय आया, इसे एक अन्य बकरेने मार डाला।

इस प्रकार इस बकरेने अपनी माताको ही गर्भाधान कराया और दूसरे बकरेके सीगोंसे विदीर्ण होकर मर गया।

एक दिन यशोमति महाराज शिकार खेलनेके लिए राजभवनसे निकला कि इसे अपने नगरमें यह गर्भिणी बकरी दिखलाई दी। इसे देखते ही यशोमतिने इसमें एक बाण मार दिया। बेचारी बकरी बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी और मर गई। फिर राजाने अपने साथी शिकारियोंको आज्ञा दी कि इस बकरीका पेट फाड़ दो। उन लोगोंने ज्यों ही राजाकी आज्ञाका पालन किया, बकरीके पेटसे एक सुन्दर बकरा पृथ्वीपर आ गिरा।

इस बकरेको देखते ही राजाके शरीरमें कुछ सनसनाहट हुई और उसने इसे बकरोंकी देखभाल करने वाले गड़रिएको सौंप दिया। कालक्रमसे यह बकरा बड़ा हुआ, युवा हुआ और बकरियोंके साथ भोग विलास करता हुआ अपना समय बिताने लगा।

एक दूसरे दिनकी बात है। राजा शिकार खेलनेके लिए जाने लगा तो उसने निश्चय किया कि यदि मुझे शिकारमें पूरी सफलता मिलेगी तो मैं कुलदेवीके लिए बीस भैंसोंकी बलि चढ़ाऊँगा।

काकतालीय योगसे उसकी इच्छा पूर्ण हो गयी। इसलिए राजाने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ देखकर सहर्ष भगवती कात्यायनीको बीस भैंसे बलि कर दिये और उनका सेमरके फूलोंकी तरह लाल लाल मांस भोजनागारमें पहुँच गया।

इतनेमें ही यशोमति राजा भी वहां जा पहुँचा। रसोइयाने उसको बतलाया कि इसमेंका कुछ मांस कौवोंने उच्छिष्ट कर दिया है। सो राजन्! यदि वह बकरा इसे सूंघले तो यह सब पवित्र होजाय।

पाचककी बात सुनकर राजाके मनमें बड़ा ही विस्मय हुआ। वह सहर्ष इसके मतसे सहमत हो गया और पाचकसे कहने लगा—भद्र, तुमने बहुत ही सुन्दर कहा है और हमारे हितकी ही बात बतलाई है। जब तुम्हारी बातको देवता और ब्राह्मण तक मानते हैं तो मैं क्यों न मानूंगा। इस प्रकार कह कर उसने पाचककी सम्मतिके अनुसार शीघ्र ही बकरेको बुलवा लिया।

इस प्रकार ज्यों ही वह बकरा मांससे आपूर्ण भोजनागारमें पहुंचा, उसे जातिस्मरण हो गया। इतनेमें ही अमृतमती महादेवी पाचकसे कहने लगी— पाचक, मुझे भैंसेका मांस तो जरा भी अच्छा नहीं लगता। तुम इस समय किसी अन्य जीवका मांस बनाओ, जिससे मेरा चित्त प्रसन्न रह सके।

अत्यन्त मातृ-स्नेह-परायण यशोमतिने माताकी यह बात सुनकर रसोइयेसे कहा—वत्स, तुम मांके लिए इस बकरेका मांस तैयार कर दो, जिससे इनके चित्तको संतोष हो सके।

राजाकी बात सुनते ही रसोइयाने तुरन्त उस बकरेका पिछला पैर काट डाला और उसके मांस को अनेक प्रकारसे तैयार करके महादेवी अमृतमतीको परोस दिया। तत्पश्चात् राजाने रसोइयेसे कहा—तुम इसमेंसे कुछ मांस पिता और पितामहीके नामसे अपनी इच्छानुसार साधु-सन्यासियों को दे देना और कुछ ब्राह्मणोंको। इस समय वह बकरा सोचने लगा—देखो, मुझे कितने जोरकी भूख और प्यास लग रही है, मेरा पिछला पैर काट लिया गया है, सम्पूर्ण शरीर भयसे कंप रहा है और मैं वेदनाके मारे कितनी बुरी तरहसे पीड़ित हो रहा हूँ, फिर भी मुझे कुछ भी खानेको नहीं दिया जा रहा है और दूसरोंकी, जो यहां नहीं हैं कितनी चिन्ता की जा रही है।

इधर जिस चन्द्रमतीके जीव बकरीको यशोमतिने मारा

था वह कलिङ्ग देशमें भयंकर शरीरधारी भैंसा हो गया। सो वह भी एकदिन इस देशसे चलकर बड़े-बड़े भैंसोंके साथ अपनी पीठपर वर्तन लादे हुए उज्जयिनीमें आ पहुंचा। उज्जयिनी तक आते ही मार्गके श्रमकी गर्मीसे उसका सम्पूर्ण शरीर जलने लगा। इसलिए वर्तनोंका बोझ उतरते ही वह अपनी थकावट दूर करनेके लिए सिप्रा नदी गया और उसके जलमें जा बैठा। इस प्रकार यह भैंसा पानीमें वैठा हुआ अपनी थकावट दूर कर रहा था कि राजाका एक प्रिय घोड़ा वहां आया और उसे इसने सींगोंसे इतना मारा कि वह तत्काल मर गया।

जब राजा यशोमतिको अपने नौकरसे यह समाचार मालूम हुआ, तो वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ और उस भैंसेको अपने घरपर ले आया। उसने इसे बांध दिया, उसके चारों पैरोंमें कीलें ठोक दिये और उसके चारों ओर आग लगा दी। इसके साथ ही तपे हुए पानीसे भरकर एक कड़ाही उसके सामने रखादी। इस कड़ाहीमें हींग, सैंधानमक और त्रिफला आदिक चीजें भी डाल दीं। इधर आगके कारण पानी और भी अधिक तपगया। उधर उसकी समस्त आतें जलगयीं और वह पिछले मलद्वारसे खब ही पतला पतला गोबर पोंकने लगा। इसी समय राजाने वह बकरा भी, जिसकी एक टांग टूटी हुई थी, भसेके पास ही बांध दिया। आग इतने प्रबलरूपमें धधकी कि समस्त दिशाएँ भासमान हो उठीं। ये दोनों प्राणी तुरन्त-ही आगमे पकने लगे और बड़ ही दुःखसे इन दोनोंके प्राण निकले।

परंच, उज्जयिनीके निकट मेहतरोंका एक बाड़ा था। वहाँ एक मुर्गी रहती थी। सो माता और पुत्रक जीव उस मुर्गीके गर्भसे मुर्गोंके युगलके रूपमें उत्पन्न हुए।

जब चण्डकर्माने मुर्गोंके इस जोड़ेको देखा तो उसे पकड़

लिया और यशोमति महाराजको भेंट कर दिया। जब यशोमति राजाने इस कुक्कुट-युगलको देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। ठीक है, ऐसा कौन बालक है जो अपने माता पिताको देखकर पुलकित नहीं होता। उसने इसे फिरसे चण्डकर्माके यहां भिजवा दिया।

एक दिनकी बात है। यशोमति अपने अन्तःपुरके साथ उद्यान वनमें क्रीड़ा करनेके लिये आया। चण्डकर्मा भी इसी समय इस कुक्कुट-युगलको लोहेके पिंजड़ेमें बन्द करके उद्यान वनमें आया। यहां आते ही चण्डकर्माने रेशमी वस्त्रके समान अनेक वर्णोंसे उज्ज्वल एक मनोहर भवन देखा। सो चण्ड-कर्माने इस प्रासादके पूर्वद्वारमें स्थित, मणियोंसे उज्ज्वल, शरत्कालीन आकाशके समान स्वच्छ और विचित्र पट-मण्डपमें परस्परमें प्रेमासक्त इस कुक्कुट-युगलको छोड़ दिया और वह कुक्कुट युगल भी आनन्दके साथ मन्द-मन्द बाँग देने लगा।

इतनेमें चण्डकर्माने अशोक वृक्षके नीचे खड्गासनसे विरा-जमान एक मुनिराजको देखा। मुनिराजकी दोनों भुजाएँ लटकी हुई थीं और नाकपर दृष्टि लगाये हुए थे। वे दयालु थे, तपके आगार थे, समस्त इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुके थे और मूर्तिमान् धर्मके समान मालूम देते थे।

चण्डकर्माने ज्यों ही इन मुनिराजको देखा, उसने उनकी बेमनसे बन्दना की और निष्ठुर हृदयके साथ उनके सम्बन्धमें वह इस प्रकार विचार करने लगा—मनुष्योंके मनमें भीति पैदा करने वाले प्रचण्ड साँपके समान इस मुनिने राजाके निवास स्थानको क्यों अपवित्र किया है?

वह दुष्ट इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि इतनेमें इन मूर्तिमान् मुनिराजका योग समाप्त हो गया।

जब चण्डकर्माने देखा कि मुनिराज अपना योग समाप्त कर चुके हैं तो वह बड़े ही निष्ठुर मनसे कामदेवको जीतने

वाले मुनिराजसे बोला—हे मुनिराज, आप लोकप्रसिद्ध हैं और जनता आपको मानती-पूजती भी है। फिर भी आप अभी क्या ध्यान कर रहे थे ?

मुनिराजने चण्डकर्माका यह प्रश्न सुना तो वे बहुत ही विशुद्ध हृदयके साथ उससे कहने लगे—भद्र, तुमने जो बात पूछी है, मैं उसे बतलाता हूँ। तुम सावधान होकर एकचित्तसे सुनो। भद्र, मैंने अपने ध्यानमें यह विचारा है कि इस असार संसारमें परिभ्रमण करते हुए मैंने अनन्त शरीर ग्रहण किए और छोड़े। सो अनेक योनियोंमें मैंने जो दुख सहे वे किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं ?

जब चण्डकर्माने मुनिराजकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—योगिराज, क्या शरीरसे अलग जीव कोई अन्य वस्तु है और उससे शरीर जुदा है ?

मुनिराज अवधिज्ञानी थे, ग्यारह अङ्गके धारी थे, और प्रत्येक प्रकारके सन्देहको दूर करने वाले थे। सो उन्होंने जब चण्डकर्माका यह प्रश्न सुना, तो वें उससे स्पष्ट शब्दोंमें कहने लगे—भोले मानव, तुम्हें इस सम्बन्धमें जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिए। तुम विश्वास रक्खो, शरीर एक अलग वस्तु है और जीव एक अलग वस्तु है।

परन्तु चण्डकर्मा न माना। वह मुनिराजसे कहने लगा—योगिराज, न तो जीव अलग है और न शरीर। किन्तु अनेक योनिरूपी वृक्षोंसे मण्डित संसाररूपी वनमें घूमने वाले प्राणियोंकी जो सजीव वस्तु है, वह शरीर ही है। वह इस सम्बन्धके एक उदाहरणको उपस्थित करते हुए कहने लगा—मुनिराज, मैंने एक चोरको एक कोठरीमें बन्द कर दिया और उस कोठरीको सब ओरसे लाखसे मढ़ दिया। फिर मैंने उसमें एक छेद करदिया। अब वह कोठरीमें पड़ा हुआ चोर मरगया। पर, मुनिराज, मैंने कभी भी इस छिद्रमेंसे उसके जीवको

निकलते हुए नहीं देखा। इस लिए योगिराज, इस घटनासे म तो यही सत्य समझता हूँ कि वही जीव है और वही शरीर है, दोनों भिन्न भिन्न नहीं हैं।

योगिराजने जब चण्डकर्माकी यह बात सुनी तो वे इससे कहने लगे—भद्र, तुम उसी कोठरीमें एक आदमीको शङ्ख देकर बिठलादो और उससे कहो कि वह खूब ही प्रसन्नताके साथ शङ्खको फूँके। जब वह शङ्ख बजाने लगे तो तुम उसकी ध्वनि जरूर सुनोगे, परन्तु उसे उस छिद्रसे निकलती हुई तुम नहीं देख सकोगे। अन्य कोई मनुष्य भी नहीं देख सकेगा। भद्र, सो जिस प्रकार शङ्खका शब्द निकलता हुआ भी लोगोंको दिखलाई नहीं देता है, उसी प्रकार शरीरसे जीवके निकलनेपर भी वह दिखलाई नहीं देता है।

चण्डकर्माने मुनिराजका यह दृष्टान्त सुना और वह उनसे कहने लगा—योगिराज, मैं जो उदाहरण आपको सुना रहा हूँ उससे आपकी बातकी सत्यताका स्पष्टीकरण हुआ जाता है। मुनिराज, मैंने एक सजीव चोरको तराजूपर तोला फिर उसे जीवरहित करदिया। परन्तु दोनों ही स्थितियोंमें उसकी तोल एकसा ही रही। इस लिए मुनिराज, मेरे इस कथनमें आप विश्वास कीजिए कि जैसा मैं हूँ, वैसा ही मुर्देका जीव है और वही शरीर है।

मुनिराजने चण्डकर्माके इस दृष्टान्तको बड़े ही ध्यानसे सुना और वे उससे कहने लगे—भद्र! तुम मेरे मनोहारी उदाहरणको सुनो। एक गोपालकने धोंकनीको हवासे भरा और इसके पश्चात् उसे पासंग रहित तराजूसे तोला। फिर उसने इसकी वायु निकाल दी और उसी तराजूसे तोला तो वह जितनी वायुसे भरी हुई अवस्थामें थी उतनी ही वायुशून्य अवस्थामें भी बनी रही। सो हैं भद्र, जिस प्रकार धोंकनीको हवासे भर देनेपर भी वह उतनी ही रहती है, उसी प्रकार

अजीव और सजीव आदमी भी उतना ही रहता है—जीवके रहनेसे वजनम वृद्धि नहीं होती और उसके निकल जानेसे उसमें कमी नहीं होती।

मुनिराज कहने लगे—भद्र, इस दृष्टान्तसे तुम मेरी बात-पर विश्वास करो कि जीव भिन्न वस्तु है और शरीर विभिन्न वस्तु है—दोनों एक नहीं हैं।

योगिराजकी यह बात सुन कर चण्डकर्मा फिर कहने लगा—महाराज, मेरी एक बात और सुन लीजिए। मैंने एक चोर-के शरीरको काट डाला और उसके शरीरके जहाँ तक बन सके छोटे छोटे अनेक टुकड़े कर दिये, परन्तु फिर भी उस शरीरके बाहर और भीतर कहीं भी जीव नामकी वस्तु दिखलाई नहीं दी। सो मुनिराज, जिस प्रकार एक शरीर-के खण्ड-खण्ड करने पर भी जीव दृष्टिगोचर नहीं हुआ, उससे यही निश्चित होता है कि उसीका नाम जीव है और उसीका नाम शरीर है।

योगिराजने चण्डकर्माका यह उदाहरण सुना और वे कहने लगे—भद्र ! अब तुम हमारा भी एक बहुत स्पष्ट उदा-हरण सुन लो। एक आदमी एक अरणी-बांसको काटता है परन्तु उसके भीतर रहनेवाली आग उसे नहीं दिखलाई देती। तत्पश्चात् वह आदमी उस बांसके छोटे-छोटे टुकड़े भी कर डालता है, फिर भी खूब अच्छी तरह उसे देखनेपर भी उसमें अग्नि दिखलाई नहीं देती है। मुनिराज कहने लगे—सो हे भद्र, जिसप्रकार अरणी-बांसके दण्डमें अग्निके विद्यमान रहने भी और मनुष्यके आँख फाड़ फाड़कर देखनेसे भी दिखलाई नहीं देती ह। उसी प्रकार शरीरमें विद्यमान भी यह जीव उसके खण्ड खण्ड कर देनेपर भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष न होनेसे मनुष्यको दिखलाई नहीं देता है। हे आर्य, इस दृष्टान्तसे तुम मेरी इस बातको सत्य समझो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है।

मुनिराजकी बात सुनकर चण्डकर्मा कहने लगा—देव, अव तो मैं निरुत्तर हो गया। आप बतलाइए कि अब मैं क्या करूँ ? भगवन् ! अब आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए।

चण्डकर्माकी बात सुनकर मुनिराज उसके प्रति दयार्द्र होगये और कहने लगे—महाभाग; अब तुम धर्म करो। क्योंकि धर्म ही समस्त प्राणियोंका बन्धु है।

तब चण्डकर्माने मुनिराजकी सेवामें निवेदन किया कि भगवन्, आप मुझे स्पष्ट रूपसे धर्म और अधर्मके फलको समझाइए। मुनिराज कहने लगे—

सौभाग्य, धन-सम्पत्ति, दीर्घायु, निर्मल यश, वशीकरण और आरोग्य यह सब मनुष्योंको धर्मसे प्राप्त होता है। और दरिद्रता, कुरूपता, दुर्भाग्य, बन्धुहीनता, अकालमृत्यु और मूकता यह सब मनुष्योंको अधर्मसे प्राप्त होता है।

चण्डकर्माने जब मुनिराजके निकट इसप्रकार संक्षेपमें धर्म और अधर्मका फल सुना तो मुनिभक्तिके कारण उसके शरीरमें रोमाञ्च हो जाये और वह उनसे पुनः कहने लगा—भगवन्, आप संसार समुद्रसे पार करने वाले हैं, सो मुझ गृहस्थके द्वारा जो धर्म किया जा सके, आप मुझे संक्षेपमें उसका उपदेश कीजिये।

चण्डकर्माकी विनय सुनकर ज्ञानी योगिराजके मनमें करुणा उमड़ आयी। वे उससे कहने लगे—वत्स, यदि तुम्हारी धर्म पालन करनेकी इच्छा है तो सम्यक्त्व पूर्वक पाँच अणुव्रतोंका पालन करो।

चण्डकर्मा मुनिराजकी बात सुनकर फिर निवेदन करने लगा—तो महाराज, आप मुझे स्वर्ग और मोक्षके हेतुभूत तथा सुख-सम्पत्ति प्राप्त करानेवाले अणुव्रतोंका स्वरूप संक्षेपमें समझाइये।

मुनिराजने पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत,

मधुत्याग, पाँच उदुम्बरत्याग, रात्रिभोजनत्याग, पञ्चनमस्कार मन्त्र, सम्यक्त्व और गुरुपूजा आदि सम्पूर्ण गृहस्थ धर्मका संक्षेपमें उपदेश दिया।

योगिराजका उपदेश सुनकर चण्डकर्मा कहने लगा—स्वामिन्, मैंने सम्यक्त्व पूर्वक अन्य सब व्रत तो ले लिए; परन्तु अहिंसा व्रत नहीं ले सकता; क्योंकि जीव घात करना हमारा कुल धर्म है। यह सुन कर मुनि राज बोले—चण्डकर्मा, तुम सच कहते हो कि जीवघात करना तुम्हारा कुल-धर्म है। परन्तु तुम्हें मालूम नहीं है कि अनन्त पापार्जनका कारण यह तुम्हारा जीवघात-जन्य कुलधर्म ही है। सो जब तक तुम इस कुलधर्म को नहीं छोड़ोगे, तब तक तुम भी अनन्त दुःख देनेवाली उस मृत्यु परम्पराको उसी प्रकार प्राप्त करते रहोगे जिस प्रकार इस कुक्कुट युगलने अपना जीवघात स्वरूप कुलधर्म नहीं छोड़ा और अनन्त दुःख देनेवाली मृत्यु-परम्पराको प्राप्त किया।

मुनिराजकी यह बात सुन कर चण्डकर्माका मन आश्चर्य-से भरगया और वह कुतूहलके साथ उनसे पूछने लगा—योगिराज, बतलाइए तो इन मुर्गोंने पूर्व भवमें कुलधर्मको न छोड़नेके कारण किस प्रकारकी मृत्यु-परम्परा प्राप्त की?

चण्डकर्माका यह प्रश्न सुनकर मुनिराज कहने लगे—चण्डकर्मा, तुम एकचित्तसे सुनो, मैं इनके भवान्तर बतलाता हूँ। भद्र, यह मुर्गा यशोमति कुमार राजाका पूर्वजन्मका पिता यशोधर नरेश है। और यह मुर्गी यशोधर राजाकी पूर्वजन्मकी माता चन्द्रमती है। इन्होंने अपना कुलधर्म नहीं छोड़ा और बड़ी भक्तिके साथ चण्डिकादेवीकी पूजाके लिए आटेका मुर्गा बनाकर उसका बध किया। उस पापका यह परिणाम है कि वे इस कुक्कुट युगलके रूपमें उत्पन्न हुए, और इसी कारण ये शान्त चित्तसे इस समय धर्मश्रवण

कर रहे हैं। वे दोनों यशोधर और चन्द्रमती मरकर एक भवमें मोर और कुत्ता हुए । दूसरे भवमें साँप और मगर हुए । तीसरे भवमें मत्स्य और मगर हुए । चौथे भवमें बकरी और बकरा हुए । पाँचवें भवमें भौंरा और भंवरी हुए । और छठवें भवमें यह कुक्कुट पक्षी हुए ।"

योगिराजकी यह बात सुनकर चण्डकर्माके मनमें अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसका सम्पूर्ण शरीर भयसे काँपने लगा । वह मुनिराजसे बोला—भगवन्, मैंने इस समय मन, बचन और कायसे अपना जीवघातमय कुल-धर्म छोड़ दिया और अब मैं सर्वोत्तम जैनधर्म स्वीकार करता हूँ । इसके सिवाय मैंने अणुव्रत और सम्यक्त्व आदिक व्रत भी भक्ति पूर्वक स्वीकार कर लिये हैं । अब मैं सच्चा श्रावक हूँ और मेरे देवता एकमात्र जिनेन्द्र भगवान् हैं ।

कुक्कुट युगलने भी मुनिराजके मुख. कमलसे निकले हुए सर्वोत्तम धर्मको सुनकर और अनेक दुःखोंसे परिपूर्ण अपने भवान्तर सुनकर भक्ति पूर्वक जैनधर्मको स्वीकार किया । तत्पश्चात् इन्हें इतना संतोष हुआ कि उसे व्यक्त करनेके लिए इन्होंने बड़ी ही मधुर बांग दी ।

ठीक इसी समय यशोमतिकुमार राजा अपनी प्रियतमा कुसुमावलीके साथ पट-मण्डपमें बैठा हुआ था । सो उसने ज्योंही कुक्कुटोंकी यह बांग सुनी, वह कुसुमावलीसे कहने लगा—प्रिये, तुम मेरे धनुर्वेदके कौशलको देखो, मैं एक वाणके आघातसे ही इस कुक्कुट युगलको मार गिराता हूँ ।

इतना कहकर उसने तूणीरसे एक वाण निकाला और उसे धनुषकी डोरीपर चढ़ा दिया । यशोमतिने वाणको कान तक खींचा और इसके पश्चात् कुक्कुट युगलके ऊपर छोड़ दिया । यशोमतिके इस एक ही वाणने कुक्कुट युगलकी जीवन-लीला समाप्त करदी ।

जिनधर्म परायण इस कुक्कुट-युगलने समताके साथ अपने प्राण छोड़े और इसके कारण वह कुसुमावलीके गर्भ-में आ गया। कुसुमावलीके गर्भसे ये दोनों कुमार और कुमारी-के रूपमें जन्मे और दोनों ही कला, गुण और सौन्दर्यमें खब ही वृद्धिगत हुए।

एक दिनकी बात है। सुदत्त नामके मुनिराज एक बड़े भारी मुनिसंघके साथ विहार करते हुए उज्जयिनी नगरीमें आये। इसी बीच राजा यशोमति शिकार खेलनेकी इच्छासे अपने परिवारके साथ उज्जयिनी पुरीसे निकला। ज्योंही यशोमतिने सुदत्त नामके आचार्यको एक वृक्षके नीचे विराज-मान देखा, उसने अपने कुत्तोंका झुण्ड मुनिराजके ऊपर एक साथ छोड़ दिया। इस झुण्डमें पाँच सौ कुत्ते थे।

ज्योंही ये कुत्ते दौड़कर मुनिराजके पास आये, आते ही उन्होंने उनकी तीन प्रदक्षिणा की और बड़े ही आनन्दके साथ उनके सामने बैठ गये। यशोमतिने जब इन कुत्तोंको मुनि-राजके निकट शान्तभावसे बैठे हुए पाया तो उसकी आँखें क्रोधसे लाल होगयीं और अब वह स्वयं ही तलवार लेकर मुनिराजको मारनेके लिए दौड़ा। परन्तु सम्यग्दृष्टि कल्याण-मित्र नामके साहुकारने इसे समझाया और वह यशोमतिको मुनिराजके पास ले आया।

आचार्य महाराजको देखते ही यशोमतिका मन प्रसन्न हो उठा। वह सोचने लगा—मुझ पापात्माने क्योंकर मुनि-राजका बध करना सोचा? इस पापका अब केवल एक ही प्रायश्चित्त है कि मैं अब अपनी आत्म-विशुद्धिके लिये अपना सिर काटकर मुनिराजके चरणोंमें चढ़ादूं।

इस समय यशोमतिकी आत्मा पवित्र हो चुकी थी। सो वह इस प्रकार विचार कर ज्योंही अपना सिर काटनेके

लिए उद्यत हुआ, मुनिराजने इसे तुरन्त रोका। वे कहने लगे—राजन्, आपको यह अशोभनीय कार्य नहीं करना चाहिए।

जब यशोमतिको मालूम हुआ कि मुनिराजने उसका मानसिक अभिप्राय समझ लिया है तो वह बड़ा ही लज्जित हुआ और मुनिराजको नमस्कार करने लगा। यशोमतिको इस समय बड़ा ही वैराग्य हुआ और वह मुनिराजसे प्रार्थना करने लगा—मुनिनाथ, आप मुझ अभागेके दुश्चरितको क्षमा कर दीजिए।

यशोमति महाराजकी बात सुनकर मुनिराज कहने लगे—वत्स, तुम बड़े ही भोले हो। उठो, उठो। हम जैसे मुमुक्षुओंको तो संसारकी समस्त जनताकी बात सहनी चाहिए ही, परन्तु आप-जैसे राजाओंको तो विशेष रीतिसे सहनशील होना चाहिए।

जब राजाने मुनिराजकी यह बात सुनी तो वह पुनः मुनिनाथसे निवेदन करने लगा—भगवन्, आप मुझे स्पष्ट बतलाइए कि मैंने अभी अभी क्या विचार किया था?

मुनिराज अवधिज्ञानी थे। वे कहने लगे—राजन्, एक चित्तसे सुनो। मैं तुम्हारी मन चिन्तित बात बतलाता हूँ। तुमने यही तो सोचा था कि संसारमें मुनिवध करनेका यही एक प्रायश्चित्त है कि अपना सिर काटकर मुनिराजके चरणोंमें अर्पण करूँ। परन्तु राजन्, तुमने यह बहुत ही बुरा विचारा, क्योंकि विद्वज्जन आत्म-हत्याको बड़ा पाप बतलाते हैं।

यशोमतिको इस समय शोक और संतोष, दोनों ही हो रहे थे। इतनेमें विशुद्धात्मा कल्याणमित्र यशोमतिसे कहने लगा—नरेन्द्र, मुनिराजने तुम्हारी एक चिन्ता जान ली सो तुम इतने मात्रसे ही बड़े विस्मित हो रहे हो। मित्र! यह महान् योगी हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमान सब कुछ जानते हैं।

इसलिए यदि तुम्हें कुछ संशय हो तो इन तपस्वी महाराजसे पूछ सकते हो।

जब यशोमतिने कल्याणमित्रकी यह बात सुनी तो उसने योगिराजको पुनः नमस्कार किया और वह उनसे पूछने लगा—भगवन्! आप मुझे यह वतलाइए कि मेरे पितामह कीर्त्योंघ, पितामही चन्द्रमती, और पिता यशोधर इस समय किस गतिमें वर्तमान हैं और किस प्रकारके सुख-दुखका अनुभव कर रहे हैं? इतना कहकर राजाका मन मुनिराजके प्रश्नोत्तर सुननेके लिए उत्सुक हो उठा।

तत्पश्चात् अवधिज्ञानरूपी नेत्रधारी मुनिराज यशोमतिसे इस प्रकार कहने लगे—"राजन् आपके पितामह कीर्त्योंघने अपने मस्तकमें एक सफेद बाल देखकर दिगम्बरी दीक्षा ले ली थी। उन्होंने पाँच रात तक तप करके समाधि पूर्वक मृत्यु की और इस समय वह ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें दिव्य सुखका अनुभव कर रहे हैं। तथा तुम्हारी माता अमृतमती महादेवीने विष देकर अपने पतिको मार डाला था। सो इस कृत्यके कारण वह छटवें नरकमें पहुँची और वहाँकी भयंकर तथा असह्य वेदनाका अनुभव करती हुई और अपने जीवनकी निन्दा करती हुई वह बड़े ही संक्लेशके साथ अपने दिन काट रही है। और राजन्, जो यशोधर नरेश तुम्हारे पिता थे और चन्द्रमती तुम्हारी पितामही थी, सो इन्होंने अपने उस जन्ममें चूनका मुर्गा बनाकर चण्डिका देवीके सामने वलिके लिए उसे मारकर देवीको अर्पण किया था। इस लिए राजन्, इस महान् पापानुबन्धके कारण इन्होंने अनेक तिर्यञ्च योनियोंमें परस्परमें एक दूसरेको मारा और इस पर्यायमें वे इस कुक्कुट-युगलके रूपमें उत्पन्न हुए थे। तथा पाँच अणुव्रत लेकर पञ्च-नमस्कार मन्त्रका ध्यान ही कर रहे थे कि इतनेमें आपने उन्हें मार डाला और मरकर वे तुरन्त ही कुसुमावलीके गर्भमें आ

गये । राजन् ! इस समय ये दोनों आपके पुत्र और पुत्रीके रूपमें हैं। पुत्रका नाम अभयरुचि है और पुत्रीका नाम अभयमती है।

यशोमति इस भव-परम्पराको सुनकर बहुत ही विस्मित हुआ और उसके मनमें तीव्र वैराग्यभाव जागृत हुआ। उसने मुनिराज-के निकट सम्पूर्ण यथार्थ वृत्तान्तको सुनकर अपने अन्तःपुर-परिवारके साथ दीक्षा ले ली।

इधर अभयरुचि और अभयमतीने जब अपने भवान्तर सुने तो इन्हें भी जातिस्मरण हो आया। तथा इनके मनमें भी वैराग्य-भावना आन्दोलित होने लगी। ये दोनों भी दीक्षा लेनेके विचारसे मुनिराज सुदत्तके निकट पहुँचे और बड़े ही शान्त भाव तथा भक्तिके साथ मुनिराजकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं और उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद वे सुदत्त आचार्यकी सेवामें विनय करने लगे—भगवन्! हमें दिगम्बरी दीक्षा दीजिए।

जब आचार्य सुदत्तने इन दोनोंकी बात सुनी और दोनों-के कुसुम-सुकुमार बाल्य जीवनको देखा तो इनका धैर्य देखकर मुनिराज भी मनमें बड़े विस्मित हुए और इन लोगोंसे कहने लगे—कुमारो, तुम लोगोंके शरीर अभी एकदम सुकुमार हैं, तुमने अब तक किसी प्रकारके बाधा विघ्नोंका सामना नहीं किया है और तुम्हारे चित्त भी बहुत ही भोले हैं। सो अभी तुम लोगोंमें सम्पूर्ण जैन व्रत पालन करनेकी क्षमता नहीं है। इसलिये तुम लोगोंको क्षुल्लक धर्मका पालन करना ही उचित है। इसके पश्चात् तुम्हें दिगम्बरी दीक्षा दे देंगे।"

जिनभक्ति परायण अभयरुचि और अभयमतीने जब मुनिराजकी यह दिव्यवाणी सुनी तो अभयरुचिने बड़ी ही भक्तिके साथ मुनिराजके निकट क्षुल्लक धर्मको स्वीकार कर लिया और अभयमतीने ग्यारह अङ्गकी पाठिका क्षान्तिका

आर्यिकाके निकट बड़ी ही श्रद्धा और भक्तिके साथ क्षुल्लिकाके व्रतको स्वीकार कर लिया।

यौधेय देशमें राजपुर नामका एक सुन्दर नगर है। इस नगरमें मारिदत्त नामका राजा रहता था। मारिदत्त देवीका बड़ा ही भक्त था। इसी नगरकी दक्षिण दिशामें चण्डमारी नामकी एक कुलदेवी रहती थी। मारिदत्त आदि जन अपने हाथसे जीवोंका वध किया करतें और बड़ी ही भक्तिके साथ इस बलिसे कुलदेवीकी पूजा किया करते थे। ये लोग इस प्रकारकी भक्तिके साथ इस कुलदेवीकी पूजा नहीं करते तो चण्डमारी इन सबको एक साथ मार डालती। सो एक दिनकी बात है कि मारिदत्त राजा अनेक जनपदोंकी जनताको और अपने समस्त अन्तःपुर परिवारको साथ लेकर देवीके मन्दिरमें आया।

ठीक ऐसे ही समय सुदत्त नामके आचार्य भी अपने मुनिसंघके साथ विहार करते हुए इसी राजपुरके निकटवर्ती श्मशानमें आ विराजे

उस समय चण्डमारीकी पूजा करनेके लिए और उसके पादमूलमें बलि चढ़ानेके लिए सब लोग मोर, मुर्गी आदि अनेक प्रकारके असंख्य प्राणी ले आये। इतनेमें राजाके महत्तरोंने कहा कि एक समस्त प्रशस्त लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य युगल और मँगवावें।

जब राजाने इन महत्तरोंकी बात सुनी तो उसने शीघ्र ही अपने नौकरोंको आज्ञा दी कि वे तुरन्त ही एक सुन्दर मनुष्य युगल ले आवें। नौकरोंने राजाकी आज्ञाको देवआज्ञाके समानस्वीकार किया और वे तुरन्त ही इस प्रकारके नर-युगलको लानेके लिए चलदिये।

इसी समय पूर्वोक्त क्षुल्लक-युगलने मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और आहार लेनेकी इच्छासे वह नगरकी

ओर चलदिया। यह क्षुल्लक-युगल उन आदमियोंके रास्ते-से ही जारहा था जो बलिके लिए नर-युगलकी खोजमें निकले हुए थे। सो ज्यों ही इन आदमियोंने मन्दगतिसे जाते हुए इस क्षुल्लकयुगलको देखा तो वे परस्परमें कहने लगे—वस्तुतः देवीकी बलिके लिए यह युगल राजाको भी खूब ही पसन्द आवेगा।

क्षुल्लक-युगलने इन आदमियोंकी यह भयंकर बात सुन ली और वह निर्भय होकर उसी स्थानपर ठहर गया। उन मनुष्यों-ने भी इतना कहकर इस रूपवान् क्षुल्लक-युगलको पकड़ लिया और वे उसे महाराज मारिदत्तके निकट ले गये।

जब क्षुल्लक-युगल राजा मारिदत्तके निकट आया तो उसने देवताके चरणोंके निकट हाथमें भयंकर तलवार लिये हुए राजाको देखा। सो ज्यों ही इस क्षुल्लक-युगलने दूरसे ही इस भीममूर्ति मारिदत्तको देखा, इन दोनोंने एकसाथ राजासे 'जय-वान रहो' कहा और कहा--राजन्, तुम बहुत ही सम्पन्न हो, सुवर्णके समान सुन्दर हो, निर्मल हो, और कुन्द वृक्षके समान तुम्हारा यश निर्मल है। राजन्, तुम जयवन्त रहो।

ज्योंही राजाने मेघकी गर्जनाके समान गंभीर क्षुल्लक-युगलकी यह 'जय ध्वनि' सुनी और मनुष्य तथा स्त्रीके समस्त लक्षणों-से सम्पन्न इस नरयुगलको देखा, वह उनसे पूछने लगा—भद्र, इस अतिशय रूपसे आपने किस कुलको अलंकृत किया है और अत्यन्त-सुन्दर होनेपर भी किस कारणसे आप लोगोंने अभी-से यह दुर्धर तपस्या धारण की है ?

जब क्षुल्लक-युगलने मारिदत्तकी यह स्नेह-पूर्ण बात सुनी तो उसने बालक, वृद्ध और युवाजनोंसे भरी हुई सभामें अपने तपके कारण और राजा यशोधर आदिके समस्त वृत्तान्तको विस्तारके साथ सुना दिया, जिससे सभी उपस्थित जनता बड़े ही आश्चर्यमें पड़ गयी। इतना ही नहीं, इस घटना चक्रके

सुनानेका यह प्रभाव पड़ा कि राजा और सम्पूर्ण उपस्थित जनताने देवीके सामने आयोजित जीव वधको छोड़ दिया और सब शान्त प्रकृतिस्थ होगये।

जब कुलदेवीने भी इस सम्पूर्ण कथाको सुना तो उसने भी अपना सम्पूर्ण भयंकर रूप छोड़ दिया और सौम्यरूप धारण कर लिया। उसने इस क्षुल्लक युगलकी भाव पूर्वक तीन प्रदक्षिणाएँ कीं और उसे अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् वह हाथोंमें कलश लेकर क्षुल्लक-युगलके चरणोंमें विनत होगयी। इस क्षुल्लक युगलके प्रति उसकी भक्ति और स्नेह एकदम उमड़ पड़ा और वह सम्पूर्ण जनताके सामने क्षुल्लक महाराजसे निवेदन करने लगी—हे क्षुल्लक महाराज, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए और दया कीजिए। अब आप मुझे शीघ्र ही संसार समुद्रको पार करने वाली जैन दीक्षा दे दीजिए।

जब क्षुल्लक महाराजने देवीकी यह बात सुनी तथा उसका हृदय भक्तिसे एकदम गद्गद पाया और उसे हाथ जोड़े हुए देखा तो वे कहने लगे—भद्रे, उठो, उठो। देखो, तिर्यञ्चों, नारकियों तथा देवोंके लिए इस दीक्षाका विधान नहीं हैं। मनुष्य ही इस दीक्षाको ले सकते हैं।

क्षुल्लक महाराजकी यह बात सुनकर देवी विनयसे एकदम झुक गयी और कहने लगी—स्वामिन्! यदि मुझ अभागिनीको दीक्षा नहीं मिल सकती है तो आप मेरे अनुरूप धर्मका उपदेश अवश्य ही दीजिए।

क्षुल्लक महाराज सामने बैठी हुई इस देवीसे कहने लगे—देवि, देवताओंका दो प्रकारका ही धर्म है—सम्यक्त्वका लाभ और जिनपूजा। परन्तु नारकियोंके लिए जिनपूजा भी दुर्लभ है। उन्हें केवल त्रैलोक्यचूड़ामणि सम्यक्त्वका ही लाभ हो सकता है। परन्तु तिर्यंचगतिके जीव सम्यक्त्वके साथ कृत, कारित और अनुमोदना पूर्वक सम्पूर्ण मानव धर्मका पालन कर

सकते हैं। चण्डमारी देवीने बड़ी ही भक्तिके साथ क्षुल्लक महाराजके इस प्रवचनको सुना और उसने सम्यक्त्व तथा जिन-पूजाको स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार जब चण्डमारी देवीने सम्यक्त्व तथा जैनधर्मको स्वीकार कर लिया तो वह समस्त जनताके सामने मारिदत्त राजासे कहने लगी—

राजन्, आज दिनसे लेकर कोई भी मनुष्य मेरे लिए प्राणि-हिंसा न करे। सब ही जन शान्तिके साथ रहें। यदि इस प्रकार से समझाये जाने तथा रोके जानेपर भी कभी किसीने प्राणि-हिंसा की तो राजन्, मैं उसके सम्पूर्ण कुटुम्बको मार डालूँगी। देवीने मारिदत्त राजा तथा जनतासे इतना कहा और क्षुल्लक युगलको प्रणाम करके अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चल दी।

जब देवताओंने इस घटनाको सुना तो उन्होंने आकाशमें स्थित होकर क्षुल्लक महाराजके ऊपर सहर्ष गम्भीर दुन्दुभियां बजायीं, प्रसन्न हृदयके साथ उन्हें धन्यवाद दिये, जय जय शब्द किये और संतुष्ट होकर उनके ऊपर पुष्पमालाएं छोड़ीं।

इधर जब मारिदत्त राजाने कुक्कुटके वधसे उत्पन्न हुई अत्यन्त भयंकर दुःख परम्पराको सुना और देवताओंके इस आश्चर्यको देखा तो वह क्षुल्लक महाराजसे विनय करने लगा— स्वामिन्, आप मुझे भवनाशिनी जिनदीक्षा दीजिए, जिससे मैं भी आपके प्रसादसे अपना आत्म-हित साधन कर सकूँ।

यह बात सुनकर वह मारिदत्तासे कहने लगे—राजन्, आपको मैं दीक्षा नहीं दे सकता। हमारे निर्मलज्ञानी गुरु हैं वे ही आपको जैन दीक्षा दे सकते हैं।

मारिदत्त राजाने जब क्षुल्लक महाराजकी यह बात सुनी तो उसका मन कौतुकसे पूर्ण हो गया और वह विशुद्ध हृदय-से इस प्रकार विचार करने लगा—देखो, नगरीकी समस्त जनता और सामन्त गण मेरे चरणोंके निकट पड़े रहते हैं और मैं बल-

वान होकर भी देवताके चरणोंमें पड़ा हुआ था। देवता भी क्षुल्लक महाराजके चरण युगलमें नत हो गये और अब इस सातिशय क्षुल्लक युगलका भी अन्य कोई महान् गुरु है। राजा सोचने लगा—धन्य है मुनिजनोंके इस आश्चर्यकारी तपके माहात्म्यको, जो तपस्वी जन देवता तथा असुरोंके द्वारा भी पूजे जाते हैं।

राजा मारिदत्तका चित्त जिनधर्मके उपदेशसे पवित्र हो चुका था और बुद्धि एकदम विशुद्ध। वह क्षुल्लक महाराजके निकट गम्भीर भावसे बैठ गया।

इतनेमें ही सुदत्त आचार्यने अपने दिव्यज्ञानके बलसे वीर क्षुल्लकोंके ऊपर आये हुए महान् उपसर्गको बुद्धिमान मारिदत्त राजाके धर्म ग्रहणको और दीक्षा लेनेके प्रयासको जाना और वह तत्काल ही क्षुल्लक युगलके निकट आ पहुंचे।

मारिदत्त राजाने अपनी स्त्री, पुत्र, सामन्त, भाई, बन्धु-बान्धव आदिके साथ आचार्य चरणोंमें नत होकर बहुत ही विनयके साथ उनकी पूजा की और उनसे जिनदीक्षाके लिए प्रार्थना करने लगा। उसने अपने विनत पुत्रको राज्यपट्ट बांधा और वह पुरोहित, महामात्य, सामन्त और अन्तःपुर परिवारके साथ सुदत्त महाराजके निकट दीक्षित हो गया।

क्षुल्लक युगलने भी एकदम विरक्त होकर क्षुल्लक धर्म छोड़ दिया और अपने गुरुमहाराजके पास जिन दीक्षा ले ली। तदनन्तर इस युगलने अपनी आयुके अन्तिम समयमें चार प्रकार-के आहारको छोड़कर प्रायोपगमन संन्यास लिया, और तीन पक्षके भीतर समाधि पूर्वक शरीरको छोड़ स्वयंप्रभ विमानमें देव हो गये।

इस आश्चर्यको देखकर कुछ लोग मुनि हो गये, कुछ श्रावक बन गये और कुछ तटस्थ रह गये। सुदत्त मुनिराजने

विधिवत् चार प्रकारकी आराधन की और अन्तमें स्वर्गमें जा पहुंचे।

मारिदत्त आदिने भी चार प्रकारकी आराधनाओंका आराधन किया, सम्यग्दर्शनसे पवित्र हुए और अपने अपने भावोंके अनुसार यथा योग्य स्वर्गमें चले गये।

इस प्रकार संसारमें जो प्राणी असावधान होकर एक जीव का भी वध करता है, वह अनेक भवतक संसार परिभ्रमण करता रहता है।

इस प्रकार चण्डिका देवीके लिए मारे गये आटेके मुर्गेके
कारण सात भवोंमें परिभ्रमण करने वाले यशोधर
और चन्द्रमतीका यह आख्यान समाप्त हुआ।

